और इन्सान मर गया....

(कदाचित् सुनी हुई अथवा कल्पित) इस घटना का उसने वर्णन किया है, तो ऐसा लगता है कि वह स्वयं उजागरसिंह था और उसी ने अपने बच्चे की हत्या की है। इस स्थल पर उसका चित्रण इतना सजीव, इतना यथार्थ, इतना मनोवैज्ञानिक है कि मन पर अमिट प्रभाव छोड़ जाता है।

यही हाल पश्चिमी पाकिस्तान से हिन्दुस्तान आनेवाले साठ मील लम्बे काफ़िले की यात्रा के वर्णन का है। चन्द मित्रों ने इसे पढ़कर समझा कि सागर उस काफ़िले के साथ था। वास्तव में वह उस काफ़िले के साथ न था। उस पर हवाई जहाजों द्वारा गिरायी जानेवाली रोटियों का वर्णन तो उसने सुना और पढ़ा, परन्तु सागर का कमाल यह है कि ९९ प्रतिशत पाठक उसे पढ़कर यही समझेंगे कि सागर ने वह सब अपनी आँखों देखा है। उस चित्रण की अपूर्व सफलता का कारण यह है कि सागर ने कदाचित् उसके सम्बन्ध में पूरा-पूरा अन्वेषण किया है और हरेक घटना को अपनी प्रखर कल्पना द्वारा सजीव करके देखा और दिखाया है। उस चित्रण में जो मानवीयता—अपने समस्त गुण-दोषों के साथ—है, उस मानवीयता का जो चित्रण है, उसे देखकर टालस्टाय के 'वार एण्ड पीस' के उस स्थल का, जहाँ मास्को में गिरफ्तार रूसी बन्दी भागती हुई फ्रांसीसी सेना के साथ जाने को और कल्पनातीत कष्ट सहने को विवश हैं और शोलोखाव के उपन्यास 'डान फ़्लोज़ होम टू दी सी' में उस स्थल का स्मरण हो आता है, जहाँ बर्बर कॉसैक सैनिक लाल सेना के बन्दी कैदियों को मार्च कराते, अतीव बर्बरता से पीटते और प्रतिशोध से भरे देहातियों से पिटवाते हुए उस्त खोपर्स्क (ust Khopersk) गाँव से तातार्स्क (Tatarsk) गाँव तक आते हैं। दोनों गाँवों के मध्य उन पर क्या बीतती है इस उपन्यास के प्रथम खंड के सत्रहवें परिच्छेद को पढ़कर ही जाना जा सकता है। पाकिस्तान से बरबस हिन्दुस्तान आनेवाले शरणार्थियों की दशा और टालस्टाय तथा शोलोखाव के उपन्यासों में वर्णित उन दो बरबस यात्राओं के शिकार बन्दियों की दशा में, स्थितियों तथा उनकी क्रूरता और भयानकता

की भिन्नता के बावजूद, बड़ा साम्य है। साम्य है मानव की बेबसी का अथवा उस बेबसी के बावजूद उसकी दृढ़ता का।

मानव के गुण-दोष ; उसकी विवशता और दृढ़ता—मृत्यु को (घृणा और प्रतिशोध भी जिनकी बर्बरता का अंधकार मृत्यु के अंधकार से कम नहीं) सामने देखकर उसके समस्त हथियार डाल देना अथवा अपने हथियारों को और भी दृढ़ता से पकड़ लेना, अपने सिद्धान्तों को अपनी जान बचाने के हेतु छोड़ देना अथवा अपने सिद्धान्तों के लिए अपनी जान की परवाह न करना, अपने को बचाने के प्रयास में दूसरों के दुखों के प्रति तटस्थ हो जाना अथवा दूसरों के दुखों को अपना बना लेना—मानव की यह विवशता और दृढ़ता आदि काल से चली आयी है। जहाँ तक मानव की विवशता का सम्बन्ध है, नागर ने उसे अपूर्व सफलता से इस उपन्यास में चित्रित किया है। उसे देखे बिना भी उसे अनुभव बनाकर दिखाया है। मानव की दृढ़ता का चित्रण वह उतनी सफलता से नहीं कर सका। कदाचित् इसलिए कि उसे वह अपनी अनुभूति का अंग नहीं बना सका। पर जो वह कर सका उसका भी महत्त्व कम नहीं। सफलता के साथ उतना कर सकना भी सुगम नहीं।

यहाँ मैं इस संक्रान्ति-काल के लेखक, उसकी विवशता, दृढ़ता और उसके आदर्श के प्रश्न पर आता हूँ। हमारे अधिकांश लेखकों और आलोचकों में यह विषमता है (इस विषमता के स्वाभाविक कारण भी हैं) कि जहाँ उनके विचार पक्के हैं, अनुभूति कच्ची है। सोचने पर अपने प्रयास को सफल मानते हुए वे देश में होनेवाली प्रत्येक हलचल पर लिखना चाहते हैं,—बिहार की नरहत्या, बंगाल के अकाल, '४२ का विस्फोट, आर० आई० एन० का विद्रोह, स्वतन्त्रता-दिवस की यथार्थता, पंजाब के हत्या-काण्ड की भयंकरता, शरणार्थियों की दुर्दशा, आदि-आदि सबको अपनी लेखनी का

विषय बनाना चाहते हैं और जो नहीं बना पाते (बनाने की इच्छा के बावजूद) उन्हें लताड़ते हैं। परन्तु जहाँ उनका मस्तिष्क इस आवश्यकता को छूता है, हृदय उसे उस हद तक नहीं छू पाता कि वे उन हलचलों को अपनी अनुभूति का ऐसा अंग बना पायें, जिससे वे एक ऐसी उत्कृष्ट रचना की सृष्टि कर सकें, जो केवल उनके कर्तव्य ही की पूर्ति न हो, बल्कि उनकी मानसिक और जैसा मैंने कहा है, शारीरिक आवश्यकता की भी पूर्ति हो। हमारे अधिकांश लेखक निम्न अथवा मध्य-मध्यवर्ग से सम्बन्धित हैं। जिनका जन्म देहात में हुआ है उनका सम्पर्क देहात से नहीं रहा, यही कारण है कि जब वे मजदूर किसान की समस्या पर कलम उठाते हैं, तब वे उसमें वह चीज पैदा नहीं कर पाते जिसे उन्हीं-जितना निपुण कोई ऐसा कलाकार पैदा करता जो स्वयं मजदूरों अथवा किसानों में पला होता और उनकी कठिनाइयाँ जिसकी अनुभूति का अंग होतीं। हाल ही में कृष्णचन्द्र ने अपनी प्रवाहमयी लेखनी से एक स्ट्राइक और उसमें भाग लेनेवाले एक अन्धे मजदूर लड़के को लेकर एक कहानी 'फूल सुर्ख हैं' लिखी है, पर वह जुल्म के सारे चित्रण के बावजूद एक रूमानी कहानी होकर रह गयी है। जहाँ तक देश की हलचलों का सम्बन्ध है हमारे वर्तमान लेखक अपनी आर्थिक उलझनों तथा दूसरी कठिनाइयों के कारण उनमें सक्रिय भाग नहीं ले सकते। वे दूर बैठकर, जागरूकता के अपने कर्तव्य से विवश होकर, हमारे प्रगतिशील आलोचकों के कोड़ों से बचने के लिए (जिनके पास आलोचक का कोड़ा तो है पर सृजनकर्ता के उत्तरदायित्व तथा कठिनाई का बोध नहीं) जो लिखते हैं, वह प्रायः हंगामी तथा सामयिक होकर रह जाता है।

एक दूसरी तरह के लेखक हैं जो सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से इन हलचलों में से किसी-न-किसीके साथ रहे हैं और उन्होंने उनपर लिखा भी है। सागर इसी दूसरी श्रेणी के लेखकों में हैं। हिन्दी में अज्ञेय, यशपाल, राधाकृष्ण, अमृतराय, विष्णु, ओंकार शरद, तिवारी तथा अन्य कई लेखकों को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। ये लेखक पहले लेखकों से किस तरह

लाभ में हैं, इसे बिहार की महामारी के सम्बन्ध में राधाकृष्ण की अमर कहानी 'एक लाख सत्तानवे हजार', दिल्ली के साम्प्रदायिक दंगे से सम्बन्धित विष्णु की कहानी 'अगम अथाह' और सागर के इस उपन्यास को पढ़कर जाना जा सकता है। यह भी जाना जा सकता है कि अनुभूत वस्तु की सन्निकटता किस प्रकार कृति को आप-से-आप सजीवता प्रदान कर देती है। इन लेखकों ने उन हलचलों के यथार्थ तत्त्वों को बड़ी सफलता से चित्रित किया है। बहस चूँकि सागर के इस उपन्यास से है, इसलिए मैं कहूँगा कि स्वयं उस हत्याकांड का कुछ अंश देखने, उसके हर उतार-चढ़ाव को प्रतिदिन निरखने और उसका अंग बनने के कारण वह उस हत्याकांड और उसमें मानव की सीधी-सादी पशु-भावनाओं का सफल और सजीव चित्रण कर सका और उजागरसिंह, अनन्ती और निर्मला-जैसे यथार्थ चरित्र उपस्थित कर सका।

मैंने उपन्यास के नायक आनन्द का ज़िक्र जान-बूझकर नहीं किया। क्योंकि उपन्यास का नायक ही मेरे निकट उसकी दुर्बलता है और यही दुर्बलता प्रायः दूसरी श्रेणी के लेखकों की दुर्बलता बन जाती है, जब वे यथार्थ से किसी आदर्श का समावेश करते हैं। जहाँ सागर ने ऊषा, उजागरसिंह, अनन्ती और निर्मला के चित्रों को तूलिका के दो-चार स्पर्शों ही से उभार दिया है, वहाँ इतने पृष्ठ रँगने पर भी नायक की रूप-रेखा को नहीं उभार पाया। आनन्द की दशा दरिया पर तैरते हुए एक ऐसे तिनके-सी हो गयी है जो चाहता है कहीं किनारे पहुँचे पर अन्तर में कोई प्रेरक शक्ति न होने के कारण बेकार इधर-उधर थपेड़े खाता है। आनन्द लाहौर के दंगों के आरम्भिक दिनों में एक मुहल्ले में पलनेवाली ऊषा को देखता है, और एक सेठ की लड़की से प्रेम करता है, मौलाना (एक दर्दमन्द मुसलमान सोशलिस्ट) की सहायता से वह ऊषा को (दंगों के बाद) बचाने में सफल हो जाता है। रिलीफ़ कैम्प में लड़की इस भ्रम में रहती है कि आनन्द ने उससे इसलिए प्यार करना छोड़ दिया है

कि वह मुसल्मानों के पास रही है, विष खाकर मर जाती है और आनन्द इस अतृप्ति (Frustration) को लिये उस आग से निकलने के बदले बार-बार उसी आग में (प्रकट 'कुछ' करने के लिए) जाता है; कुछ महत्व का काम कर नहीं पाता और जब आखिर पश्चिमी पंजाब की उस आग से निकलकर वह पूर्वी पंजाब की हद पर पहुँचता है तो वह उसमें झुलस चुका होता है, इन्सान की इन्सानियत में उसका विश्वास उठ चुका होता है। सागर के शब्दों में 'आनन्द पागल नहीं होता बल्कि इन्सान आत्म-हत्या कर लेता है।'

जहाँ तक इन्सान की आत्म-हत्या का प्रश्न है, आम इन्सान कभी आत्म-हत्या नहीं करता। (यहाँ 'आत्म-हत्या' का अर्थ शारीरिक आत्म-हत्या है यद्यपि सागर ने उसे सांकेतिक रूप में लिखा है। आनन्द का पागल होना उसके निकट इसान के आत्महत्या करने अथवा मरने के बराबर है) आम इन्सान में अपूर्व जीवनी-शक्ति है। वह ढीठ भी कम नहीं। वह जल्दी आत्म-हत्या नहीं करता, न जल्दी पागल होता है। उसे पागल करने के लिए ज़बरदस्त personal sorrow (व्यक्तिगत शोक) की आवश्यकता है। दूसरे के दुखों को देखकर कोई पागल नहीं होता, आत्म-हत्या की तो बात दूर रही। चैकोस्लोवाकिया में कम्यूनिस्ट पार्टी के पत्र Rude Pravo के सम्पादक जूलियस फ़ूचिक़ ने अपनी पुस्तक Notes from the Gallows* में जहाँ उस भयानक अत्याचार का ज़िक्र किया है जो नाज़ियों ने १९४२ तथा ४३ में वहाँ के वासियों पर किया, जहाँ निर्दोष कैदियों को नाज़ी आततायियों द्वारा अतीव अमानुषिक ढंग से पिटते, इन्च-इन्च करके क़त्ल होते और बिना किसी

---

* हिन्दी में इसका अनुवाद 'फाँसी के तख़्ते से' नाम से अमृतराय ने किया है और प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशकों ने ही उसे भी प्रकाशित किया है।

अदालती कार्यवाही के सहस्रों की संख्या में गोली का शिकार होते दिखाया है, वहाँ इस शाश्वत सत्य की ओर भी संकेत किया है :

"They send to death workers, teachers, farmers, writers, officials, they slaughter men, women and children, murder whole families, exterminate and burn whole villages, Death by lead stalks the land like the plague and makes no distinction among its victims.

But in this horror people still live.

People still live—आम इन्सान की यही जीवनी-शक्ति है जो प्रलय के बाद भी उसे फिर से नयी सृष्टि बसाने की प्रेरणा देती है।

खास खास इन्सान, बुद्धि-जीवी, जागरूक मानव। वह भी आत्म-हत्या नहीं करता। जीवन में उसका विश्वास आम इन्सान से अधिक पक्का होता है। जहाँ आम इन्सान मृत्यु से डरता है वहाँ खास इन्सान मृत्यु से भी नहीं डरता। जीवन के लिए ही वह अपने जीवन की बलि दे देता है। आम इन्सान की क्रूरता, बर्बरता, उपेक्षा, घृणा, स्वार्थ और ओछेपन को वह भली-भाँति जानता है, उनका कारण जानता है। इसीलिए जब वह मानव की इन पाशविक वृत्तियों का विस्फोट देखता है तो न घृणा से भागता है, न भ्रान्त हो आत्म-हत्या करता है और न [illegible] है। वह इस समस्त पाशविकता की तह तक पहुँचता है। मानव के इन दागों के लिए एक अपार करुणा से प्रेरित होकर वह उसके [illegible] प्राणों की बाजी लगा देता है। वह जीता है तो जीवन के लिए, और यदि कभी अपने प्रयास में मर जाता है तो भी जीवन ही के लिए। [illegible] जनता के हित [illegible] की [illegible] है।

आनन्द न पहला इन्सान है, न दूसरा। यदि सागर अपने आपको केवल यथार्थ के चित्रण तक सीमित रखता तो कदाचित् ठीक रहता, क्योंकि वहाँ वह सिद्धहस्त है (अपनी रूमानियत के बावजूद), पर उसकी रूमानियत और कच्ची विचार-धारा उसे उन पानियों में ले गयी जिनकी गहराइयों से वह परिचित नहीं। इसलिए वह गोता खा जाता है। मौलाना का चरित्र भी इसीलिए हाड़-मांस का नहीं बन सका (अपनी समस्त नेकी और लेक्चरबाजी के बावजूद) क्योंकि उसमें लेखक की आस्था केवल बौद्धिक है, अनुभूत नहीं। मौलाना केवल उसकी 'खुशफ़हमी' का कारनामा है—दूसरी श्रेणी के लेखक, जो अपनी कला और अपने विचारोंके प्रति इस हद तक जागरूक नहीं रहते, प्रायः इस दुर्बलता का शिकार हो जाते हैं।

यहीं मैं तीसरी श्रेणी के लेखकों पर आता हूँ। ये लेखक न अनुभूति के बिना लिखते हैं, न अनुभूत में, यथार्थ में आदर्श का समावेश करते हुए डगमगाते हैं। इन्हें यदि हलचल के साथ होने का अवसर मिलता है और यदि वह हलचल उन्हें छूती है तो वे न केवल उसके यथार्थ का चित्रण करने की प्रतिभा रखते हैं, बल्कि अपने विचारों अथवा आदर्शों के उचित समावेश की भी। बात चूँकि पंजाब के हत्याकांड की चल रही है इसलिए मैं यहाँ श्री अज्ञेय के 'शरणार्थी' की दो कहानियों 'बदला' तथा 'शरणदाता' और ख्वाजा अहमद अब्बास की बदनाम कहानी 'सरदारजी' का उल्लेख करूँगा। अब्बास की कहानी में टैकनिक की त्रुटियाँ भले ही हों, पर उसने, हम बर्बर हैं यही दिखाकर ही सब्र नहीं किया, बल्कि बर्बर होते हुए भी हम क्या हैं, किन सद्भावनाओं की योग्यता रखते हैं, यह भी बताया है। यही बात और भी जोर से अज्ञेय की इन कहानियों के सम्बन्ध में कही जा सकती है, क्योंकि वहाँ कला की भी त्रुटि नहीं। 'बदला' का नायक सरदार 'सरदारजी' के सरदारजी की भाँति मुसलमान द्वारा बचाया नहीं गया। (उसकी कुर्बानी की तह में यह ऋण चुकाने की

भावना भी नहीं) वरन् मुसल्मानों द्वारा तबाह किया गया है। इसपर भी उसकी जागरूकता मुसल्मानों ही को बचाती है।

सो सागर का नायक यथार्थ और आदर्श किसी कसौटी पर भी पूरा नहीं उतरता। उसकी निराशा न साधारण मानव की निराशा है, न असाधारण मानव की। उसे एक चीत्कार समझिए जो लेखक की लुटी हुई भावुक आत्मा ने उस भयानक हत्याकाण्ड को देखकर बुलंद किया है। चीत्कार में सुर और ताल को न ढूँढ़िये, केवल उसकी सीधी, सरल बयानतदारी ही को देखिये।

सागर के इस उपन्यास को लेकर इस प्रश्न पर उर्दू-क्षेत्र में काफ़ी वाद-विवाद हुआ है कि पंजाब के हत्याकाण्ड में हमारी यन्त्रणा-प्रियता (Sadism) का कितना हाथ है और किसी दूसरी शक्ति अथवा अन्य भावना का कितना? सागर ने तो प्रकट ही इस सबका अभियोग हमारी यन्त्रणा-प्रियता के सिर थोप दिया है। यह यन्त्रणा-प्रियता हमारे यहाँ अधिक है अथवा यूरोप में, इस बात पर बड़ी तेज बातें एक दूसरे की ओर से कही गयी हैं। इसीलिए यहाँ इस प्रश्न पर चन्द शब्द कहने की आवश्यकता है।

अब्बास साहब ने जहाँ अपनी भूमिका में यह लिखा है कि इस हत्याकाण्ड और इसमें प्रदर्शित बर्बरता का कोई एक कारण नहीं, वहाँ मैं उनसे सहमत हूँ। क्योंकि इतनी बड़ी दुर्घटना के बदले यदि हम किसी छोटी-सी घटना का भी विश्लेषण करें और उसका ठीक कारण खोजना चाहें तो हमें मानव-मन की कई उलझनों को सुलझाना होगा। इतने अधिक आदमियों ने इतने अधिक आदमियों की हत्या इतनी क्रूरता और बर्बरता से कर दी, स्त्रियों और बच्चों पर अमानुषिक अत्याचार तोड़े, इसके बदले यदि हम एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति की हत्या का ठीक-ठीक विश्लेषण करें (फिर चाहे वह हत्या पत्नी से ऊबे हुए पति अथवा पति से ऊबी हुई पत्नी ने की हो अथवा महज़ किसी डाकू ने किसी

पूँजीपति की) तो हम पायेंगे कि कारण एक नहीं, अनेक हैं—वैयक्तिक, आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक आदि-आदि ।

लेकिन जहाँ अब्बास हिन्दुस्तानियों की बर्बरता की तुलना में दूसरों की बर्बरता को कम बताते हैं, वहाँ मैं उनसे सहमत नहीं । पंजाब में जो कुछ हुआ वह औसत मनःस्थिति के मानवों का किया-धरा नहीं था । (साधारण से असाधारण मनःस्थिति को वे किन कारणों से पहुँचे, इसके लिए भारत के लम्बे इतिहास को पढ़ना पड़ेगा) और असाधारण मनःस्थिति में साधारण मनुष्य क्या कुछ नहीं कर सकता, इसे वही जानते हैं जो स्वयं उस असाधारण मनःस्थिति से गुज़र चुके हों । शोलोखाव के उपन्यास का उपर्युक्त स्थल पढ़ने पर हम जान लेंगे कि असाधारण मनोदशा में हिन्दू मुसलमान अथवा मुसलमान हिन्दू ही की बोटी-बोटी नहीं उड़ा सकता, बल्कि भाई भाई की, चचा भतीजे की, आदमी अपने सगे-सम्बन्धियों की बोटी-बोटी अतीव निर्दयता से उड़ा सकता है । पुरुष तो पुरुष डेरिया-सी नारी तक विरोधियों के हाथों निर्दयता से पिटकर मरणासन्न आइवन—अपने निकट सम्बन्धी—को गोली का शिकार बना सकती है । और जो बात पंजाबियों या पाकिस्तानियों अथवा रूसियों के बारे में कही जा सकती है, वही जर्मनों, अंग्रेजों अथवा अमेरिकनों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है । आदमी हर स्थान, हर प्रदेश में आदमी है । और जब असाधारण परिस्थितियाँ उसकी प्रकृत भावनाओं पर से वाह्यावरण हटा देती हैं तो वह एक दूसरे से भिन्न नहीं दिखायी देता । पुराने उपन्यासों का यही Classic गुण कि वे मानव के गुण-दोषों का यथार्थ चित्रण करते हैं, उन्हें आज भी प्रिय बनाये हुए है । गोगोल ने अपना उपन्यास 'मृत रूहें' (Dead Souls) एक सदी पहले लिखा, परन्तु कौन कह सकता है कि जो त्रुटियाँ रूसियों की उसने दिखायी हैं, वे आज वहाँ नहीं हैं । रूस की बात छोड़िये, मैं यह कहूँगा कि आज वे कहाँ नहीं हैं । आप अपने आस-पास देखेंगे तो उस

उपन्यास के अधिकांश पात्र आपको अपने इर्द-गिर्द नज़र आ जायँगे। मुझे प्रसन्नता है कि यदि सागर पंजाब की दुर्घटना के कारणों की गहराई में नहीं जा सका (अथवा यों कहना चाहिए कि सभी कारणों की गहराई में नहीं जा सका) तो उसने कम-से-कम घृणा, प्रतिशोध और साम्प्रदायिकता की बहिया में बहते हुए मानवों की मनःस्थिति, उनके आवेग, आवेश, भय और विवशता का सजीव और मर्म-स्पर्शी वर्णन तो किया जो कई स्थानों पर Classic हो गया। और यह कोई छोटी सफलता नहीं।

सागर उर्दू के लिए पुराना चाहे हो, पर हिन्दी के लिए नया है। अबतक 'विचार' और 'नया समाज' में उसकी चन्द कहानियाँ छपी हैं, पर मुझे विश्वास है, इस उपन्यास के बाद वह नया न रहेगा—हिन्दी का अपना लेखक हो जायगा जैसे उर्दू का वह अपना लेखक है—और प्रस्तुत उपन्यास अपनी समस्त त्रुटियों के साथ (और त्रुटियाँ किस अच्छे उपन्यास में नहीं) हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासों में स्थान पायगा।

उपेन्द्रनाथ अश्क

साहित्यकार संसद्
रसूलाबाद

*

मेरी ओर से

घृणा में जो शक्ति है वह प्यार की भावना में नहीं !

मैं इस उपन्यास की मदद से आपके दिलों में घृणा की भावना जगाना चाहता हूँ ताकि उसमें शक्ति भी अधिक हो और जीवन भी।

वर्तमान काल में महात्मा गांधी और उन-जैसी दूसरी महान् आत्माओं ने और अतीत में बड़े-से-बड़े पैगम्बरों और अवतारों ने आपको प्रेम करना सिखाया है—मानवता से, सत्य से। जो पुण्य है उससे प्रेम करने की शिक्षा उन्होंने दी है, परन्तु आपने अपने कई हज़ार वर्षों के निरंतर चलन में यह प्रमाणित करने की कोशिश की है कि आपकी घृणा अमर है, प्रेम नहीं, ज़ोर देने पर आप प्रेम को एक बाह्य परदे की भाँति सामयिक तौर पर ओढ़ सकते हैं, परन्तु स्वतंत्रता मिलते ही आप उस नकाब को नोच फेंकना चाहते हैं; और फिर अपनी मनचाही क्रीड़ाओं में व्यस्त हो जाते हैं। उस समय आप हर पिछली लड़ाई से अधिक भयकर एक और लड़ाई लड़ते हैं, घृणा की कालोत्पन्न सैरगाहों में मानवी रक्त के सुर्ख फव्वारे आकाश-शिखर पर विजय पाने की कोशिश में लग जाते हैं और किसी शाहजहाँ की आँख से प्रेम और वफा के नाम पर बहाये गये उस एक आँसू—ताजमहल को जमे हुए सफेद लहू से बनाये गये पाषाणों का एक ढेर-मात्र बना दिया जाता है।

मुझे विश्वास है कि यह सब कुछ इसलिए नहीं होता कि आपको इन्सानियत से वैर है (क्योंकि आखिर इन्सान आप स्वयं ही तो हैं और अपना विनाश किसीको प्रिय नहीं होता), बल्कि शायद आप यह सब कुछ इसलिए करते हैं कि आपको प्यार के उपदेश ही से घृणा है। एक मासूम बालक की भाँति—आपके प्राकृतिक मासूमपन अथवा निर्विकार

होने और इस परम विशाल प्रकृति के उस अनदेखे सिरजनहार के सम्मुख आपके और अपने बचपने का मैं निरापद रूप से कायल हूँ—आप अपनी ज़िद मनवाने के लिए अपने निजी नुकसान की भी कोई चिन्ता नहीं कर रहे। अतः मनोविज्ञानवेत्ताओं के आधुनिक शिक्षानुसार मैं आपको धर्मोपदेशों के कोड़ों से पीटने के बजाय आप ही की ज़िद मान लेता हूँ। आपकी बात रखने के लिए मैं आपसे कहता हूँ कि आप ही की भावना ठीक है। इसीको फलने-फूलने दीजिये।

मैं आपको घृणा का उपदेश देता हूँ—वहशीपन से, बर्बरता और पाशविकता से, अमानुषिकता और हिंसा से घृणा का उपदेश। आपको घृणा ही करनी है तो इनसे घृणा कीजिये और इस प्रकार आप घृणा के पथ से ही सत्य-मार्ग पर आ जायँगे।

आप ही के हथियार का प्रयोग करते हुए मैंने आपको इस ज़िद का अंतिम परिणाम दिखाने की कोशिश की है, आपकी उन भावनाओं का, जिन्हें आप प्राकृतिक और अधिक जोरदार कहते हैं, सच्चा चित्रण आपके सामने पेश कर दिया है—इस आशा से कि आपको इसी शक्तिशाली भावना से घृणा हो जाय। आखिर आपको घृणा ही तो चाहिए। मैंने आपके सच्चे 'महाकार्यों' का चित्रण करते समय जरा भी झिझक से काम नहीं लिया। हालाँकि यह मेरे कुछ नफ़ासत-पसद मित्रों को बहुत बुरा लगा है और कई औरों को भी लगेगा, परन्तु मैं उनकी परवाह नहीं करूँगा। मैं आपके साथ आप ही के मनचाहे पथ पर उस अंतिम सीमा तक चला आया हूँ जहाँ उस पथ की आख़िरी मन्ज़िल है—आत्म-हत्या।

घृणा में विष की-सी शक्ति है, वह दूसरे को तो मारती ही है, अपने को भी नहीं छोड़ती और यही मैं आपको दिखाना चाहता हूँ। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि हिंसा, वध और हर पुण्य-भावना का सतीत्व नष्ट करने का यह शौक जब अपनी चरम सीमा को पहुँच जायगा तो उसका एकमात्र परिणाम मौलाना के शब्दों में यही हो सकता है कि......इन

कातिल कौमों के घर भविष्य में बच्चों की जगह लाशें ही पैदा हों—मरे हुए लड़के और ऐसी लड़कियाँ ही इस कौम की कोख से जन्म लें जिनका सतीत्व जन्म से पहले ही नष्ट किया जा चुका हो; और फिर सारी-की-सारी कौम अपने ही आतंक और घृणा के मारे दरियाओं में कूद-कूदकर मर जाय—' और इन्सान 'आनंद' के अन्दर में मौजूद इन्सान की भाँति आत्म-हत्या कर ले।

अगर मैंने बुनियादी तौर पर इस परिणाम, इस हिंस्र पाशविकता, इस अमानुषिकता के विरुद्ध आपके हृदय में घृणा पैदा कर दी है तो मैं अपने-आपको कृतकार्य्य समझूँगा। निश्चय ही बर्बरता से यह घृणा आपको मानवता के निकटतर ले आएगी। यदि इस उपन्यास की सान पर चढ़कर आपकी उस घृणा की तलवार को इतनी तीखी धार मिल जाय कि फिर भविष्य में जब कभी आपका हाथ किसीके सतीत्व पर उठने लगे, या कभी फिर किसी नन्हें बच्चे की गर्दन तक आपका छुरा पहुँचने लगे, तो घृणा की वही तेज तलवार आपके उस उठते हुए हाथ को काट डाले, यह लोहा उस कटार के लोहे को कुण्ठित कर दे, तो मैं समझूँगा कि मेरी लेखनी सफल हो गयी, मेरा काम पूर्ण हुआ।

* * * *

ऊपर की पंक्तियाँ उन लोगों के लिए लिखी गयी हैं जो घृणा की प्रभुता में विश्वास रखते हैं।

उनके अतिरिक्त और लोग भी हैं जो दूसरी सीमा पर हैं, उस सीमा पर जहाँ मन के लड्डुओं के सिवा और कुछ है ही नहीं, जहाँ निराशा और विफलता पाप है।

ऐसे ही एक मित्र ने इस उपन्यास की पाण्डुलिपि पढ़ने के बाद मुझसे कहा था कि 'इसमें निराशा बहुत है, मायूसी और विफलता है, आशा-

वाद की झलक तक नहीं।' ख्वाजा अहमद अब्बास ने भी कुछ ही दिन पहले बम्बई के प्रसिद्ध अँगरेजी पत्र 'भारत-ज्योति' के कालमों में मानव-प्रेम के कुछ नये उदाहरण देकर मुझे पब्लिक तौर पर सम्बोधित करते हुए लिखा है—'यह देखो सागर, अभी इन्सानियत जीवित है, मरी नहीं......।'

उन मित्रों से मुझे केवल यह कहना है कि उन्होंने उपन्यास के बाह्य तल को ही देखा है, उसकी गहराइयों में तड़पनेवाली आत्मा को वह नहीं चीन्ह सके। यदि मुझे इन्सानियत की मौत का विश्वास हो जाता तो मैं शायद यह उपन्यास ही न लिखता। और यदि लिखता तो उसमें मौलाना-जैसा वह सब पर छा जानेवाला पात्र न होता, उसमें किशनचंद न होता, उसमें भरपूर आशावाद को वह महान प्रतीक (symbol) निर्मला न होती, जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रूप में सर्वस्व लुटा चुकने के बाद भी जब आशा और मानवता के उस स्रोत—आनन्द के पास पहुँचती है तो स्वयं भी आशावाद का सबसे बड़ा और सबसे मासूम प्रतीक बन जाती है। और सबसे बढ़कर उसमें आनन्द-जैसा पात्र नायक न होता, जिसकी नींव ही मानवता और प्रेम के दर्शन पर खड़ी है। और स्वयं यही बात मेरे इस विश्वास का प्रदर्शन करती है कि मूल रूप में मानव पुण्य-सत्य का उपासक है, क्रियाशील और ऊर्ध्वगामी है; पाप का उपासक नहीं और न अकर्मण्य और अधोगामी है। उपन्यास के अन्त में आनन्द ने जो कुछ किया, केवल उसी से उसके सारे गत विचार, उसका सारा फलसफा मिथ्या और 'कुछ नहीं' होकर नहीं रह जाता, बल्कि मेरी लेखनी में जितनी थोड़ी-बहुत शक्ति है उसका पूरा प्रयोग करके मैंने आपको झँझोड़-झँझोड़कर यह बताने की चेष्टा की है कि घृणा और हिंसा का परिणाम कितना भयानक हो सकता है—वह परिणाम, जब आनन्द-जैसा इन्सान भी चिल्ला उठता है कि 'यदि इन्सान आत्महत्या नहीं करेगा तो मैं उसे मार डालूँगा,' जब इन्सान इन्सान का गला घोंटकर

आत्महत्या कर लेता है और जब महात्मा गांधी को गोली मारकर कत्ल कर दिया जाता है।

आनन्द अकेला नहीं है।

अपने देश की सच्ची घटनाएँ आपके सामने हैं। इस मायूसी, इस घोर निराशा ने आनन्द-जैसे लाखों इन्सानों को आनन्द की भाँति इन्सान का कातिल बना दिया है, और महात्मा गांधी और मौलाना-जैसे लाखों इन्सानों का स्वयं इन्सान ही के हाथों वध हो गया है। यदि आपको यह बुरा लगा हो तो इसे रोकिये, इस निराशा को, इस घोर अन्धकार को दूर कीजिये। जो बच गया है उसे बचा लीजिये—यही मुझे कहना है। यदि मैंने बुनियादी तौर पर उस मरते हुए इन्सान आनन्द से आपकी सहानुभूति पैदा कर दी है तो मैं समझता हूँ कि मैं कामयाब हूँ; और तब इसका अर्थ यह नहीं होगा कि मैंने निराशावाद और अकर्मण्यवाद का प्रचार किया है।

हाँ, मैंने केवल जबानी आशावाद या मौखिक कर्मण्यता का ढोंग नहीं रचाया, जिसमें wishful thinking अधिक है और कर्म बहुत कम, मैंने किसी भी तरीके से आपको कर्म पर उभारने की चेष्टा की है, और यदि मेरी कोशिश कामयाब है तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए, मैं उसके बदले कड़ी-से-कड़ी आलोचना, कोई भी बुराई अपने सिर लेने को तैयार हूँ।

* * * *

आनन्द का वर्णन ऊषा के चरित्रावलोकन के बिना अधूरा ही रह जाता है, ऊषा जो एक आत्मा की भाँति सारे उपन्यास पर छायी हुई है, परन्तु जो स्वयं सारे उपन्यास में मुश्किल से एक-आध परिच्छेद में प्रकट होती है। ऊषा एक प्रतीक, एक Symbol है उस अनादि और अनन्त प्यास का, उस विरह-तृषा का जिसे प्रणय-व्यथा कह सकते हैं, नहीं

बल्कि कौन कह सकता है कि उसे ससार-व्यथा या स्वयं जीवन-व्यथा भी नहीं कह सकते, वही तृषा, वही तश्नगी जिसके लिए न्याज़ हैदर ने लिखा था कि—

तश्नगी नाम है जीने का मुझे जीने दे

वह सदा की खोज—सत्य की, प्यार की या हर Utopian आदर्श की खोज, वह अनन्त जिज्ञासा जो कलाकार को सदैव आगे-ही-आगे धकेलती चली जाती है, वही जो उसे अपनी किसी भी मास्टरपीस या अपनी किसी भी प्रणयिनी से कभी पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं होने देती, कलाकार का वह काल्पनिक पूर्ण-आदर्श जो स्वयं कभी उसकी पकड़ में नहीं आता, परन्तु जो एक कभी न बुझनेवाला आशा-दीप उसके मार्ग में रखकर उसे यह कहकर सदा आगे ही आगे धकेलता रहता है कि 'अभी नहीं, अभी मंजिल हजार कोस है दूर,' और उसे जीवित रखता है, उसकी तड़प का स्पंदन कम नहीं होने देता, वह तड़प जो आनन्द को अपने असली कर्तव्य-क्षेत्र तक पहुँचने से पहले एक क्षण का चैन नहीं लेने देती, जिसके चिरन्तन विचार से या जिसके योग्य अपने-आपको प्रमाणित कर सकने की कोशिश में इन्सान महानतम कार्य्य पूर्ण कर सकता है और करता है—वही है ऊषा। यह कभी न बुझनेवाली पिपासा, किसी चरम ध्येय की यह आतुर माँग जो कभी बस नहीं होती, मृत्यु की छाया उसपर से गुज़र जाती है, परन्तु वह छाया भी उसकी चमक को मंद नहीं कर सकती—वह अनन्त प्रकाश क्षीण नहीं होता—परन्तु उसका मार्ग कर्तव्य, नियंत्रण और ऐसे ही कठिन और कटु रास्तों से होकर जाता है, जिस पर चलने के लिए एक चट्टान का-सा अटल निश्चय और तूफान का-सा प्रबल उत्साह चाहिए। इसीलिए कभी-कभी उसकी दीर्घता से तंग आकर या झुँझलाकर कोई निकट का छोटा पथ खोजने की कोशिश में इन्सान पथभ्रांत भी हो जाता है, भटक भी सकता है।

यदि आनंद पथभ्रांत हो गया है तो उससे सहानुभूति कीजिये, हम-

दटा कीजिये। यह आपके लिए कर्म का आह्वान है कि इन्सान के मध्य से उस कटुता को, उस विष को दूर कर दीजिये, धुंध में लिपटे हुए उन दैत्यों को मिटा डालिए जो आनन्द और ऊषा के दर्म्यान, इन्सान और उसके आदर्श के बीच दीवार बनकर खड़े हो गये हैं, और इन्सान को फिर इस योग्य बना दीजिये कि वह आज से हजार वर्ष पश्चात् आने वाले मानव को सौंदर्य और प्यार का सन्देश सुना सके।

*　　　　*　　　　*

इस सब कुछ के बावजूद मैं इस उपन्यास में निराशा और एक विष-भरी कटुता की उपस्थिति को अंगीकार करता हूँ। इस बारे में मुझे केवल यह कहना है कि यह निराशा केवल सामयिक भावुकता का परिणाम नहीं है, यह उपन्यास कोई डेढ़ वर्ष में लिखा गया है, और इतने दीर्घकाल में किसी सामयिक भावुकता के उफान को ठंढा होने के लिए काफ़ी समय मिल गया होगा, अतः यह सत्य है और जो घटित है उसका परिणाम है। मैं उन आशावादियों और लम्बे-लम्बे वक्तव्य देनेवाले अपने नेताओं से पूछता हूँ कि उन्होंने हिन्दुस्तान या पाकिस्तान में उन शरणार्थियों और 'महाजरीन' के हृदयों में आशा-दीप को बुझने न देने की कौन-सी सफल चेष्टा की है, और क्यों वह अभी तक शरणार्थी और महाजरीन ही कहलाते हैं?

आज भी वह इन्सान जो इन्सान से पनाह ढूँढने के लिए अपने शहरों और घरों को छोड़कर भागे थे, इसी तरह अर्धनग्न अवस्था में छोटी-बड़ी टोलियाँ बनाये बेसरोसामानी की हालत में, बरसते पानियों और कड़कती धूपों में कहीं शरण पाने के लिये इस विराट देश के एक कोने से दूसरे कोने तक मारे-मारे फिर रहे हैं, परन्तु हिंदुस्तान या पाकिस्तान में किसी भी जगह उन्हें सच्चे अर्थों में अब तक शरण नहीं मिल सकी, क्यों? आज भी मैंने वर्षा में तैरते हुए और आँधियों में उड़ते हुए रिफ्यूजी कैम्पों में रहनेवाले लाखों शरणार्थियों में से कई एक को यह

कहते सुना है कि इस जीने से तो उन दिनों धर्म के नाम पर वध हो जाना अधिक सुखकर होता।

क्या कोई कह सकता है कि १५ अगस्त, १९४७ की 'स्वतन्त्रता' के पश्चात् भी निराशा की यह चरम सीमा एक ठोस सत्य नहीं है? तो इस अवस्था में क्या आप केवल मीठी-मीठी आशावादी बातों से सत्य को झुठला सकते हैं? नहीं! बल्कि मैं तो समझता हूँ कि यदि मैं इसके विपरीत लिखता तो अपने ध्येय या Cause से विश्वासघात करता, उन लाखों बे-घर निराश्रय निस्सहायों से विश्वासघात करता, स्वय सत्य से विश्वासघात करता। फोड़े में से निकलती हुई पीप घिनावनी अवश्य मालूम होती है, परन्तु फोड़े का मुँह बन्द करके उसे छिपा देने से तो उसका इलाज नहीं हो सकता।

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान—दोनों देशो में कई लोगों को आज मैं इन शरणार्थियों पर असभ्य और बदतमीज़ होने का दोषारोपण करते देख और सुन रहा हूँ। मुझे वह निर्मला के पति की भाँति कमीने दिखायी देते हैं, जो उसकी रक्षा करने के समय स्वय कायरों और बुज़दिलों की भाँति भाग गया था, परन्तु उसकी साहसपूर्ण वापसी पर उसके चरित्र और अपने कुल की लाज का न्यायाधीश बन बैठा। यहाँ मैं यह निवेदन कर दूँ कि मैं पाकिस्तान का बनना सहर्ष कबूल करता हूँ। मैंने राजनैतिक दृष्टिकोण से इस उपन्यास में कुछ भी नहीं कहा और न कहूँगा। क्योंकि यह विषय मेरे निकट बहुत छोटे और अत्यन्त क्षणिक होते हैं। यदि आप मानव को इस प्रकार स्वतन्त्र जीवित रहने दें जिससे उसे किसी चीज़ किसी सुख का अभाव न हो, तो मेरी तरफ से आप लाख बटवारे कीजिये, लाख नये देश बनाइये, मुझे कोई सरोकार नहीं। मैं तो केवल मानवता के दृष्टिकोण से बात करता हूँ और उसी दृष्टिकोण से मैं हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के उन बड़े-बड़े पथ-प्रदर्शकों को कभी क्षमा नहीं कर सकता जो अपनी-अपनी राजनैतिक जीत के नशे में इतने मस्त हो गये थे कि

जिन्होंने उनके लिए बड़े-से-बड़े बलिदान दिये थे, अपने उन्हीं साथियों और अनुयायियों को 'पराये देश' के हिंस्र बहशियों के बीच इस प्रकार निस्सहाय छोड़कर वे अपनी-अपनी राजधानियों में उत्सव मनाने चले गये थे।

मैं चाहता हूँ कि वह माननीय नेता और सामाजिक अदब-कायदे और सभ्यता के वह ठेकेदार भी इस उपन्यास को पढ़ें, ताकि उन्हें इस बात का कुछ थोड़ा-सा अंदाजा तो हो सके कि शरणार्थी होने के क्या मानी होते हैं। मैं यह जानना चाहता हूँ कि उनमें से यदि कोई आनंद के स्थान पर होता तो क्या होता? या वह क्या करता? मैंने आनंद को पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की सीमा पर लाकर एक प्रश्न-चिह्न की भाँति खड़ा कर दिया है। उसे आगे नहीं बढ़ा सका। क्योंकि मुझे दोनों में से एक भी देश की ओर से आशा और उम्मीद की एक क्षीण-सी प्रकाश-रेखा भी आती दिखायी नहीं दी जिसके सहारे मैं उस देश की ओर उसका पथ-प्रदर्शन कर सकता।

आशावाद की वह प्रतीक निर्मला भी उस स्थान पर पहुँचकर इस आघात से जड़ हो गयी जबान से यही प्रश्न पूछ रही है कि 'क्या अब निराश होने का समय आ गया है?' और इस प्रश्न का उत्तर वह आप से माँगती है—आप, जो इसे पढ़ रहे हैं, आप जो मानव-कुल के उत्तराधिकारी हैं, और आपसे भी,—जो इस देश के नेता हैं, जो इस स्वतंत्र राज्य की गद्दी पर बैठे हुए कर्णधार हैं, उत्तर दीजिये!

* * *

मैं इस बात को भी कबूल करता हूँ कि इन सब बातों के बावजूद यह भी सत्य हो सकता है कि इस विष-भरी कटुता और घोर निराशा में मेरी अपनी निराशाएँ और आंतरिक दर्द भी झाँक रहे हों, क्योंकि मुझे इस बात का निश्चय है कि कोई कला अपने सृजन-कर्ता के आत्म-प्रक्षेपण (Self-projection) से मुक्त नहीं हो सकती। बल्कि असल में कला की

भाँति अपने और बच्चों के लिए किसी सिर छिपाने के स्थान की तलाश में खो गया। अभी मित्रों की सहानुभूति की परीक्षा ही करता फिर रहा था, या इस उपन्यास के दृष्टिकोण से शरणार्थी कैम्पों का अध्ययन कर रहा था कि २३ नवम्बर को प्रगतिशील लेखकों का एक डेलीगेशन भारत सरकार के सहयोग से काश्मीर के मोर्चे का अध्ययन करने के लिए आटे की बोरियों से लदे हुए एक हवाई जहाज़ में भेजा गया; और मैं उसके साथ फिर काश्मीर चला गया।

वहाँ विभिन्न मोर्चों पर घूमने के बाद हमें अत्यत हिमवर्षा के कारण लारियों में जम्मू भेजा गया, जहाँ के नये रेडियो-स्टेशन से प्रगतिशील लेखकों के नाम एक अपील ब्राडकास्ट करने के बाद मैं १५ दिसम्बर को हवाई जहाज़ से दिल्ली वापस आ गया।

वहाँ एक महीना फिर घरेलू किस्म की परेशानियों और भाग-दौड़ में गुज़ारा। इसी बीच में काश्मीर के बारे में कुछ लेख उर्दू और हिन्दी में लिखे, जो दिल्ली, बम्बई और कलकत्ते के पत्रों में प्रकाशित हुए। मैं काश्मीर के युग-परिवर्तन पर एक पूरी पुस्तक लिखने के लिए notes लेकर आया था, परन्तु इस शरणार्थी-युग की परेशानियाँ तो इस अधलिखे उपन्यास को भी हाथ लगाने का अवकाश न देती थीं।

यह फिर एक नाजुक समय था। हालाँकि अबतक इस असम्पूर्ण उपन्यास की चर्चा खालिस साहित्यिक क्षेत्रों में एक पर्याप्त हद तक हो चुकी थी। काश्मीर में डेलीगेशन के सदस्यों के सामने मैंने उसके कुछ हिस्से सुनाये थे, जिसके बाद उर्दू-क्षेत्र में ख्वाजा अहमद अब्बास और उनके उस लेख के द्वारा जो उन्होंने इसके विषय में 'बम्बई क्रानीकल' में लिखा था, और हिन्दी-क्षेत्र में श्रीमोहन सिंह सेंगर सम्पादक 'विशाल भारत' के ज़बानी प्रापेगेंडा के कारण बहुत-से लोग इस उपन्यास की प्रगति में दिलचस्पी लेने लगे, जिनमें साहित्यकारों के अतिरिक्त कुछ पत्रकार और नेता लोग भी थे। मैं इन दोनों मित्रों का पूरा-पूरा और

उचित धन्यवाद कभी नहीं कर सकता ; क्योंकि निश्चय ही इन बातों ने जैसा कि स्वाभाविक ही था, मुझमें वह उत्साह और आत्मविश्वास पैदा कर दिया, जो शायद इस उपन्यास के इस प्रकार पूरा हो जाने के लिए कुछ कम जिम्मेदार नहीं, परन्तु उस समय तो मुझे इस उपन्यास के बारे में अपने साथियों की प्रशंसा से कहीं अधिक किसी ऐसे प्रकाशक की आवश्यकता थी जो मुझे कुछ रक़म पेशगी देता, ताकि मेरे कुछ दिन आराम से कट सकते और मैं अपना सारा ध्यान इसे सम्पूर्ण करने की ओर लगा सकता। परन्तु उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि हिन्दुस्तान में अब उर्दू-साहित्यकार का भविष्य बिलकुल अंधकारमय हो गया है। बल्कि एक समय तो ऐसा भी आया, जब मुझे यह विश्वास हो गया कि मैं शायद अब कभी उर्दू में प्रकाशित ही नहीं हो सकूँगा।

इस बीच में हिंदीवालों ने बड़े विशाल हृदय से मेरा स्वागत करके मेरा उत्साह बहुत बढ़ाया, परन्तु मैंने उर्दू के जिस क्षेत्र में थोड़ा-बहुत नाम पैदा किया था, उसी क्षेत्र में से पिटकर इस प्रकार हिंदी की गोद में एक शरणार्थी होकर नहीं जाना चाहता था। इस विचार ही से मेरे आत्म-सम्मान पर एक चोट लगती थी।

कुछ वर्ष हुए मौलाना सलाहुद्दीन अहमद ने 'अदबी दुनिया' में मेरे बारे में यह चिंता प्रकट की थी कि 'देखें, इन्हें भी कब हिंदीवाले अपहरण करके ले जाते हैं।' और मैंने इतने वर्षों तक उनकी उस चिंता को निर्मूल प्रमाणित करने की कोशिश की थी, परन्तु आज स्वयं उर्दूवाले जैसे मुझे उधर धकेल रहे थे, और इस विषय में मैं स्टीफ़न ज़्वाइग की भाँति निराशा और मानसिक वेदना की सीमा पर पहुँच चुका था। उसका परिणाम यह हुआ कि एक मुद्दत तक मेरा कुछ लिखने को जी ही नहीं चाहा, और उपन्यास इसी तरह पड़ा रहा। इस बारे में मैं उन उर्दू प्रकाशकों के नाम नहीं लिखना चाहता, जिनसे मुझे शिकायत है, परन्तु उनकी नामावली दिल्ली से लेकर बम्बई तक

फैली हुई है, और सितम यह कि जिन्होंने उस समय एक मरते हुए साहित्यकार को न बचाया, वही आज, जब कि यह उर्दू में प्रकाशित हो रहा है, मुझे कहते हैं, 'आप ने उपन्यास हमें नहीं दिया, हमें शिकायत है आपसे।'

वैसे भी दूसरी दिशाओं में मेरी हालत बहुत खराब हो चुकी थी, जब श्री अमृतराय से दिल्ली में मेरी मुलाकात हुई। अमृतराय ने मुझसे इस उपन्यास के हिंदी संस्करण के लिए एग्रीमेण्ट किया, और एक पर्याप्त रकम मुझे पेशगी दे गये। इस रकम ने वक्ती तौर पर मुझे फिर से जिंदा कर दिया, और मैं दिल्ली में बच्चों के रहने का कुछ उलटा-सीधा प्रबन्ध करके स्वयं जनवरी में बम्बई की ओर भागा, क्योंकि यहाँ के फ़िल्मी जगत में पुराने सम्बन्धों के कारण मुझे आय की कुछ सबील हो जाने की आशा थी।

यहाँ प्रसंग-वश एक और बात कहने का लोभ भी मैं नहीं रोक सकता। न-जाने क्यों सरकारी नौकरी या एक पक्की किस्म की नौकरी से मैं हमेशा कतराता आया हूँ। जिसमें कोई Adventure नहीं, बस एक टस-सा बँधा-बँधाया जीवन है, वह न-जाने क्यों मुझे नहीं भाता। चेतन रूप में इसके बिलकुल विपरीत मैंने कई बार यह इच्छा की है कि आमदनी का कोई स्थायी-सा प्रबन्ध हो जाय, जो मुझे इन प्रतिदिन की आर्थिक कलाबाजियों से मुक्त कर सके, ताकि मैं अपने लिखने-पढ़ने का काम बड़ी निश्चिंतता से कर सकूँ, परन्तु गूढ़ अचेतन में कुछ है जो सदा मेरा हाथ रोक लेता है, मेरे पैरों को उस ओर बढ़ने ही नहीं देता कुछ साल हुए एक रेडियो-स्टेशन के स्टेशन-डायरेक्टर ने मुझे रेडियो में आ जाने को कहा, परन्तु मैं ठीक मौके पर पीछे हट गया, बल्कि तबसे आजतक पहले से लिखी हुई एक-दो कहानियाँ तो रेडियो पर ब्रॉडकास्ट हुई हैं; परन्तु विशेष फ़र्माइश होने पर मैं रेडियो के लिए कभी कुछ नहीं लिख सका। क्यों? यह मैं स्वयं भी नहीं जानता।

अबकी भी बम्बई आने से पहले दिल्ली में एक-दो अच्छी सरकारी नौकरियों की आशा मुझे मेरे मित्रों ने दिलायी थी, बल्कि कुछ सहानुभूति रखनेवालों ने तो बहुत दूर से मेरे लिए सिफ़ारिशें भी पहुँचवायी थीं और मैं प्रार्थना-पत्र देने से पहले ही कुछ बड़े अफ़सरों से मिलकर आशापूर्ण वचन भी ले आया था ; परन्तु फिर न-जाने क्या हुआ कि मैंने हर बार सोचने-सोचने ही में प्रार्थना-पत्र भेजने की आखिरी तारीखें गुज़ार दीं। तत्पश्चात् मित्रों को यह सुनकर बड़ा अचरज हुआ कि मैंने प्रार्थना-पत्र ही नहीं भेजा था। स्वयं मेरे पिताजी कई सालों से मुझे यही समझाते चले आ रहे हैं कि "बेटा किसी बरसाती नदी में किनारों से बाहर तक उछलते हुए बाढ़ के पानी से वह नन्हा-सा सोता हज़ार दर्जे अच्छा है जो थोड़ा पानी देता है मगर साल भर देता रहता है।"

दिमाग़ से उनकी दलील नहीं कट सकती, परन्तु कार्यरूप में मैं कभी उस बात से प्रभावित नहीं हुआ। ऐसा क्यों है इसका विवेचन मैं स्वयं भी नहीं कर सकता, तो उन्हें क्या समझाऊँ। शायद मेरे अचेतन की गूढ़तम गहराइयों में वह घटना बुरी तरह बैठ गयी है जिसका उल्लेख मैंने 'एक क्षयरोगी की डायरी' में भी किया है, कि किस प्रकार एक तीसरे दर्जे का क्षयग्रस्त रोगी जब जूतों का एक नया जोड़ा खरीदने लगा, तो उसकी मज़बूती पर अत्यधिक ज़ोर देने लगा, मानो मृत्यु-पथ में भी उनकी आवश्यकता पड़ती हो। अथवा शायद मेरे अन्दर का जो कलाकार है वह अपने लिए नित नया मसाला, नित नयी अनुभूतियाँ पाने की खातिर अत्यन्त स्वार्थपरायणता से मेरे आनन्द और शांति की बलि दिये चला जा रहा है।

खैर, बम्बई आकर देखा कि इन दिनों फिल्मी जगत का कारोबार बहुत मन्दा है। परन्तु फिर भी रात-दिन भाग-दौड़ करता रहता और अब तक इसी चक्कर में पड़ा हुआ हूँ। वैसे भी जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है कि उर्दू-प्रकाशकों की कृपा से उपन्यास के बारे में मेरा मन बिलकुल खट्टा हो

चुका था ; और मैं अमृतराय को वचन दे चुकने के बावजूद उसे लिखने की ओर कोई ध्यान न दे रहा था। कि अचानक ३० जनवरी १९४८ की शाम को संसार के इतिहास की वह महानतम दुर्घटना हो गयी—महात्मा गांधी का पिस्तौल से वध कर दिया गया। इस घटना ने मुझे इस हद तक हिला दिया कि मैंने दूसरे दिन उपन्यास की original लिपि पर सातवें परिच्छेद के बीच में वहीं यह लिखकर प्रतिज्ञा की, "महात्मा गांधी का वध करके न्याय और प्यार की आवाज़ को बलपूर्वक दबाने की कोशिश की गयी है। उसके बाद उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है। आज जबकि वह शांति-पालक महारथी नहीं रहा, जो अकेला लाखों का काम कर सकता था, तो हम-जैसे तुच्छ व्यक्तियों पर यह उत्तरदायित्व आ पड़ा है कि इस महाकार्य में अपना-अपना हिस्सा बड़ी धर्मनिष्ठा से पेश करें, ताकि बिंदु-बिंदु मिलकर इस पारस्परिक प्रेम के स्रोत का बहाव कायम रख सके, और उसे सूखने न दे। अतः जबतक यह उपन्यास पूरा नहीं हो जाता इसे प्रतिदिन लिखने की प्रतिज्ञा करता हूँ।" और उसके बाद से मैंने हर हाल में यह प्रतिज्ञा कायम रखने की कोशिश की है, यहाँतक कि काम ढूँढ़ने की भाग-दौड़ से यदि कभी रात के एक बजे भी घर लौटा हूँ, तो उस समय भी इसकी कुछ पंक्तियाँ लिखने की कोशिश की है। वैसे भी तब से आज तक शायद एक भी दिन ऐसा नहीं गुज़रा, जिसे मैं विश्राम का दिन कह सकता। अतः यह कहा जा सकता है कि मेरी ओर से महात्मा गांधी की स्मृति में यह तुच्छ-सी श्रद्धांजलि ही अर्पण की गयी है।

यूँ भी कह सकते हैं कि मैं उस परम शिक्षा को भूल गया था कि कलाकार तो कला का सृजन ही इसलिए करता है कि उसे अपने काम से प्रेम है। अच्छे-बुरे फल की आशा को लेकर तो वह अपना मार्ग ढूँढ़ने नहीं निकलता। चुनांचे तुच्छता की ओर जाता हुआ मेरे अन्तर का कलाकार मानो महात्माजी की मृत्यु की चोट खाकर फिर से सँभल गया और पथ-भ्रांत होने से बच गया। उसके लिए मैं किसे धन्यवाद दूँ?

बम्बई पहुँचने के बाद जिस महान् व्यक्ति ने इसे बाक़ायदा लिखने में मेरी सबसे अधिक सहायता की, वह हैं पृथ्वीराज—जिसे आम लोग केवल एक महान् फिल्मी अभिनेता के रूप में ही पहचानते हैं, परन्तु गत कुछ वर्षों की मित्रता में मैंने उस कलाकार को उन अल्प-संख्यक महान् आत्माओं में से एक पाया है जिनका सम्मान करने से भी कुछ आगे बढ़कर जिनसे प्यार करने की, बल्कि जिनका प्यार पाने की लालसा मुझे सदा रही है। परन्तु पता नहीं, क्योंकि हर जगह प्यार के मुआमले में जब मेरी बारी आती है तो यह सब ज़ालिम पहले ही से बहुत अधिक व्यस्त क्यों दिखायी देते हैं, अतः पृथ्वीराज भी···परन्तु मैं आगे कुछ नहीं कहूँगा, क्योंकि मेरा इरादा एक दिन उसके बारे में एक कहानी लिखने का है और मैं उस कहानी के कीमती मसाले को यहाँ नष्ट नहीं करना चाहता। हाँ, तो बम्बई पहुँचने पर सबसे पहले पृथ्वीराज ने मेरे साथ अपने सुविख्यात 'पृथ्वी थियेटर्स' के लिए एक नाटक लिखने का एग्रीमेण्ट किया; परन्तु कुछ इस प्रकार का कि वह तो मुझे उसी दिन से प्रतिमास एक बँधी हुई क़िस्त की नियत रक़म देता चला जाये और मैं पहले अपना उपन्यास आराम से सम्पूर्ण कर लूँ और फिर नाटक की ओर रुख करूँ।

यहाँ मुझे अपने मित्र पुरोहित का भी धन्यवाद करना है जिसने बम्बई की इस मानव-सहारिनी भीड़ में भी अपने इस प्रशांत 'तेरेस विला' में शरण देकर मुझे इस उपन्यास को सड़क की पटरियों पर बैठकर लिखने से बचा लिया, और उसके साथ ही नीलू भाभी और पार्वती भाभी का भी, जिन्होंने कई बार यह देखकर कि यह पगला तो लिखने के शौक में खाने के लिए भी बाज़ार तक आने-जाने का समय 'बर्बाद' नहीं करेगा, और इसी तरह भूखा ही बैठा काम करता रहेगा; अक्सर चुपके से खाने की थाली कुछ ऐसी अपील और दया की मिली-जुली भावना से मेरे सामने लाकर रख दी है, मानो मैं कुछ खा लूँगा तो उनका कोई बहुत बड़ा उपकार करूँगा। और इस प्रकार उन्होंने कई बार तो लीला की अनुपस्थिति

और अभाव को भी मेरे मन में खटकने नहीं दिया—लीला जो विवाह के बाद आज तेरह वर्षों से एक संरक्षक देवी (Guardian Angel) की भाँति मेरी कुछ इस प्रकार रक्षा करती आयी है कि कई बार यह ख्याल आता है कि यदि वह इस विकट जीवन-पथ पर मेरी साथिन न होती, तो क्षयरोग से इस प्रकार साफ बच निकलना तो दूर रहा, मैं यदि अच्छा-भला भी होता तो जिन दुखों और मुसीबतों को मैंने उसके साथ हँसते-हँसते सहन कर लिया, वही मुझ अकेले को क्षय-ग्रस्त कर देने के लिए काफ़ी होतीं।

खैर, इन परिस्थितियों में भी अबतक दोनों समय भोजन मिलता रहा है। यहाँ तक कि गत ४ मई १६४८ को उपन्यास का आखिरी खण्ड भी सम्पूर्ण कर लिया। अतः यह जो पुस्तक अब आपके सामने है इसकी बाह्य त्रुटियों के जिम्मेदार श्री अमृतराय हैं, और आंतरिक त्रुटियों का मैं और मेरे हालात।

* * *

यह उपन्यास प्रेस में जा रहा है और मैं फिर उदास हूँ। इस सिल-सिले में मैं अपने एक पत्र की कुछ पंक्तियाँ नकल करके आपके धैर्य्य की परीक्षा समाप्त करता हूँ। यह मैंने इन्हीं दिनों एक मित्र को लिखा है—

"...अलबत्ता इतना जानता हूँ कि इस हंगामी युग में जिन पात्रों ने डेढ़ साल तक बड़ी वफादारी से हर अच्छे-बुरे समय में साथ दिया है, उनसे बिछुड़ते हुए बहुत तकलीफ हो रही है, उनमें से कुछ तो उपन्यास के बीच में ही बड़े दर्दनाक हालात में मर गये, और जो शेष रह गये थे, उन्हें कल प्रकाशक के हवाले कर दूँगा, और मैं उसके बाद फिर एक अकेलापन और उदासी महसूस कर रहा हूँ।

इस म्लान से शून्य को भरने का एक ही उपाय है कि कुछ नया लिखना आरम्भ कर दूँ, और लिखने को है भी बहुत कुछ, जो अन्दर-ही-अन्दर मचल रहा है; परन्तु ऐसा मालूम होता है कि अब मैं एक दीर्घ

काल तक खालिस साहित्यिक तौर पर कुछ नहीं लिख सकूँगा, क्योंकि इस मानसिक या हार्दिक शून्य को भरने से पहले पेट के इस महा-शून्य को भरना दर्दनाक हद तक आवश्यक हो गया है...''

बम्बई —सागर

*

हिंदी-संस्करण के लिए

हिंदी-साहित्य के दरबार में मैं पहली बार प्रवेश कर रहा हूँ। 'एक अनजान व्यक्ति इस प्रकार एक तुच्छ-सा उपहार लेकर इस विराट् राज दरबार में आने का साहस कैसे कर सका है,' यह प्रश्न, मुझे निश्चय है, कि आप में से कोई नहीं करेगा ; क्योंकि, यदि मेरा उपहार अति गौण ही है, तो भी आप उस ओर लक्ष्य न करके केवल मेरे हृदय की सद्भावना ही को देखकर इसे स्वीकार करेंगे, ऐसी ही आशा मुझे आपके सौजन्य से है। और फिर यदि आज मैं आपकी कृपादृष्टि ही का पात्र बन सका तो कौन कह सकता है कि उससे उत्साह पाकर मैं किसी दिन कोई ऐसा काम न कर सकूँगा, जो मुझे आपकी प्रशंसा का पात्र भी बना दे।

मेरी इस भेंट में कितनी त्रुटियाँ हैं, यह जताने की आपको आवश्यकता नहीं। मुझे उनका पूरा अहसास है। उनके उत्तरदायित्व का सारा बोझ भी अकेले मुझपर ही है। हाँ, चाहूँ तो अमृतराय जी को भी साथ में लपेट सकता हूँ ; क्योंकि उन्होंने ही यह कहकर मेरे दुराग्रह को और भी प्रबल बना दिया था कि 'तुम उसी भाषा को केवल नागरी-लिपि में लिख लो तो भी चलेगा।' यह 'चलेगा' कहाँ तक सम्भव होता, यह मैं नहीं जानता। परंतु, मुझे वह तरीका पसंद न था। इसके साथ ही मैं केवल भाषा के अनुवाद से भी संतुष्ट न हो सकता था। मैं तो भावों का शुद्ध अनुवाद भी चाहता था, बल्कि भाषा में भी पहला स्थान उसीको देता था। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं भाषा या शैली को गौण समझता हूँ, यदि ऐसा होता तो अमृतराय जी की बात मैं अक्षरशः स्वीकार कर लेता। इस समस्या

का एक हल यह भी था कि मैं स्वयं ही अनुवाद करूँ, परंतु अनुवाद के लिए दोनों भाषाओं पर जो अधिकार आवश्यक है, दोनों ओर वह मेरी पहुँच से परे की वस्तु हैं। बहुत सोच-विचार के बाद मैंने यही निश्चय किया कि मैं उर्दू में लिखे हुए के आधार पर इस उपन्यास को हिंदी में नये सिरे से ही लिखूँ, और अंततः वही मैंने किया। अपनी भाषा की दीनता का अहसास होने के बावजूद अब मुझे यह संतोष तो प्राप्त है कि मुझे जो कुछ कहना था और जिस रंग में कहना था, उन भावों को उनका असली रंग बिगाड़े बिना ही आपके सामने पेश कर सका हूँ। अतः आप से भी मेरी यही प्रार्थना है कि मेरी बातों में यदि कोई तथ्य आपको मिले, तो उसकी अवहेलना केवल इसी कारण से न कर दीजियेगा कि वह किसी गँवई-गाँव के अनपढ़ व्यक्ति की-सी भाषा में कही गयी है।

हिन्दी संस्करण के विषय में मुझे अपने परम मित्र पुरोहित के प्रति अपनी कृतज्ञता भी प्रकट करनी है जिन्होंने इसकी पाण्डुलिपि को पढ़कर इसकी बहुत-सी त्रुटियों को कम कर दिया।

—सागर

प्रथम खण्ड

पहला परिच्छेद

हाल में एक छोटी-सी घंटी की आवाज़ सुनायी दी और नाचनेवाली के पाँव एकदम से थम गये। और उसके साथ ही उसके ओंटों पर नाचता हुआ वह पंजाबी गीत भी—

न कर गोरिये मैलियाँ अखियाँ कल परदेसियाँ तुर जाना
नदी-नाव संजोगी मेले कौन जाने कद मुड़ आना*

गीत के बंद होते ही आनंद को एक धक्का-सा लगा। घूमकर देखा तो सारे हाल पर एक वीरानी-सी छायी नज़र आयी। कैफे के उस विशाल हाल में, जहाँ एक सौ से ज्यादा टेबल बिछे हुए थे, केवल सात आदमी बैठे थे। और कैब्रे-गर्ल के अतिरिक्त सारे हाल में औरत एक भी न थी।

'कर्फ्यू'—न जाने किसने यह शब्द बड़ी धीमी आवाज़ में कहा और फिर हवा का एक ही झोंका बड़ी राज़दारी के अंदाज़ में उसे हरेक के कान तक पहुँचा आया। उन सबने एक ही साथ घड़ी की ओर देखा, और फिर काउंटर की ओर, जहाँ से बिल लेकर बैरे अपनी-अपनी टेबल की तरफ़ लम्बे-लम्बे क़दम बढ़ा रहे थे।

उसने अपने चारों ओर देखा और उसे ऐसा लगा जैसे स्वयं उसीकी

---

*ए गोरी अपनी आँखें मैली न कर, हम परदेसी लोग
तो कल चले जायँगे।
हम सबका मिलना नदी-नाव के संयोग की तरह है
सो कौन-जाने कब वापसी (या न हो)

कँटीली और खतरनाक पगडण्डी को एक सभ्य नगर का जीवित और ज्योति-पूर्ण राजपथ बनाने के लिए मानव ने हज़ारों वर्ष अथक प्रयत्न किया, चाहे उसके लिए उसे ईशु, मुहम्मद और बुद्ध-जैसे अपने महान् साथियों का बलिदान भी देना पड़ा...और आज, हज़ारों वर्षों की उन कोशिशों और कुर्बानियों के बाद थोड़े-से स्थानीय मनुष्यों ने थोड़े-से दिनों में फिर उस का सारा रक्त चूस लिया था। मनुष्य फिर वहशी हो गया था और डरने लगा था। वह सोचने लगा कि शायद वहशत ही का दूसरा नाम डर है। परन्तु इस निर्बलता में भी कितना बल है कि वह हज़ारों वर्षों की मेहनत पर चंद क्षणों में पानी फेर देती है...और फिर यदि एक लाहौर की माल रोड का खून चूस लेने से सारे पंजाब की सड़कों पर मुर्दनी छा जाती है, तो सारे पंजाब की यह मौत दिल्ली के चाँदनी चौक को कब छोड़ेगी? और फिर उस की मौत न्यूयार्क के सिटी स्क्वायर, लंदन के ट्रैफाल्गर स्क्वायर व मास्को के रेड स्क्वायर को जीवित रहने का हक़ कब देगी? फिर इसी तरह एक दिन वे सब मर जाएँगे। नहीं-नहीं...! वह इस विचार ही से काँप उठा। परन्तु सत्य को वह कबतक झुठला सकता था? उसके मस्तिष्क में बार-बार ये प्रश्न जाग-जाग उठते कि क्या हज़ारों साल तक इन्सान केवल रेत का एक महल तैयार करने में लगा रहा? और फिर आज से हज़ारों साल बाद भी क्या मानव को इसी प्रकार बिहार और नोआखाली के कँटीले जंगलों और दलदलों में नंगे पाँव घूम-घूमकर वहशियों को समझाना पड़ेगा, ताकि उनकी वहशत और बर्बरता दूर की जा सके? और फिर क्या उसे भी इसी तरह झूठे वचन दिये जायँगे?...तो क्या यह सब कुछ झूठ और फ़रेब है?—प्रेम और मुहब्बत के सब पैग़म्बर क्या केवल धोखेबाज़ थे?—तो क्या ताजमहल को प्रेम और आत्म-भक्ति के नाम पर बहाये गये आँसुओं से नहीं बनाया गया? क्या वह केवल बेजान पत्थरों का एक ढेर है?—

और उसे ऐसा भान हुआ जैसे मुट्ठी-भर आदमी मिलकर लाखों

इन्सानों की मेहनत से बने हुए ताजमहल को खंड-खंड कर रहे हों, और परिश्रम और कारीगरी से बने हुए उसके पत्थर टुकड़े-टुकड़े होकर चारों दिशाओं में बिखर रहे हों।...और उस अँधेरी सुनसान सड़क पर चलता हुआ वह परेशान हो गया। वह चाहने लगा कि काश कोई शाहजहाँ फिर से पैदा हो जाय, जो पत्थर के इन टुकड़ों को प्रेमाग्नि में पिघलाकर फिर आँसुओं की बूँदें बना दे! और आँसू की हर बूँद फिर एक ताजमहल बन जाय...

परन्तु जो उस समय उसे अपने चारों ओर आँसुओं का एक समुद्र दिखायी दे रहा था—विधवाओं और अनाथों के कोटि-कोटि अश्रुओं का एक ठाठें मारता हुआ समुद्र। परन्तु वह अब मिलकर एक भी ताजमहल न बना सके थे, अलबत्ता उस समुद्र के चप्पे-चप्पे पर खून के लाल फव्वारे नृत्य कर रहे थे—फ़सादी के छुरे और पुलिस की गोलियों से मारे जाने-वालों के गरल-गरल करके बहते हुए लहू के फव्वारे, जिनकी धारें भूख और व्यथा की आग में जलनेवाले अनाथों और विधवाओं की अश्रु-धाराओं में घुल रही थीं।

लहू की धारों का विचार आते ही उसे अपने मुहल्ले का वह युवक अजीत याद आ गया, जो चौबीस घंटे तक आग से लड़ता रहा था। मुसलमानों ने उनके मुहल्ले में आग लगा दी थी। और इसके अतिरिक्त आग बुझानेवालों पर पथराव के अलावा वे लोग मुस्लिम पुलिस की मौजूदगी में उन पर आग बुझानेवाले पम्प की सहायता से पानी की जगह और पेट्रोल फेंक रहे थे। परन्तु इस युवक ने आग को एक मकान से आगे न बढ़ने दिया था। उसकी शादी को अभी तीन महीने हुए थे, उसकी पत्नी की कलाइयों में अभी लाल चूड़ा मौजूद था। परन्तु वह आग से बराबर लड़ता रहा। यहाँ तक कि आग पर काबू पा लिया गया। मगर इतनी ही देर में हवा ने रुख पलटा और आग की लपटों ने आगे बढ़कर बाजार के उस पार मुसलमानों के एक मकान को अपनी लपेट में लेना

चाहा, तो उस वीर ने खिड़की में से आधा धड़ बाहर निकालकर उस मकान पर भी पानी फेंकने की कोशिश की। ठीक उसी समय सामने के कोठे पर बैठी हुई मुस्लिम पुलिस पिकेट के सिपाही ने राइफल का घोड़ा दबा दिया। गोली उसके माथे को चीरती हुई निकल गयी।

वह दृश्य एक बार उसकी आँखों के सामने से फिर गया, जब उन्होंने अजीत को अस्पताल ले जाने के लिए चारपाई पर डाला था। उसके माथे से गरल-गरल करता हुआ लहू एक फव्वारे की तरह फूट रहा था—उसकी पत्नी की कलाइयों में पड़ीहुई चूड़ियों के रंग का-सा लहू—! अस्पताल तक पहुँचने से पहले ही लहू बंद हो गया था, और उसके दिमाग की पिलपिली-सी चर्बी बाहर को लटक आयी थी। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, मगर आँखों के पपोटे और ओंठ स्याह नीले हो गये थे—बिल्कुल इस सड़क की फीकी-सी पीली रोशनी और अँधियारे आकाश के बेजोड़ मिश्रण की तरह। और फिर उसे उस सुनसान फुटपाथ के पत्थरों पर अपने बूटों की आवाज़ कुछ इस तरह की मालूम होने लगी जैसे कहीं लाल चूड़ियाँ टूट रही हों। और फिर जैसे इन टूटनेवाली चूड़ियों के टुकड़े एक लाल फव्वारे की तरह हवा में नाचने लगे...

उसे यह भी याद आया कि इस घटना के बाद गली के चौधरियों को इस बात की चिन्ता होने लगी कि वे भी किसी प्रकार कुछ हिंदू सिपाहियों की पिकेट अपने मुहल्ले में भी बैठा लें। और दो-ही-चार दिनों की दौड़-धूप के बाद बड़े अफसरों ने उनके मुहल्ले में एक हिंदू पुलिस पिकेट का प्रबंध कर दिया। चुनांचे इस प्रकार केवल चंद हज़ार रुपये खर्च करने के बाद यह हालत हो गयी कि कर्फ़्यू के समय में भी यदि आवश्यकता होती, तो स्वयं पुलिस के सिपाही को कहा जाता कि अमुक स्थान से इतने बम और हथियार ला दो, तो वह सरकारी तौर पर गश्त करता हुआ जाता और आवश्यक चीज़ें ला देता। इन हालतों में शांति की सम्भावनाएँ बिल्कुल ख़तम हो गयी थीं। प्रतिदिन बड़े अफसर अमन

कमेटियाँ बनाने में लगे रहते, और प्रतिदिन दोनों ओर से एक दूसरे पर कई-कई बार खुले हमले भी किये जाते........

अचानक उसे ख्याल आया कि उसे मुहल्ले से निकले हुए तीन घंटे हो गये थे। पता नहीं, इस बीच वहाँ क्या हो गया हो। क्या जाने कि बाज़ार के उस पार वाले मुसलमान आज ही आग लगाने में सफल हो गये हों। फिर उसका तो सब कुछ उसके मकान पर ही था। उसकी सबसे बड़ी जायदाद उसके कुछ मसविदे मेज़ पर खुले पड़े थे—उन कविताओं के मसविदे, जो उसने केवल अपनी प्रियतमा की खातिर लिखी थीं।

और यह विचार आते ही चहलकदमी की सारी रुचक जाती रही और उसने अपने मुहल्ले की ओर लम्बे लम्बे डग भरने शुरू किये।

* * *

बीडन रोड से गुज़रा तो केवल दो-चार आदमी तेज़-तेज़ पग उठाते इधर से उधर जाते दिखायी दिये। किनारे के एक मकान से रेडियो की आवाज़ आ रही थी—

सावन आया तुम नहिं आये
तुम बिन रसिया कछु नहिं भाये।

यह विरह-गान सुनते हुए वह सोचने लगा कि इन चंद हज़ार वर्षों में इन्सान ने कवि के रूप में अपना स्थान खुदा और परमात्मा से भी कहीं ऊँचा बना लिया है। चुनांचे आज भी, जबकि मुसल्मान अपने जन्नत-मकानी खुदा का फतह का नारा लगाने के लिए और हिंदू अपने स्वर्गवासी परमात्मा की जय जयकार करने के लिए अपने पहलू में चलनेवालों के खून से होली खेल रहे हैं, उस समय भी कवि हज़ारों लाखों मील दूर गये अपने साथी को पुकार रहा है। यहाँ तक कि उसके बिना उसे वर्षा-ऋतु की बहार में भी कोई आकर्षण या रस जान नहीं पड़ता। और उसने महसूस किया कि संसार को आज राजनीतिज्ञों की नहीं बल्कि कवियों की

आवश्यकता है। इन कूटनीतिज्ञों की जगह जो हर प्रश्न की गंभीरता को आगामी चुनाव की वोटों के तराज़ू में रखकर तौलते हैं, हमें उन कवियों की आवश्यकता है जिन्हें उच्च-स्थानों का लालच नहीं, जो आदमियों को सच्चे इन्सान बनने की शिक्षा दे सकें, जो उन्हें अपने साथियों को अपना प्रेम-पात्र बना लेने का मंत्र सिखा सकें। जिस तरह टैगोर ने कहा था कि—

> मैं इस प्रतीक्षा में बैठा हूँ कि शायद कोई दो
> दिल परस्पर मिल जायें, और दो युगल नेत्रों को
> खामोशी का बंधन तोड़ने और अपने भावों का दूत
> बनाने के लिए मेरे गीतों की आवश्यकता हो।
> किसीके पास मुस्कराहटें हैं, मीठी और सादा,
> और किसीके पास आँसू हैं जो उसने अपने
> गूढ़ एकांतों में छिपा रखे हैं।
> इन सबको मेरी आवश्यकता है, चुनाचे मेरे
> पास जीवन के उस पार की बातें सोचने का समय
> नहीं है।

और जैसे किसी वैशाखिक बादल के सीने में एकदम से बिजली कौंध जाय, इस गीत के साथ ही उसके मस्तिष्क में कर्फ़्यू का विचार फिर चमक उठा। घड़ी देखने ही उसे पता चला कि कर्फ़्यू लगने में अब केवल इतनी देर रह गयी थी कि उसे मिशनरी से घर पर पहुँचने के लिए दौड़ लगाने की आवश्यकता थी।

* * *

जब वह घर पहुँचा, तो कुमार की कल्पना की [illegible] पूरी हो चुकी थी। [illegible] के नये [illegible] पर एक साधारण-सा नाटक [illegible] किया गया था [illegible] कुमारी [illegible]। बाद

पहुँचते ही उसने देखा कि मुहल्ले के सबसे बड़े सेट किशोरलाल की उस बैठक में मुहल्ले के सब मर्द जमा थे, जहाँ आम हालत में उनकी पहुँच बहुत मुश्किल थी। बल्कि उसकी खिड़कियों में से भी मामूली आदमी की निगाह अंदर जाने की मजाल न रखती थी क्योंकि वहाँ प्रायः सेठ की नौजवान लड़कियों का झुरमुट अपनी किलोलों में व्यस्त रहता था।

संगमर्मर पर ईरानी कालीनों का फर्श बिछा हुआ था और उन पर मुहल्ले के नौजवान कुछ इस अदाज़ में बैठे हुए थे, जैसे उस फर्श के एक एक इंच पर रूप और यौवन के स्पर्श की छाप लगी हो और उस एक-एक इञ्च पर मुकम्मल शारीरिक कब्ज़ा करना ही उनके जीवन का उद्देश्य हो।

स्वयं सेठजी अचानक बेहद मिलनसार हो गये थे। पिछले कुछ दिनों से उन्होंने मुहल्ले के हरेक आदमी से बात करना शुरू कर दिया था। अब इतना ही नहीं कि वह नमस्ते का जवाब हँसकर देने लग गये थे, बल्कि कभी-कभी स्वयं भी पहले नमस्ते कर लेते थे। जबसे फसाद शुरू हुआ था, विशेषतया मुहल्ले के नौजवानों के साथ उनका बर्ताव बिलकुल बदल गया था। पहले से बिलकुल उलटा। अब किसी युवक को देखते ही उनकी निगाहों में 'स्वागतम्' का-सा अंदाज़ पैदा हो जाता। सुना गया था कि सेठजी की तिजोरियों में ब्लैकमार्केट का कई लाख रुपया नक़द पड़ा हुआ था। और वह फ़साद के कारण बैंक न खुलने की वजह से बहुत परेशान थे।

सेठ किशोरलाल ने आनंद को आते देखा तो मुस्कराकर कहा—'आओ कविजी! किधर से आये हो?'

'बस, योंही मॉल रोड तक गया था।'

'अच्छा!' सेठ ने अचम्भे से पूछा, क्योंकि उसके विचार में इन दिनों मॉल रोड तक जाने के लिए मनुष्य के दिल में भीम का बल होना चाहिए था। 'तो सुनाइये, शहर का हाल-चाल, कोई नयी ताजी खबर।'

"कोई नयी बात नहीं सेठजी ! बस वैसी ही हालत है।"

सदा की भाँति कवि के संक्षिप्त उत्तर से सेठ की तसल्ली नहीं हुई, हरेक से यही सवाल पूछना जैसे उसकी आदत हो गयी थी। और प्रायः लोग इस मौके से लाभ उठाकर सेठ साहब से ज्यादा-से-ज्यादा बातें करने के लिए शहर की मामूली-से-मामूली घटना को भी खूब लम्बी करके बयान करते। परन्तु सेठ को तो जैसे कोई भी तसल्ली न दे सकता था।

वह हरेक से यह भी पूछा करता कि 'अच्छा, तुम्हारा क्या विचार है? लाहौर हिंदुस्तान में रहेगा या पाकिस्तान में?' और हर कोई अपनी-अपनी पसन्द के अनुसार जवाब देता। परन्तु उसे तो चाहिए थी कोई पक्की सूचना! अलबत्ता मुहल्ले में एक ही मनुष्य की सूचनाएँ उसे किसी हद तक प्रभावित कर सकती थीं, और वह था सरदारी लाल, जिसे यार लोग 'मीना गज़ट' के नाम से पुकारा करते।

इतने में सामने से वहीं सरदारी लाल आता दिखायी दिया। सेठजी ने फौरन चेहरे पर एक मुसकराहट चिपकाकर उसकी ओर रुख किया और कवि को शिष्टाचार के बंधन से छुटकारा मिला। इतने में एक कोने में बैठे हुए कुछ युवकों ने उसे पुकारा—

'आनन्द, इधर आ जाओ!' और वह उनकी ओर चला गया।

इधर सरदारी लाल ने बैठते ही ऊँची आवाज़ में कहना शुरू किया।—"[illegible] लड़ाई हो गयी है।"

"कहाँ?" एक साथ कई आवाज़ों ने पूछा।

"रंगमहल में।"

और सब लोग आगे को झुककर उसकी बातें सुनने लगे।

"एक मिनट में इसी बाजार में तीन मुसलमानों को [illegible] गया है, और पाँच घायल हुए हैं। पुलिस अभी-अभी लाशें उठा के बाजार से [illegible] है। [illegible] मुसलमानों ने [illegible] और [illegible] ने [illegible] [illegible] कर दिया। [illegible] हिन्दू मुहल्ले को [illegible]

मुस्लिम पुलिस ने, जो पहले ही से मकानों पर छिपी बैठी थी, हिंदुओं पर गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं।"

इतने में कुछ ऐसी आवाजें आयीं, जैसे उनके सिरों पर ही कुछ पटाखे फटे हों।

"यह देखो थ्री नाट थ्री की राइफ़लें इस्तेमाल की जा रही हैं।" किसीने कहा। और फिर सारी सभा में एक हलचल-सी मच गयी। लोगों ने सरदारी लाल को चारों ओर से घेर लिया। कुछ लोग मौके से लाभ उठाकर चुपचाप जूते पहनकर अपने-अपने मकानों को खिसक गये। सेठ साहब ने जोर-जोर से अपने नौकर को आवाजें देनी शुरू कर दीं।

"ओ ए संतू के बच्चे, वह दूध जो रखा हुआ है, नीचे क्यों नहीं लाता? तुझे वह इन सब लड़कों को पिलाने के लिए कहा था न!"

"लाया शाहजी।" ऊपर से आवाज़ आयी।

"और वह दस सेर बरफ़ भी रखी है। वह सारी उसमें डालकर लाना। गर्मी बहुत है, और ये बेचारे सुबह से इसी तरह पहरे पर बैठे हुए हैं।"

इधर राइफ़लों की तड़ाख-पटाख के साथ-साथ अपने निशानों की तरफ़ जाती हुई गोलियों की 'शूँ' सी लम्बी आवाजें बराबर आ रही थीं।

"लेकिन गोलियों की आवाज़ों से तो यूँ महसूस होता है जैसे दोनों ओर से आ-जा रही हों," किसीने कहा।

सरदारी लाल ने झट जोड़ दिया—"हाँ-हाँ, दोनों तरफ से, इधर भी वाला बंदूक लिये बैठा है। और भी कई हिंदू उसकी मदद को पहुँच रहे हैं, वह भी किसी हिंदू सिपाही को ढूँढ़ रहे हैं, जिसे वह एक हज़ार रुपये तक देने को तैयार हैं। लेकिन असल में तो अकेले गले ने ही यह मोर्चा जीत लिया है। अबतक तीन मुसलमान सिपाहियों को वह कोठे से गिरा चुका है। वाह! क्या निशाना है उसका!"

इतने में गोलियों की आवाज़ बंद हो गयी थी। लोग फिर जरा पीछे हटकर अपनी-अपनी सीटों पर ज़रा आराम से हो बैठे। सरदारी

लाल कुछ और कह रहा था कि अचानक सेठजी को कुछ याद आ गया और उन्होंने जोर से आवाज दी।

"ओ ए संतू !"

"जी, दूध में बरफ़ डाल दी है, बस आ रहा हूँ।" संतू की आवाज़ में घबराहट थी।

"ओ ए सुन। उसमें से दो-चार सेर बरफ़ मेरे लिए रख लेना, और आधा दूध बच्चों के लिए ऊपर ही छोड़ आना। आज तेरी बीबी ने भी रोटी नहीं खायी। उसके लिए भी कुछ रख लेना।"

संतू की आवाज़ आयी—"बहुत अच्छा शाहजी।"

* * *

उधर आनन्द नौजवानों के बीच बैठा उनकी बातें सुन रहा था। स्वर्गवासी अजीत की पत्नी की चर्चा हो रही थी।

प्रकाश ने कहा—"भई, सच तो यह है कि इन फटे कपड़ों में भी उसका रूप चमक उठता है।"

"लेकिन उसकी शादी पर तो अच्छे-अच्छे कपड़े बने होंगे। वह उन्हें क्यों नहीं पहनती?" एक नीमजवान लड़के ने पूछा।

"उसका पति जो मर गया है, अब वह किसके लिए रंगीन कपड़े पहने?"

"हम जो क़दरदाँ बैठे हैं, फिर उसे किस बात की कमी है?" प्रकाश ने कहा।

"कमी तो बहुत है।" किसीने हमदर्दी दिखाते हुए कहा—"सुना है कि ससुरालवालों ने उसे यह कहकर अलग कर दिया है कि इस करम-जली ने आते ही उनके बेटे को खा लिया है। अब उसकी हैसियत वहाँ केवल एक नौकरानी-जैसी है।"

"उनके लिए नौकरानी होगी, अपने लिए तो दिल की रानी है। क्यों कवि?" नरोत्तम ने सीने पर हाथ रखते हुए आनंद की ओर देख कर कहा।

जवाब में आनंद केवल मुस्करा दिया। उसे वह दिन याद आ गया जब वह ब्याह के बाद पहली बार ससुराल आयी थी। अजीत से चंद कदम पीछे वह दोनों हाथों की दो-दो उँगलियों से घूँघट को ज़रा-सा खोलकर रास्ता देखने की कोशिश करती हुई नपे-तुले पग रखती गली में दाखिल हुई थी। इत्तिफ़ाक की बात कि उसी समय रेडियो पर कोई 'हीर' गाता हुआ वारसशाह की इन पंक्तियों पर पहुँचा था—

"धुंड हुस्न दी आब नूं मार देंदा, धुंड लाह दे मुंह तो डारिये नी।
वारसशाह न दबिये मोतियाँ नूं, फुल अग दे विच न साड़िये नी॥"

उस समय उसकी आँखों में क्षण-भर के लिए एक ऐसी शोख़-सी चमक पैदा हुई थी, और उसकी चाल में एक अनदेखी-सी लड़खड़ाहट के साथ उसका घूँघट क्षण मात्र के लिए कुछ इस प्रकार खुल गया था कि आनंद को वारसशाह पर ईर्ष्या होने लगी थी, जिसकी कविता को उस एक क्षण में इतना महान् उपहार भेंट किया गया था।

"अजीत मुफ्त में मारा गया। उसने तो एक भी ईंट नहीं चलायी थी। कहता था कि मैं केवल आग बुझाने का काम करूँगा।" बातचीत का केंद्र थोड़ा बदल गया था।

दूसरे ने कहा—"भई, वह कोठे पर आने से डरता था, कि कहीं कोई ईंट-पत्थर न लग जाय।"

"वह तो बड़ा गांधी-भक्त बना फिरता था," किसीने कहा।

"डरपोक और कायर इसी तरह के बहाने ढूँढ़ लिया करते हैं, और फिर बिन आयी मौत भी वही मरते हैं।" पास से नरोत्तम ने कहा—हमें देखो, उस दिन छः घंटे तक बराबर कोठे से ईंटें चलाते रहे, और रात को आग के गोले मुसल्मानों के मुकाबले पर बराबर फेंकते रहे।"

"मगर यार—लड़कियों ने भी उस दिन कमाल कर दिया। रात भर वह ईंटों को तोड़-तोड़कर रोड़े बनाती और उन्हें कपड़ों में

बाँधकर पेट्रोल के टब में डालती रही हैं। हम तो बस उन्हें आग लगाते थे और बाज़ार के उस पार मुसलमानों के मुहल्ले में फेंक देते थे।"

"भई, सच पूछो तो मुझे तो कुछ गोलों से मेंहदी की सुगंध आ रही थी। हाय! किन नाज़ुक हाथों से बने हुए थे वह! कि उन्हें फेंकते समय न-जाने इतनी शक्ति कहाँ से आ जाती थी।"

बराबर में बैठा हुआ वही नौजवान लड़का बोल उठा—"उस दिन तो सेठ की तीनों लड़कियाँ भी नंगे पाँव काम करती फिर रही थीं।"

"लेकिन मैंने तो सुना है कि सेठ अपने बाल-बच्चों को हरिद्वार भेज रहा है," एक नौजवान ने कुछ ऐसे अंदाज में पूछा जैसे इस बात का ख्याल ही उसकी हिम्मत तोड़ रहा हो।

"अरे! अभी कहाँ? अभी स्टेशन तक पहुँचना ही कौन-सा आसान काम है।" किसीने उत्तर दिया।

"मगर रिलीफ़ के ट्रक जो हैं," उसने फिर पूछा।

"इन ट्रकों पर ही तो बम भी गिरते हैं ना? और फिर हिंदू-मुसलमानों दोनों के रिलीफ ट्रक आजकल हथियार ढोने का काम अधिक करते हैं, पीड़ितों को लाने-ले जाने का कम।"

"बम की बात कहो तो ठीक है, वरना रिलीफ़ के ट्रक गरीबों के लिए न सही, अमीरों के काम को तो न नहीं कर सकते।"

और फिर बातचीत का रुख बमों की ओर हो गया।

प्रकाश कहने लगा—"काश मेरे पास एक ऐटम बम होता तो मैं सारे पंजाब के मुसलमानों को एक ही बम से खत्म कर देता।"

आनंद इसपर हँस दिया—"तो इस तरह क्या हिंदू बच जाते?"

"तुम भी निरे कवि हो। अरे भाई, मैं सब हिंदुओं को एक घंटे के लिए पंजाब से बाहर न निकाल लेता?"

"केवल आदमियों को बाहर निकालने से क्या होता? उनके मकान, उनकी गलियाँ, उनकी परम्पराएँ और उनके पुरखों की कहानियाँ, जिनका

संबन्ध इस धरती के चप्पे-चप्पे से है, उनके पुरखों की यादगारें और उनकी सभ्यता, और उनकी संस्कृति—क्या यह सब कुछ पंजाब में न रह जाता? इस सूरत में तुम्हारा ऐटम बम क्या मुसलमानों के साथ-साथ हिंदुओं का भी सब कुछ तबाह न कर देता? और फिर जिन्हें तुम अपनी हज़ारों वर्षों की परम्पराओं और सभ्यता से इस प्रकार वञ्चित और नंगा करके परदेश में ले जा पटकते, उनकी हालत का कुछ अनुमान कर सकते हो? क्या तुमने पंजाब की वह लोकोक्ति नहीं सुनी कि 'शाला परदेसी कोई न होवे त कख जिन्हाँ ता भारे'। मेरे मित्र, परदेश में मनुष्य एक तिनके से भी हल्का हो जाता है।"

उसके इस उपदेश के ढंग से ऊबकर नरोत्तम ने बीच में टोक दिया, "अरे छोड़ो भी। तुम लोग तो किताबी किस्म की बातों में लग गये। अलबत्ता अगर मेरे बस मे हो तो एक बम कम-से-कम उस मजिस्ट्रेट के सिर पर तो जरूर फोड़ूँ, जिसने उस दिन दो सौ हिंदुओं को एक कत्ल की जाँच के बहाने एक बड़े अहाते में जमा करके उन पर किसी मुसलमान से बम फेंकवाया।"

"तो कैप्टन से एक बम माँग क्यों नहीं लेते।" उसी नौजवान लड़के ने जवाब दिया।

इस बात से तमाम लड़के चौंक पड़े। प्रकाश ने झट उसकी बात काटी—"कैप्टन के पास कहाँ से आया रे?"

वह लड़का यह समझकर चुप हो गया, कि उसने कोई ऐसी बात कह दी है जो उसे न कहनी चाहिए थी। दूसरे तमाम नौजवानो ने उसकी ओर घूर कर देखा। दरअसल लोग इस भेद को दूसरे लोगों पर प्रकट नहीं करना चाहते थे। विशेषकर पास ही बैठे हुए लाला बनवारीलाल पर, जो इस प्रकार हथियार इत्यादि रखने का कट्टर विरोधी था। वह प्रायः कहा करता था कि इन छोकरों के हाथों में मुहल्ले की बागडोर देकर बड़ी गल्ती की गयी है। यह किसी दिन मुहल्लेपर कोई-न-कोई आफत अवश्य

ले आयेंगे और उस दिन सारे मुहल्ले के हाथों में हथकड़ियाँ पड़ जायँगी।" वह मुहल्ले का सबसे बड़ा अमनपसन्द था और अमन कमेटी का मेम्बर भी। उसकी शांतिप्रियता का यह हाल था कि एक दिन जब साथवाले मुहल्ले में आग लगी हुई थी, तो उसने अपने मकान में से जिसके दर्वाजे दोनों मुहल्लों में खुलते थे, न केवल अपने इन नौजवानों को रास्ता देने से इन्कार कर दिया, जो उधर आग बुझाने के लिए जाना चाहते थे, बल्कि दूसरे मुहल्ले की उन औरतों और बच्चों को भी मना कर दिया, जो बढ़ती हुई आग के कारण इस मुहल्ले में पनाह लेने आये थे। क्योंकि उसे यह सूचना मिल चुकी थी कि साथवाले मुहल्ले में पुलिस का एक दस्ता आनेवाला है। और हर अमनपसन्द की तरह वह पुलिस से बहुत डरता था। चुनांचे उसने साफ कह दिया था कि "कर्फ्यू के समय में मैं तुम लोगों को इस प्रकार एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले में जाने नहीं दूँगा। यह कानून के विरुद्ध है और फिर जब कि तुम्हारे पास यह सिगरिटों के डिब्बे भी हैं जिनमें तुमने बम छुपा रखे हैं।"

सब नौजवानों को उसकी एक-एक बात याद थी। चुनांचे नरोत्तम ने उस नीमजवान लड़के को भेद बताते हुए धीमी आवाज़ में कहा—'यह बात कहते समय तुम्हें ख्याल नहीं आया कि तुम्हारी बगल में एक महात्मा गांधी बैठा हुआ है, जो अभी हम सबको पुलिस के हवाले कर देगा।"

इसपर एक फर्मायशी कहकहा लगा, जिसके समाप्त होने से पहले प्रकाश ने बड़े धीमे शब्दों में कहा—

"सुना है महात्मा अपनी लड़कियों के बारे में भी बिलकुल शांतिप्रिय है, वह कभी किसीसे झगड़ा नहीं करता।"

"क्या इसके लिए भी सबूत की आवश्यकता है?" एक लड़का बोला। "सेठ किशोरलाल के लड़के प्रदुम्न को नहीं देखा, किस प्रकार खुल्लमखुल्ला कमलनी को अपने ऊपरवाले कमरे में बिठाये रखता है। महात्मा और किशोरलाल दोनों इस बात को जानते हैं।"

इसपर नरोत्तम ने चोट की—"अगर सेठ को अपने बेटे पर आपत्ति नहीं, तो फिर वह अपनी ऊषा के सिलसिले में आनन्द से क्यों बिगड़ता है?"

"लेकिन आनन्द कोई लखपती का लड़का तो नहीं है।" एक लड़के ने आँख मारते हुए कहा—"तुमने देखा नहीं कि जब रायबहादुर गंगा सिंह के लड़के आते हैं तो उनके लिए तमाम दर्वाजे किस तरह खुल जाते हैं कि जो रास्ता पसंद आये, उसी से दाखिल हो जायँ।"

इसपर फिर एक कहकहा लगा। परन्तु आनन्द अपने प्रेम का वर्णन तक सहन न कर सकता था। वह इस मामले में बहुत भावुक था, चुनांचे वह खामोशी से वहाँ से खिसककर लाला बनवारी लाल वाली टोली में जा बैठा।

वहाँ मजदूरों का एक मन-गढ़ंत नेता प्रीतम सिंह बिना कुछ सोचे-समझे वह बातें सुना रहा था जो उसने स्वयं नहीं सोची थीं; बल्कि पार्टी की एक और मेम्बर पुष्पा से सुनी थीं या किसी पेम्फलट में से पढ़कर जबानी याद कर रखी थीं।

"हमारे हाँ के 'प्रोल्तारी' लोग इस तरह सारी ताकत एक दूसरे के विरुद्ध नष्ट करके अपना कितना नुकसान कर रहे हैं। काश वह लोग यही शक्ति 'बुर्जवा' क्लास के विरुद्ध एक 'क्लास वार' के लिए इस्तेमाल करते, तो आज हिंदुस्तान-पाकिस्तान का झगड़ा ही न रहता, बल्कि सब लोग एक प्रोल्तारी स्टेट के साये में सुख का जीवन बिताते।"

और लाला बनवारीलाल इन किताबी शब्दों के अर्थ बिलकुल न समझते हुए हाँ में सिर हिलाये जा रहे थे, उन्हें केवल 'वार' शब्द का अर्थ समझ में आया, और वह सोच रहे थे कि यह लीडर पार्टी भी कितनी बुद्धिमान पार्टी है जो शायद उनकी तरह ही लड़ाई में मदद देकर ठेके हासिल करने में मदद दे सकती है। और लड़ाई के ठेकेदारों से अधिक खुशहाल और कौन हो सकता था।

मन-गढ़ंत लीडर की वाक् शक्ति जोरदार होती जा रही थी, लाला

बनवारीलाल का ध्यान उनकी ओर बढ़ता जा रहा था। और दोनों बहुत प्रसन्न थे।

* * *

सेठ किशोरलाल नौजवानों को एक प्रकार से दूध का निमंत्रण देकर स्वयं एक जरूरी काम से ऊपर जा बैठे थे और उनका नौकर चाँदी के गिलास में लोगों को पानी पिला रहा था।

गली के अंदरवाले भाग से 'ठक-ठक' की आवाजें आ रही थीं, यहाँ कैप्टन चमनलाल एक लुहार का साथ लिये लाठियों के सिरों पर लगाने के लिए बर्छियाँ तैयार करा रहा था। दो-चार विशेष नौजवानों के अतिरिक्त उस ओर जाने की आज्ञा किसी को न थी, क्योंकि गलीवालों से चंदा लेते समय कैप्टन ने इस बात का वचन ले लिया था कि वह उससे खर्च की तफसील नहीं पूछंगे और जब मुहल्ले के चौधरियों ने प्रतिदिन बिगड़ती हुई हालत को देखकर मुहल्ले की कमान किसी नवयुवक के हाथों में सौंपने का निर्णय किया था, तो सबने वचन दिया था कि उसकी हर आज्ञा का पूरा तरह पालन करेंगे। परन्तु फिर भी कैप्टन को केवल उस दिन पूरा-पूरा कन्ट्रोल हासिल होता, जिस दिन शहर की हालत नाजुक सुनी जाती।

बैठक के सामने खुले बरामदे में बैठा हुआ 'सीना गजट' श्रोतागण के एक बहुत बड़े मजमे को दिन-भर की विभिन्न घटनाओं का ब्योरा सुना रहा था :

"आज हमारा एक दोस्त बड़ी मुश्किल से जान बचाकर आया है। वह एक मुसलमानी इलाके में से गुजरता हुआ कुछ इस तरह डर गया कि पनाह लेने के विचार से अपने एक मुसलमान दोस्त के घर चला गया। वह दोनों बचपन के मित्र हैं, और अब जवानी में आकर तो यह सम्बन्ध और भी मजबूत हो गया था। उसे देखते ही वह मित्र जल्दी से अंदर

ले गया, और बड़े तकल्लुफ से अपनी बैठक में बिठाकर स्वयं बाहर निकल गया। थोड़ी देर बाद लौटा तो अपने मित्र से कहने लगा—"मुझे अफसोस है दोस्त। हालात इतने बिगड़ चुके हैं कि पुराने उसूलों और शिष्टाचार के कायदों को मजबूर होकर बदलना पड़ गया है।"

"क्या मतलब?" हिंदू ने स्पष्टता के लिए पूछा।

उसने उत्तर दिया—"मुख्तसर बात यह है, कि हमारे गाँव में सिक्खों और हिन्दुओं ने मेरे दो भाइयों को कत्ल कर दिया है, और जब से यह सूचना आयी है मैंने प्रतिज्ञा कर रखी है, कि मुझे सबसे पहले जो चार हिन्दू मिलेंगे, उन्हें इस छुरी से कत्ल कर दूँगा," और यह कहकर उसने कुर्ते के अन्दर छुपायी हुई एक तेज छुरी निकालकर हाथ में ले ली, जिसे हाथ में घुमाते हुए वह कहता गया कि "तुम जानते हो कि मैं बाहर लड़ाई-झगड़े में जाने की हिम्मत नहीं रखता। लेकिन अल्लाह कारसाज़ है। उसने खुद ही तुम्हें मेरे घर भेज दिया है। चुनांचे बिस्मिल्ला तुम्हीं से होगी।"

"मगर तुम तो मेरे बचपन के दोस्त हो।"

"मगर वह दोनों मेरे माँ-जाये भाई थे।"

"लेकिन उन्हें मैंने तो नहीं मारा।"

"मारनेवाले तुम्हारे मजहबी भाई थे। जिस तरह अपने मकतूल भाइयों के खून का बदला लेना मुझ पर फर्ज है उसी तरह अपने कातिल भाइयों के कुकर्मों का फल तुम्हें भोगना पड़ेगा।" यह कहकर वह आगे बढ़ा तो हिन्दू ने कहा—

"तुम्हारी आँखों का पानी इस तरह मर गया है कि इतनी पुरानी दोस्ती का कुछ भी लिहाज तुम्हें नहीं रहा?"

"हाँ—उसके लिए मैं अब भी यह कह सकता हूँ, कि इस आखिरी वक्त में तुम जो खाना-पीना चाहो, मैं हाजिर कर सकता हूँ।"

"अच्छा", हिन्दू ने कुछ सकोच करके कहा, "तो वह मटर और

आलुओंवाला पुलाव जो बचपन से तुम्हारी माँ मुझे अपने हाथ से बनाकर खिलाती आयी हैं, फिर एक बार खिलाओ। ताकि अंतिम समय में मित्रता की एक पुरानी रस्म तो पूरी हो जाये।"

"दिलो जान से। तुमसे पुलाव बढ़कर है क्या?" कई बार के दुहराये हुए वाक्य उसकी जुबान पर बेसाख्ता आ गये। और वह उसे बाहर से कुंडी लगाकर चला गया।

कोई एक घण्टे बाद वह लौटकर आया। एक हाथ में पुलाव की रकाबी लिये ज्योंही वह दाखिल हुआ, हिन्दू ने जो पहले से दर्वाजे के पीछे छुपा खड़ा था, एक भारी कुर्सी जोर से उसके सिर पर दे मारी, उसके दोस्त का चकराकर गिरना था कि उसने वही छुरी उसके हाथ से खींचकर उसके सीने में उतार दी। और स्वयं उसे बाहर से कुंडी लगाकर शाम के धुँधलके में चुपचाप निकल आया।

सब लोग दाँतों में उँगलियाँ दिये सर्दारीलाल की बातें सुन रहे थे, कि अचानक एक ओर से आवाज आयी "कैप्टन आ गया।"

चमनलाल दो और लड़कों के साथ लाठियों का एक बहुत बड़ा गट्ठा उठाये बैठक में दाखिल हुआ और सबका ध्यान उसकी ओर हो गया। कैप्टन ने लाठियाँ एक तरफ रखवाकर हाजिरी का रजिस्टर निकाला।

* * *

सभा के दुबारा जुड़ते ही चन्दे का सवाल उठाया गया, आधे से ज्यादा आदमियों ने अभी चन्दा नहीं दिया था। चुनांचे उन लोगों के नामों की फेहरिस्त पढ़ी जा रही थी कि कहीं पास ही से एक जोर के धमाके की आवाज आयी। सभा में एक खलबली-सी पैदा हो गयी। कैप्टन ने उसी समय दो लड़कों को साथ के मुहल्ले में पता करने के लिए भेजा कि देखें बम कहाँ फटा है।

इतनी देर में तमाम लोग कमरे से बाहर निकल आये। चन्द नौजवानों ने बर्छी लगी लाठियों को हाथों में ले-लेकर तोलना शुरू कर दिया।

बाहर एक परेशानी का आलम था, और कोई नहीं जानता था कि क्या होनेवाला है। लोग इसी घबराहट में बाहर थड़ों पर बैठ गये और जो विषय सामने आया, उसीपर कुछ-न-कुछ कहना शुरू कर दिया।

लाला बनवारीलाल एक थड़े पर बैठकर उन लोगों के विरुद्ध बहुत कुछ कहने लग गये थे जिन्होंने अभी चन्दा नहीं दिया था। जब वह बहुत ज्यादती पर उतर आये तो उनके सामने बैठे हुए क्लर्क ने कहा कि "हमने इन्कार तो नहीं किया है, केवल यही कहा है कि इन फसादों के कारण एक महीने से दफ्तर नहीं जा सका, और न तन्ख्वाह ही मिली है। दो दिन के बाद पहली तारीख है, तन्ख्वाह मिलते ही दे दूँगा। आखिर मैं आपकी तरह कोई सेठ नहीं कि झट तिजोरी से निकालकर दे दूँ।"

"तो फिर आपके आटे-दाल के लिए भी क्यों न चन्दा कर लें?" बनवारीलाल ने व्यंग्य-पूर्ण भाव से कहा।

"देखिए साहब, किसीकी इज्जत पर हमला करने का हक आपको नहीं है।" क्लर्क तुनक गया।

"यह तो वैसी ही बात है।" बनवारीलाल ने आस-पास खड़े हुए लोगों को सम्बोधित करते हुए कहना शुरू किया। "आखिर हम दान तो नहीं माँग रहे हैं। यह तो जाति का काम है। अगर आपके पास अपने खाने के लिए और बच्चों को दूध लाने के लिए पैसे हैं तो क्या जाति के लिए ही कुछ नहीं? आप बी० ए० पास हैं। क्या आपको भी यह बातें समझानी पड़ेंगी।"

इसपर एक नवयुवक से न रहा गया तो उसने कह ही दिया, "आप बातें तो इतनी बना रहे हैं, मगर चन्दा न देनेवालों की फिहरिस्त में सबसे पहला नाम आप ही का है।"

इसपर बनवारीलाल बहुत लाल-पीला हुआ और कैप्टन की ओर लाल-लाल आँखों से देखता हुआ कहने लगा, "किस गऊ-हत्यारे ने चन्दे से इन्कार किया है।"

"इन्कार तो आपने नहीं किया, मगर आप बीस रुपये चन्दा देने से इन्कार करते हैं। आपके विचार में यह भेद-भाव अन्याय है। सबसे एक जितना लेना चाहि" ! और फिर चन्दा देते समय आप बिल्कुल गरीब बन जाते हैं।" कैप्टन ने मौके से फायदा उठाते हुए सारा भाँडा ही फोड़ दिया।

लाला बनवारीलाल ने आव देखा न ताव, झट से अपनी चाबियाँ निकालकर जमीन पर पटक दीं।

"लीजिए, जितना आपका जी चाहे, तिजोरी से निकाल लीजिए। कौन हरामी है जो इन्कार करे।"

मुआमला अधिक खिंचता देखकर सेठ किशोरलाल ने उन्हें अपनी बगल में ले लिया और एक तरफ को ले चले।

"शाहजी आप ही के तो भरोसे पर मुहल्ले वाले बैठे हुए हैं, आप नहीं देंगे तो और कौन देगा, खैर छोड़िये इस बात को, सवेरे देखा जाएगा।"

इतने में उन दोनों नौजवानों ने आकर कैप्टन को सूचना दी कि "बम साथ वाले मुहल्ले में फटा है। दरअसल वही मुसल्मान मजिस्ट्रेट एक पुलिस गारद के साथ गश्त कर रहा था कि एक नौजवान ने अपनी ऊपर की छत से उस पर बम फेंका ; परंतु दुर्भाग्यवश वह बम उसके पैरों तले से लुढ़ककर पास की नाली में जा गिरा, और फटा नहीं। उधर बम फेंकने के बाद वह नवयुवक घबराहट की हालत में जो भागने लगा है तो उसकी ठोकर लग जाने से 'अमोनिया लिकर' की एक बोतल फट गयी ; और उसी धमाके से उसके हाथ में पड़ा हुआ 'सिग्रेट का डब्बा, भी फट गया।"

'वह स्वय तो घायल नहीं हुआ ?' कैप्टन ने घबराकर पूछा।

'हाँ, बहुत घायल हुआ है।'

'और पुलिस ?' लाला बनवारीलाल ने फौरन सवाल किया।

'पुलिस कूचे के अंदर आ गयी है, लेकिन कूचाबंदी का फाटक खोलने से पहले ही उस मकान की बिलकुल सफ़ाई कर दी गयी है।' उस नौजवान ने तसल्ली देते हुए बताया।

'तो क्या सारा सामान नष्ट कर दिया गया?' कैप्टन ने फिर पूछा।

'नहीं, एक टब में डाल कर फिलहाल कुएँ में लटका दिया गया है।'

लाला बनवारीलाल ने सेठ को सम्बोधित करके कहा—"यह छोकरे हिंदुओं को तबाह करके ही दम लेंगे, एक दिन देख लेना सब के हाथों में हथकड़ियाँ होंगी।"

सब लोग अलग-अलग टोलियों में बैठ कर इस घटना पर आलोचना करने लगे।

कुछ नौजवानों ने एक अलग झुरमुट बना लिया था, और वह सर-गोशियों में बातें कर रहे थे।

"......मगर उसकी किस्मत अच्छी दिखाई देती है। यह तीसरा हमला है। लेकिन अबके भी बाल बाल बच गया है।"

दूसरे ने किंचित् खेद प्रकट करते हुए कहा—"कितने अफसोस की बात है कि हम उस व्यक्ति का कुछ नहीं कर सकते, जिसने चार दिन पहले चैलेञ्ज देकर हिंदुओं की सब से बड़ी मार्केट तक जलवा दी।"

"सुना है कि उसे इस इलाके से बदल दिया गया है।" एक ने कहा।

"यह झूठ है। तुम जानते नहीं, यह सब गवर्नर की शरारत है, नहीं तो इस मामूली से मजिस्ट्रेट की क्या ताकत है। इधर हिन्दू जल रहे थे और उधर उसने कर्फ्यू भंग करने के जुर्म में आग बुझानेवालों पर गोलियाँ बरसाना शुरू कर दिया। क्या कोई और व्यक्ति यह कर सकता था! उसे उसी समय पदच्युत न कर दिया जाता! यह सब अंग्रेजों की चाल है। वह तुम्हें आज़ादी के बदले यही कुछ देंगे।"

चौथे ने बात का रुख फिर असली विषय की तरफ बदलते हुए

कहा—"कुछ भी हो। यह मैं तुम्हें बता दूँ, कि वह बचेगा नहीं। इस समय भी कुछ नौजवान ऐसे हैं जो उसके पीछे बराबर लगे हुए हैं। उनका ख्याल है कि जब यह अदालत की कुर्सी पर बैठा हो, उस समय इसे शूट किया जाये।"

"जी हाँ। मैं तुम लोगों की हिम्मत जानता हूँ।" दूसरे ने ताना कसा—"लो मेरी बात भी याद रखो, वह तुम्हारे सामने पाकिस्तान में चीफ जस्टिस बनेगा, वह लोग काम करनेवालों की क़दर करना जानते हैं। वहाँ एक हिंदू को छुरा मारने वाले को पचास रुपये मिलते हैं, और आग लगाने वाले को दो सौ। तुम्हारे यहाँ क्या है? स्वयं तुम्हारे मुहल्ले में कई नौजवान ऐसे हैं, जो रोजाना कमाते थे और रोज़ाना खाते थे। आज एक महीने से जो वह कोई काम नहीं कर रहे, और मुहल्ले की पहरेदारियाँ कर रहे हैं तो उनका ध्यान किसे है! उल्टा तुम्हारे यहाँ के साहूकार कहते हैं कि सबसे चंदा बराबर लिया जाए। वह बेचारे क्यों न शहर छोड़ कर चले जाएं। उनका यहाँ क्या रखा है—न मकान न जायदाद। जहाँ जाकर काम करेंगे, कमा खायंगे। और फिर यह सेठ लोग जो चले जानेवालों की बातें सुन कर उन्हें ताने देते हैं, स्वयं इस इतज़ार में बैठे हैं कि कब वह अपनी जायदाद सुरक्षित तौर से निकाल सकें और फिर स्वयं चले जायँ। अगर तुम यह समझते हो कि यह किशोरलाल क़ौम की खातिर यहाँ बैठा हुआ है तो यह तुम्हारी भूल है। वह तो उस दिन आनंद ने मीटिंग में कह दिया था कि अगर किसी बड़े आदमी के घर से एक व्यक्ति भी चला गया, तो हम सब चले जायँगे, नहीं तो उन्होंने कब के अपने बाल-बच्चे शिमले भेज दिये होते। सुना है वहाँ एक कोठी भी खरीद ली है उन्होंने।"

'यही तो हिंदुओं में कमज़ोरी है। रुपये के लालच ने सब को स्वार्थी बना दिया है।"

"वह हमारा भी तो एक जज है न हाईकोर्ट में, स्वयं उसके अपने

खानदान के अस्सी व्यक्ति मुसलमानों ने क़त्ल कर डाले हैं, लेकिन उसने आज तक एक को भी फांसी पर नहीं लटकाया।"

"अगर हिंदुओं में यह दया धर्म वाली कमज़ोरी न होती तो उनका राज ही क्यों छिनता?"

"दया धर्म नहीं, हिंदू डरता है। उसे रुपये का लालच है। उसे नौकरियों का लालच है।"

एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति भी उनमें शामिल हो गया था, उसने कहा—"यह कमज़ोरी केवल हिंदू में नहीं, मुसलमान में भी है, खाता-पीता मुसलमान भी नहीं लड़ता। यह तो उनका गुंडा और जाहिल हिस्सा है जो फसाद कर रहा है, और चूँकि उनमें ऐसे लोगों की संख्या अधिक है इसलिये........"

अचानक सब का ध्यान उस लड़के ने अपनी ओर खींच लिया, जो भागता हुआ यह सूचना देने आया था कि "पुलिस साथ वाले मुहल्ले की तलाशी लेकर इधर आ रही है।"

पलक झपकते ही सारी गली खाली हो गयी। सब लोग आस-पास के मकानों में चले गये थे। चारों ओर एक सन्नाटा छा गया था, और सारे लैम्प बुझाकर मुकम्मल अँधेरा कर दिया गया था।

कुछ देर बाद गली के बाहर से गुज़रते हुए दस्ते के क़दमों की आवाज आयी। वह लोग सीधे निकल गये, और थोड़ी देर में क़दमों की आवाज़ फिर खामोशी में समा गयी।

एक-एक करके दर्वाजे खुलने शुरू हुए। फिर अपने मस्तकों पर प्रश्न के चिह्न लिये कुछ चेहरे प्रगट हुए, और फिर धीरे-धीरे इक्का-दुक्का करके सब लोग बाहर निकल आये।

* * *

बहुत देर हो चुकी थी, चुनांचे हाज़री लगाकर लोगों की ड्यूटियां नियत करने का फैसला हुआ।

हाज़री के वक्त पता चला कि साठ आदमियों में से पचीस गायब हो गये थे। इस पर फिर एक हंगामा खड़ा हो गया। उनके लिए तरह-तरह के दंडों का प्रस्ताव होने लगा। ताराचंद कहने लगा—"आज चार महीनों से सौगंध खाने को भी हमने एक रात भी अपने घर में सोकर नहीं देखा और बनवारीलाल जैसे लोग हैं कि जरा मौका मिला और जा घुसे पत्नी की गोद में।"

"आखिर पत्नी के पास भी जाना हुआ न।" एक और ने मज़ाक किया।

"लेकिन हमारी क्या पत्नी नहीं है ?" किसीने कहा।

"कोई आनंद से भी पूछे, जो आज चार महीनों से एक रात के लिए भी नहीं सोया।" प्रकाश ने रहस्यवादी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा।

"इसके उपकार का बदला कौन चुका सकता है ? केवल वही तो एक है जो अकेला रात-रात भर जागकर हर मोर्चे पर फिरता रहता है।" आनंद के एक हमदर्द ने कहा। और सब ने खामोशी से उसका समर्थन किया। परंतु प्रकाश ने दबी आवाज में केवल अपने साथियों के सुनाने के लिए कहा—

"और वह भी फसादियों के उपकार का बदला नहीं चुका सकता, जिनकी कृपा से वह रात-रात भर उनके कोठे पर रहता है, जिनके यहाँ कभी दिन में भी वह दाखिल न हो सकता।"

नरोत्तम ने बात जोड़ते हुए कहा—"इस फसाद ने कइयों को अपनों से बिछुड़ने पर मजबूर कर दिया है, और कई एक को मेल-मुलाकात के वह मौके बख्शे हैं जो उन्हें शायद जीवन भर नसीब न होते। तुम ने देखा नहीं कि हमारे कैप्टन ने भी पहरे के लिए खास तौर पर लाजो का घर चुना है। और वहाँ ड्यूटी देने वालों में से जब कोई न आये तो

फौरन अपने आप को पेश कर देता है, बल्कि प्रायः हफ्ते में चार ड्यूटियाँ वही देता है।"

मोती ने जवाब दिया—"आखिर कुछ सेवा तो करते हैं वह कौम की। तुम्हारी तरह इस बहाने जुआ तो नहीं खेलते।"

उनकी धीमी आवाज के बावजूद आनंद उनकी सारी बातें सुन रहा था। इतने में कैप्टन ने उसका नाम पुकारा। वह सम्हल कर बैठ गया। उसकी ड्यूटी आज मुहल्ले के कोने वाले मकान पर लगाई गयी थी, ताकि बाजार के उस पार मुसलमानों की हर हरकत पर नज़र रख सके।

आनंद को इस बात से एक तरह की खुशी हुई कि उसकी ड्यूटी सेठ के मकान की जगह उसके सामने वाले मकान पर लगायी गयी है; जहाँ वह उन नौजवानों की नज़रों से बच भी सकेगा और साथ ही साथ सामने के कोठे पर सोयी हुई ऊषा को भी देखता रह सकेगा।

* * *

ड्यूटियाँ नियत करने के बाद बहुत से लोग उन व्यक्तियों को घरों से निकालने के लिए बाहर निकले, जो मौका मिलते ही भाग गये थे। बाहर गली में आते ही उन्होंने देखा कि सारी गली किसी ज़ोरदार रोशनी के प्रतिबिंब से प्रकाशमान हो रही है। कहीं पास ही ज़बर्दस्त आग लगी हुई थी, जिसकी लपटों की रोशनी वहाँ तक पहुँच रही थी। परंतु ऐसी घटनाएँ अब उन में कोई रोमाञ्च पैदा नहीं करती थीं। अब यह उनके लिए बिल्कुल स्वाभाविक बातें हो चुकी थीं।

एक महाशय को आवाज़ें दी गयीं तो उनकी पत्नी ने ऊपर से जवाब दिया कि "वह तो ऊपर नहीं हैं।"

इस पर एक मनचला बगलवाले मकान की छत से उनके मकान में घुस गया और उन्हें रज़ाई समेत लिपटे-लिपटाये उठा लाया।

"लो साहब, आप ऊपर नहीं थे, बल्कि पत्नी की चारपाई के नीचे थे।"

इस पर एक क़हक़हा लगा। परंतु लाला बनवारी लाल, स्वयं जिसे

अभी अभी बीसियों आवाज़ें देने के बाद कोठे से उतारा गया था, बहुत गम्भीर हो रहा था। वह बड़े ताव में आकर कहने लगा—

"आखिर यह क्या मज़ाक है! ऐसे आदमियों को सूली पर चढ़ा देना चाहिए। जो समय पर अपनी क़ौम के काम न आ सके, वह अगर प्यासा भी मर रहा हो तो क़ौम उस पर दया क्यों करे?"

दूसरा परिच्छेद

......रात की अँधियारी में अपनी दृष्टि गाड़े ;अपनी ड्यूटी पर बैठा हुआ आनंद बार-बार सोच रहा था कि "कभी-कभी क़ौमें भी मनुष्य पर कितने कटु कर्तव्य लाद देती हैं और उसे वह सब कुछ करना पड़ता है जो उसे न करना चाहिए।"

सामने दृष्टि-सीमा तक लाहौर एक मृत शरीर की भाँति खामोश पड़ा हुआ था। दूज का चाँद एक रोगी स्त्री की तरह कमजोर और दुबला दिखाई दे रहा था और उसके अंधकारपूर्ण प्रकाश में सितारों की चमक बढ़ गयी थी।

अभी अभी कहीं दूर से एक ज़ोर के धमाके की आवाज़ आयी थी ; और फिर 'अल्लाहो अकबर' और 'हर हर महादेव' के नारे आकाश के अंधकार को छू कर लौट चुके थे ; और फिर से शहर पर एक खामोशी छा चुकी थी—एक मुकम्मल सन्नाटा—जिसने भय और त्रास के पर्दे-तले ज़िंदगी की हर आवाज़ को दबा रखा था।

थोड़े-थोड़े फासले पर कुछ मकानों के ऊपर सब्ज़ बत्तियाँ जल रही थीं ; जिन्हें भिन्न-भिन्न इलाकों के बीच सिगनल के तौर पर इस्तेमाल किया जाता था। किसी इलाक़े में खतरा पैदा होते ही सब्ज़ बत्ती लाल हो जाती और फिर यह संकेत शहर के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँच जाता। रोगी की नाड़ी की भाँति गली-कूचों में एकदम तेजी से एक हरकत पैदा होती, लाठियाँ और बर्छे बाहर निकल आते, नौजवान गुप्त स्थानों में से सामान निकालकर तय्यार हो जाते, सिरों

पर फौलादी हैल्मट चढ़ जाते, बच्चे चौंक-चौंक कर माताओं की छातियों से चिमट जाते और स्त्रियाँ अपने पहलू खाली पाकर अँधेरे में निगाहें गाड़े कुछ सोचने लग जातीं। कहीं-कहीं कुछ नारे भी गूँजते—'अल्लाहो अकबर'—'हर हर महादेव'।

उन दिनों अल्लाह और महादेव के नाम सुनकर लोग इस तरह काँप उठते, जैसे वह भगवान नहीं कोई जिन्न-भूत हों। फिर नारे बंद हो जाते और वायु में केवल एक कम्पन-सा बाकी रह जाता।........यहाँ तक कि फिर से धीरे-धीरे रोगी की नाड़ी बैठने लगती और अंत में उसपर फिर एक मुर्दनी छा जाती।

इस भयानक सन्नाटे की अवस्था में उसे वह सब्ज़ बत्तियाँ लाहौर की आँखें महसूस होने लगीं, जो बूचड़खाने में बँधी हुई भेड़ों की तरह सहमी-सहमी-सी दृष्टि से कसाई का रास्ता निहार रही हों और जब कहीं कोई बत्ती लाल हो जाती, तो यूँ महसूस होता जैसे कसाई की छुरी देखते ही किसी आँख से खून का एक आँसू टपक पड़ा हो।

वह इस नीरवता के सीने में छुपे हुए क्रंदन और आहों को टटोलने की कोशिश में अपने नियत स्थान पर बैठा रहा। बाज़ार के उस पार मुसलमानों के मुहल्ले के सिरे पर बनी हुई मस्जिद में कोई रोशनी दिखायी न दे रही थी और उसके साये में बसा हुआ मुसलमानों का मुहल्ला भी सहमा हुआ दिखायी देता था। उससे परे, दृष्टि-सीमा तक, तमाम मकान और बड़ी-बड़ी इमारतें दुबकी हुई पड़ी थीं। उसने ज़रा दाहिनी ओर घूमकर देखा। उत्तर पश्चिमी कोने पर, जहाँ शहर का स्थल कुछ ऊँचा हो गया था, कलकत्ते वालों के मंदिर का ऊँचा कलश और उसकी बगल में बादशाही मस्जिद के मीनार लज्जा से सिर झुकाये खड़े दिखायी दे रहे थे। इससे आगे वह तिल-भर भी न घूम सका। वह उस ओर देखने से भी डरता था। वह जानता था कि डब्बी बाज़ार के एक इलाके में जो आग आज पाँच दिन से लगी हुई थी, वह अभी तक वहाँ भड़क रही

होगी। और इस सभ्यता-सूचक शहर के सीने में लगी हुई उस आग को, जिसे बुझानेवाला कोई न था, देखने की हिम्मत उसमें न थी।

वहाँ हिंदुओं का एक ही मुहल्ला था, और वह अपने मुसलमान पड़ोसियों से मुहँ मोड़कर अपनी क़ौम के लोगों के यहाँ आश्रय लेने के लिए सारे मकान खाली कर आये थे। यहाँतक कि आज वहाँ आग बुझानेवाला भी कोई न था। उसे फिर अपनी क़ौम का ख्याल आया। और वह सोचने लगा कि आखिर उसकी क़ौम कौन-सी थी। क्या इस मुहल्ले में बसनेवाले यह दुकानदार और साहूकार उसकी क़ौम में से थे, जिन में से एक भी कवि न था, एक भी सच्चा काव्य-रसिक या कवि-हृदय न था; जिनकी भीड़ में घिरा होने के बावजूद वह अकेला था। क्या यह उसकी क़ौम थी, जिसके व्यक्ति आग बुझाने की कोशिश में शहीद हो जानेवाले अजीत को डरपोक और कायर समझते थे, और जो स्वयं इंसान के लहू की प्यासी बर्छियाँ उठाये फिर रहे थे। क्या यह लोग उसकी क़ौम थे, जो उस समय तक नौजवानों को दूध पिलाने के वादे करते थे जबतक उनकी जायदाद को खतरा नज़र आता था, जो हिंदू पुलिस की पिकेट बिठाने के लिए हज़ारों रुपये खर्च कर सकते हैं, लेकिन जिनकी आँखों के सामने शहीद अजीत की पत्नी एक नौकरानी का जीवन बिताने पर मजबूर थी। क्या यही थे उसकी क़ौम के लोग, जो उन्हींके लिए मर जानेवाले की पत्नी के रूप और यौवन की घात लगाये बैठे थे। और उसने विचार किया कि अगर यही मेरी क़ौम है, तो उनमें और उस मुसलमान में क्या अंतर है जिसने उस व्यक्ति को गोली मार दी, जो मुसलमानों ही के मकान को लगी हुई आग बुझा रहा था। "नहीं—यह मेरी क़ौम नहींहो सकती।" वह करीब-क़रीब बड़बड़ाने लग गया था—'जो लोग कवि और रूपा को एक दूसरे के लिए खामोशी से तड़पने की इजाज़त भी नहीं दे सकते, जिनके युवक केवल उस अवस्था में कवि को प्रशंसा की डाली भेंट करते, जब वह रूपा को खराब करने में सफल होकर उसकी

'लोगों को यह फ़िकर है कि हिन्दू मर रहे हैं, मुसलमान मर रहा है, और मुझे यह ग़म है कि हिन्दुस्तान मर रहा है, मानवता मर रही है और वह सभ्य भावनाएँ मर रही हैं जो सहस्रों वर्षों के विकास के बाद मनुष्य ने पैदा की थीं।

मुझे हिन्दुओं और मुसलमानों के मरने की जरा फ़िकर नहीं है, वह तो प्रतिदिन सैकड़ों नहीं, हजारों की संख्या में पैदा होते और मरते हैं, बल्कि मरने ही के लिए पैदा होते हैं। चुनांचे हिन्दुओं को मारने के लिए मुसलमानों को या मुसलमानों को मारने के लिए हिन्दुओं को किसी प्रकार की तकलीफ करने की जरूरत नहीं। अलबत्ता जिस बात पर रोना आता है, वह हिंदुओं और मुसलमानों के निजी जीवन में ऊँची-ऊँची भावनाओं की बर्बादी है, और वे हैं मनुष्यता, संस्कृति और सदाचार......'

मेरी कौम में इन विचारों के लोग शामिल हैं, मेरी कौम में कृशन-चंदर शामिल हैं, जिसने बंगाल के दर्द से दुखी होकर एक चीख़ बुलंद की थी और उस चीख का नाम था 'अन्नदाता'।

सोचते-सोचते उसे अपने मुहल्ले के उन लोगों का ख्याल भी आया, जिन्होंने उसे अपनी कौम में शामिल करके एक मोर्चे पर बिठा दिया था। यह लोग जो बर्छे, कुल्हाड़ियाँ और बम लिये अपनी कौम की सेवा के नशे में चूर दिखायी देते थे, उनके बीच उसे अपना अकेलापन और बेचारगी बुरी तरह महसूस होने लगी। उसे ऐसा आभास होने लगा, जैसे वह मध्य-अफ्रीका के किसी हब्शी कबीले में घिर गया है, और वे एक वहशी नाच नाच रहे हैं, जिसके बाद उसका वध किया जायगा—मानव का वध किया जायगा, और फिर उसका जी चाहने लगा कि किसी प्रकार वह यहाँ से भाग जाये, यह फौलादी हेल्मेट, जो दुश्मन की गोली से बचने के लिए उसके सिर पर पहनाया गया है, उतार कर फेंक दे, पास रखी हुई तेज़ाब की बोतलों को तोड़ डाले और इन्सान को मुक्त कर दे।

परन्तु.......। इसके साथ ही उसे उन मासूम बच्चों और स्त्रियों का ख्याल आया, जिनकी रक्षा का भार इस समय केवल उसकी चौकसी पर था। उसे ऊषा का ख्याल आया और उसका दिमाग लड़खड़ाने लगा, वह कोई निश्चय न कर सका।

इसी हालत में उसने यह भी सोचा कि यदि उसे यही सब कुछ करना था, तो फिर वह पिछले युद्ध में भर्ती क्यों न हो गया था, जब कि उसे भर्ती के एजेण्टों ने कई बार कमीशन दिलाने को कहा था, उस समय क्यों वह मानवता से गद्दारी करने के विचार से कतरा गया था, उस समय क्यों उसने उन नेताओं का कहना मान लिया था। और वह नेता जो उस समय अंग्रेज की जंगी संगीनों के सामने सीना ताने दिखायी देते थे, आज अपने भाइयों की छुरियों से क्यों दूर भाग रहे थे? आज इनमें से एक भी ऐसा क्यों न निकला, जो आगे आकर यह कहता कि अपने किसी पंजाबी भाई के सीने में भोंकने के पहले अपनी छुरियों को मेरे सीने में उतार दो.......शायद उन्हें इस बात का अवकाश ही नहीं, क्योंकि इस समय तो उन्हें बटवारे के बाद आधे पंजाब के मंत्रिपदों पर कब्ज़ा करने के लिए बहुत भाग-दौड़ करनी पड़ रही है। और आनंद को बहुत अफसोस होने लगा कि उस समय उसने इन लालचियों की बातों पर क्यों ध्यान दिया, जो केवल मंत्रिमण्डल की हड्डी के लिए अपना खून बहा सकते हैं, और जो केवल राजनीतिक महत्ता प्राप्त करने या अपने मुनाफे के 'स्वदेशी स्टोर्स' चलाने के लिए महात्मा गांधी और उनकी अहिंसा के गुण गाते फिरते हैं।

आज उन अहिंसावादियों के होते हुए भी उनका अपना पंजाब युद्ध-क्षेत्र से क्या कम था? और फिर युद्ध-क्षेत्र में भी तो उसे यही कुछ करना था, जो कुछ करने के लिए वह आज तय्यार बैठा हुआ है। बल्कि इससे उत्तम ढंग से और बेहतर हथियारों के साथ। उस सूरत में उसे आज की तरह आर्थिक परेशानियों का सामना भी न करना पड़ता और

फिर वहाँ वह जी भरकर गोलियाँ भी चलाता और उसके बदले में फसादी के धिक्कार के काबिल नाम के स्थान पर उसे हीरो माना जाता, उसके सीने पर सम्मान के तमगे चमकते, जिन्हें देखकर वाइसराय को भी सलाम करना पड़ता !... ..

रात बीतती रही। और वह सामने की मस्जिद में छाये हुए अंधकार में आँखे गाड़े प्रकाश ढूँढ़ने का असफल प्रयत्न करता रहा......।

तीसरा परिच्छेद

सुबह होते-होते लोग अपने-अपने मकानों की छतों पर चढ़कर दिन के सबसे पहले काम में लग गये थे। निद्रा भंग होते ही वह यह गिनने के लिए ऊपर आ जाते थे कि आज शहर में कितने स्थानों पर आग लगी है। हर कोई दूसरे को शहर के भिन्न-भिन्न भागों की ओर इशारे करके कोई-न-कोई नयी आग दिखा रहा था। कोई-कोई आग पुरानी थी, जो उन्होंने कल भी देखी थी। कोई ऐसी भी थी, जिसे वे कई दिनों से देख रहे थे। और बहुधा वह थीं, जो आज रात ही में भड़की थीं। इनके अतिरिक्त कर्फ्यू खुलते ही कुछ स्थानों से एक बारीक-सी रस्सी की तरह चक्कर खाता हुआ धुआँ आकाश की ओर उठना शुरू हुआ। देखते-देखते धुआँ नीले खाकस्तरी रंग में बदल गया। उसके बाद गहरे भूरे रंग का धुआँ किसी कथा-लोक के राक्षस की फुंकारों की तरह हवा में उछला; और थोड़ी ही देर में काले बादलों की तरह उमड़ते हुए धुएँ के साथ-ही-साथ आग की प्रचंड लपटें भी आकाश की ओर अपने नुकीले हाथ उठा-उठाकर जैसे फरियाद करने लगीं।

अभी सूरज निकला ही था कि लोग नीचे उतर आये और बर्तन और टोकरियाँ लेकर बाजार को चल दिये, ताकि यदि वहाँ कोई सब्जी या दूध वाला आया हो, तो ले आयें। हर कोई दूसरे से आगे जाने की कोशिश में था, ताकि कम-से-कम उसे तो मिल जाये। कुछ स्त्रियाँ अपने भागते हुए पतियों को पीछे से आवाजें दे रही थीं—

"अगर सब्जी न मिले, तो किसीसे कुछ दाल-वाल ही माँग लाइएगा। घर में अब पकाने को कुछ नहीं रहा।"

कहीं से एक बच्चे की आवाज़ भी आयी—"मेरे लिए आज तो लीली-पोपो ज़रूर लाना।"

और फिर, जैसे इतना कह देने-मात्र से कई दिनों के बाद उसे लीली-पोपो मिल गयी हो, वह तालियाँ बजा-बजाकर किसी सामने खड़े हुए बच्चे को गा-गाकर सुनाने लगा—

आज मेरे पापा लीलीपोपो लायेंगे।
आहा जी लीलीपोपो लायेंगे॥

आनंद कहीं नहीं गया। वह इस प्रतीक्षा में छत पर ही खड़ा रहा कि अभी ऊषा जागेगी और फिर एक मौन अभिनंदन इधर-से-उधर जायगा और उधर से एक सुंदर-सी मुसकान को साथ लिये लौटेगा।

लेकिन इससे पहले कि उसकी प्रभात जगमगा उठती, नीचे गली में से मार-पीट और गाली-गलौज की आवाज़ें आने लगीं। वह तुरंत नीचे को भागा।

गली में पहुँचा तो देखा कि मुहल्ले के नौजवानों और बुजुर्गों ने उस क्लर्क को घेर रखा है, जो उस दिन चंदा देने के लिए और मुहलत माँग रहा था। बरतनों की एक बोरी गिरने से फट गयी थी; और कुछ बर्तन लुढ़ककर नाली में गिर गये थे। एक कनस्तर जमीन पर खुला हुआ पड़ा था, जिसमें पड़ा हुआ दो चार सेर आटा बाहर को झाँक रहा था। दो तीन बिस्तर लोगों के पैरों-तले रौंदे जा रहे थे। क्लर्क की कमीज़ फट गयी थी, और उसके दाँतों से खून निकल आया था। उसकी पत्नी एक छोटी-सी गठरी बगल में दबाये एक ओर सहमी-सी खड़ी थी और उसे एक अधेड़ उम्र का रँडुवा थोड़े-थोड़े समय के बाद घूरे जा रहा था।

एक नवयुवक, जिसे दो आदमियों ने पकड़ रखा था, अपने बिखरे हुए लम्बे बालों को ठीक करता ऊँची आवाज़ में कह रहा था:—

"हम मर जायँगे, पर एक भी आदमी को यहाँ से डरकर भागने नहीं देंगे। हम हिंदुओं में यह कमज़ोरी पैदा नहीं होने देंगे।"

क्लर्क को सब देख रहे थे, परंतु उसे सँभाला किसीने नहीं था। उसने अपने दाँतों से लहू पोंछते हुए कहा कि "वह सेठ बनवारी लाल, जो रात उस तिजोरी की चाबियाँ फेंक रहा था, अगर चंदे की एक पायी तक दिये बिना आज तड़के ही अपना सारा सामान लेकर जा सकता है, तो मैं भी अवश्य जाऊँगा। आप मुझे ग़रीब समझकर जबर्दस्ती नहीं कर सकते।"

"यह बात नहीं।" सेठ किशोर लाल ने उसे ठंढा करने की कोशिश करते हुए कहा—"अगर बनवारी लाल हमारे जागने से पहले चले गये हैं, तो उसका यह मतलब नहीं कि हम सब भाग जायें। इस तरह तो हिंदू तबाह हो जायँगे। आपको पता है कि जहाँ-जहाँ से लोग मकान खाली कर आये हैं, वहीं मुहल्लों-के-मुहल्ले जला दिये गये हैं। अगर हम भी इसी तरह करेंगे, तो हमारा मुहल्ला भी नहीं बच सकता।"

"नहीं बच सकता, तो न बचे। मेरा इसमें क्या है। मेरा यहाँ कोई मकान नहीं। इस समय आमदनी का भी कोई प्रबन्ध नहीं। कहीं और चला जाऊँगा। काम करूँगा तो कम-से-कम भूखों मरने से तो बच सकूँगा।" क्लर्क ने उत्तर दिया।

"लेकिन आपको क़ौम का भी कुछ ख्याल नहीं!" सेठ ने उस युवक की ओर सराहना-भरी दृष्टि से देखते हुए कहा, जिसने उस क्लर्क को जबर्दस्ती रोकने की कोशिश की थी।

"क्या आप केवल क़ौम के दर्द से यहाँ बैठे हुए हैं?" क्लर्क ने व्यंग्य-पूर्ण भाव से पूछा—क्या आप कह सकते हैं कि आप ने अपना सामान नहीं निकाला।"

"हाँ! मैंने एक तिनका तक नहीं हिलाया।" सेठ ने बड़े भरोसे से कहा।

"और वह चार ट्रंक जो......"

सेठ ने बात काटी—"वह—वह तो मेरी लड़की के थे, जो मैंने उसके ससुराल भिजवा दिये।"

"इसलिये कि उसका ससुराल जिस मुहल्ले में है, उसे हमसे भी अधिक खतरा है।"

"कुछ भी हो, परंतु कोई हिंदू अपनी कन्या का धन अपने घर में रखकर जलवा नहीं सकता।" सेठ ने इर्द-गिर्द के लोगों से जज़बाती अपील करने की कोशिश की।

"तो कुछ भी हो, मैं भी यहाँ परायी आग में जलने के लिए तय्यार नहीं, जब कि मैं जानता हूँ कि कोई भी यहाँ सच्चे दिल से क़ौम की खातिर नहीं बैठा हुआ है। सब अपने-अपने स्वार्थ से मजबूर हैं। और अगर कोई सचमुच ही यह समझता है कि वह क़ौम के लिए कुछ कर रहा है तो वह मूर्ख है, इन पूँजीपतियों के हाथों में खेलकर दूसरों की धन सम्पति बचाने के लिए अपने जीवन को खतरे में डाल रहा है।"

कुछ लोग उसकी बातें सुनकर खामोश हो गये। सेठ ने अपना नर्म लहजा बदलकर सख्ती से कहा—"तुम-जैसे कापुरुषों पर धिक्कार है जो न केवल खुद भागते हैं, बल्कि क़ौम की खातिर लड़नेवाले दूसरे वीरों को भी निर्बल करने की चेष्टा करते हैं।"

"सेठ जी, आप को यह डींग शोभा नहीं देती। क्या आप गऊ पर हाथ रखकर सौगंध खा सकते हैं कि आप अंतिम समय तक मुहल्ले को नहीं छोड़ेंगे?"

"हाँ मैं अवश्य आखीर तक मुहल्ले को बचाने की कोशिश करूँगा।" सेठ जी ने आवाज़ में ज़ोर पैदा करते हुए कहा।

"मेरा आशय केवल आपकी ज़ात से नहीं, क्योंकि आपकी चार लाख की इमारत यहाँ खड़ी है, आप तो आखीर तक नौजवानों को बरग़लाये रखने की कोशिश करेंगे ही। अलबत्ता यह अलग बात है कि आपने इन्हीं दिनों अपनी पिछली दीवार में एक नया दर्वाजा खुलवाया है, जहाँ से समय

पड़ने पर दूसरी गली में आने का रास्ता बन सके। खैर इसे छोड़िये। मेरा मतलब आप के बाल-बच्चों और आप के साजो-सामान से है। जब कि परसों आपने मुझे अपनी पत्नी को गाँव तक छोड़ आने से भी रोका था, क्या आप के बाल-बच्चे भी आखीर तक यहीं रहेंगे? क्या आप कसम खा सकते हैं?"

इस ग्रैज्युएट क्लर्क ने कुछ इस अन्दाज से पूछा कि सेठ जी की आवाज़ काँप गयी।

"जब तक कोई बहुत ज्यादा खतरा नहीं पैदा होता, वह भी यहीं रहेंगे।"

"बल्कि यूँ कहिए कि जब तक उनके सुरक्षित तौर पर और सारे साज़ोसामान समेत चले जाने का प्रबन्ध नहीं होता। नहीं तो इससे ज्यादा खतरा कब पैदा होगा, जब कि इस मुहल्ले को दस बार आग लगाने की कोशिश की जा चुकी है, और........"

वह कुछ और भी कहता और कुछ लोग उसकी बातों में दिलचस्पी भी लेने लगे थे कि सेठ ने इस मामले को तूल देना उचित न समझकर हथियार डाल दिये।

"देखो मिस्टर, इन फज़ूल बातों से कोई लाभ नहीं, अगर तुम इतने ही मुर्दादिल हो, तो दूसरों को भी निर्बल करने की जगह बेहतर है कि तुम चले ही जाओ। परंतु जो मकान तुमने यहाँ किराये पर ले रखा है, उसे भी छोड़ जाओ, ताकि कम-से-कम हम वहाँ कुछ शरणार्थियों ही को स्थान दे सकें।"

क्लर्क ने एक व्यंग्यपूर्ण मुसकान चेहरे पर लाते हुए कहा, "मुझे स्वीकार है। अगर आप कुछ नौजवान शरणार्थियों को अपनी भट्ठी में झोंकने के लिए ला सकें, तो मैं आप के काम में रुकावट नहीं डालता। आप के लिए वह लड़ेंगे भी और साथ-ही-साथ कौम की एक और खिदमत का सेहरा भी आप के सिर बँध जायगा। बल्कि मेरी मानिए, तो बाहर

से आनेवाले नेताओं को भी अपने यहाँ ठहराने की कोशिश कीजिए, इससे आपकी प्रतिष्ठा भी बढ़ जायगी और फिर सरकार भी स्वयं ही आप की बिल्डिंगों को बचाने का प्रबन्ध भी कर देगी।"

यह कहकर उसने अपनी फटी हुई कमीज की जेब से एक मोटी सी चाबी निकालकर उनके सामने फेंक दी और स्वयं झुककर अपना बिस्तर उठाने लगा।

दर्शकों पर कई क्षण एक गूढ़ मौन छाया रहा। उसकी पत्नी ने आगे बढ़ कर बिस्तर उठाने में पति की मदद करने की कोशिश की, तो पहली बार वह अधेड़ आयु का रँड़ुवा जोश में आकर बोला:

"नहीं, हम यह कभी नहीं होने देंगे। अगर एक व्यक्ति को भी इस बात की छुट्टी दे दी गयी, तो कल को मुहल्ले के सब किरायेदार भाग जायँगे और इस प्रकार एक मुहल्ले का बुरा प्रभाव दूसरे पर पड़ेगा। कहाँ हैं हमारे नौजवान! क्या वह कुछ भी नहीं कर सकते?"

उसी नवयुवक को फिर जोश आ गया, उसने आगे बढ़कर फिर उसके बिस्तर पर हाथ डाल दिया।

"हम मर जायँगे, पर इस तरह की कमजोरी नहीं पैदा होने देंगे।"

वीरता का समय देखकर नरोत्तम भी आगे बढ़ा और कहने लगा, "आज से हम दिन को भी मुहल्ले के फाटक पर पहरा लगा देंगे। किसी के घर से भी कपड़े की एक लीर तक कूचाबन्दी के बाहर नहीं जा सकती।"

फिर नौजवानों में एक हुल्लड़-सा मच गया। उस नीमजवान लड़के ने जोश में आकर कहा, "जो साहूकार चले जायँगे, हम उनके मकानों की रक्षा नहीं करेंगे, बल्कि हम खुद बनवारी लाल के मकान को आग लगा देंगे।"

सेठ किशोर लाल ने उसे शांत करने की कोशिश करते हुए कहा—"नहीं बेटा, यह गलत है, अगर कोई गलती करे, तो क्या हमें भी वैसी ही गलती करनी चाहिए।"

इतने ही में बहुत से लोग भागते हुए बेहद घबराहट के आलम में कूचे में दाखिल हुए।

"फसाद हो गया। फसाद हो गया।" बस यही दो वाक्य उनकी जबानों पर थे।

जो टोकरियाँ और बर्तन वह लेकर गये थे, वह कहीं रास्ते ही में गिर गये थे। मुहल्ले में एक भगदड़-सी मच गयी, कुछ लोग अपने घरों की ओर और कूचा बंदी की ओर भागे, और उसके नये लोहे के फाटक को बंद कर के एक मोटा सा ताला चढ़ा दिया गया।

नौजवान झट गुप्त स्थानों में जाकर लड़ाई का सामान ठीक करने लगे। औरतें जो उस क्लर्क के झगड़े का तमाशा देख रही थीं खिड़कियाँ बंद करके अंदर भाग गयी थीं और मकानों से बच्चों के रोने की आवाज आने लगी।

इतने में फाटक पर किसीने ठक-ठक की, जैसे वह कोई मृत्युदूत हो, जिसके आते ही मुहल्ले पर एक मुर्दनी-सी छा गयी। परंतु इस मौन की बारीक त्वचा के तले गुप्त सरगर्मियों का लहू इस ठक-ठक के बाद और भी तेज हो गया था।

अभी दर्वाजा न खोलने का निश्चय किया गया, ताकि कोई आदमी धोखे से दर्वाजा न खुलवा ले, और पास ही कहीं मुसलमानों का कोई झुंड छुपा बैठा हो। बाज़ार से भागकर आने वालों ने यह नहीं बताया था कि फसाद किस तरह हुआ और मुक़ाबले पर शत्रु-संख्या कितनी है। बहरहाल कुछ नौजवान अपनी-अपनी चादर में कुछ छुपाये विभिन्न स्थानों पर आड़ में खड़े हो गये।

"नरोत्तम—दर्वाजा खोलो! शाह जी— !!"

बाहर से आवाजें आयीं, नरोत्तम ने स्वर पहचानते हुए कहा—"अरे यह तो कैप्टन है। कहीं फँस गया होगा। कोई जल्दी से जाओ, कहीं इतनी देर में उसपर हमला न हो जाये।"

दो युवक भागे हुए गये, उनके पीछे दो और हथियारबंद लोग भी गये ताकि दर्वाज़ा खोलते-खोलते कोई हमला न हो जाये।

कैप्टन के अन्दर आते ही सब लोग बाहर का समाचार जानने के लिए उसके गिर्द जमा हो गये। उन्हें देखकर उसे बेहद हँसी आयी, आखिर उसने बताया कि बाज़ार के परले कोने पर दो साँड़ भिड़ गये थे, एक साँड़ जख्मी होकर जो भागा है, तो कई लोग उससे बचने के लिए बेतहाशा भाग खड़े हुए, उन्हें देखकर उनसे आगे वाले और फिर इसी तरह बाजार के दूसरे सिरे तक सब लोग एक दूसरे को देखकर भागने शुरू हो गये, परंतु किसी ने यह जानने की कोशिश न की थी कि आखिर लोग भाग क्यों रहे हैं?

नौजवान अपनी झेंप मिटाने के लिए एक थड़े पर बैठकर क़हकहे लगाने लगे।

*　　　*　　　*

धीरे-धीरे फिर लोग गली में आ गये, और दिन की पहली सभा शुरू हुई, थड़े पर दो एक दैनिक पत्र पड़े हुए थे, जिनका एक-एक पृष्ठ फटकर विभिन्न व्यक्तियों के हाथों में पहुँच चुका था, और बाकी लोग नये पुराने समाचारों पर समालोचना कर रहे थे।

होते-होते बात बिहार के गाँवों पर बम्बारी तक पहुँची।

नरोत्तम कहने लगा—"जवाहर लाल ने बिहार के हिन्दुओं पर तो बम चला दिये थे, लेकिन अब कहाँ सो गया है।"

"अरे भय्या, यह सब अपने भाइयों को मारने में शेर हैं, मुसलमानों के सामने सब भीगी बिल्ली बन जाते हैं।"

एक और महाशय कहने लगे—"उधर गाँधी को देखा झट बिहार वालों पर मरनव्रत का रुआब जमा दिया, कोई उससे पूछे कि जो तुम्हें हाथ देगा क्या तुम उसकी बाँह ही काट लोगे? हिन्दू बेचारे इधर मुस-

लमानों के हाथों भी मारे जायँ, और इधर अपनों की गोलियाँ भी वही खायें।"

पास से एक तीसरा बोला—"उसकी बात छोड़ो, वह तो बहुत बड़ा अवसरवादी है। अब उसने ज्योंही देखा कि उसकी लीडरी पीछे पड़ रही है तो उसने एक नया स्टंट रचा दिया है, ताकि उसकी मरती हुई लीडरी को ताजा खून मिल सके।"

"परंतु अगर वह स्टंट ही करता फिरता है, तो संसार के बड़े-से-बड़े लोग इस प्रकार उसके प्रशंसक न हो जाते, आखिर कोई बात तो है उसमें।" एक बाहर के नये व्यक्ति ने कहा, जो कल रात में नरोत्तम के घर आया हुआ था।

"जी हाँ, उसमें यही बात है कि उसने हिन्दुओं की लुटिया डुबो दी है। आज़ादी तो जब मिलेगी तब देखेंगे, अभी तो उसने अपनी अहिंसा के चक्र से हिन्दुओं को नपुंसक बना दिया है," एक नौजवान चमका।

ताराचंद पास से बोला—"कांग्रेस को वोट देकर हमने अपने हक में निश्चय ही बुरा किया है, इसका अफसोस हमें आज होता है, चुनांचे उसके फलस्वरूप आज लीग-जैसी हिन्दुओं की एक भी संस्था ताकत में नहीं है, जो केवल हिन्दू दृष्टिकोण से कार्य करे, एक महासभा थी, सो उसे भी कांग्रेस की बड़ी-बड़ी बातों में आकर हमने अपने हाथों डुबा दिया, और कांग्रेस है कि मुसलमानों के सामने बिछी जा रही है।"

वह व्यक्ति उनकी बातें सुनकर हँस दिया—"आप शायद यह भूल जाते हैं कि गांधी और कांग्रेस ही वह संस्था है, जिसने संसार में पहली बार इतने कम रक्तपात से संसार की सबसे बड़ी सल्तनत को खदेड़ के रख दिया है, और जवाहर लाल ने जो बमबारी की आज्ञा दी थी, वह कठोर अवश्य थी, परंतु नावाजब नहीं। अच्छा, आप ही बताइये कि यदि आपका बड़ा लड़का मझले भाई का एक बाजू काट दे, तो क्या आप उस मझले पुत्र को यह अधिकार दे देंगे कि वह सबसे छोटे भाई की टांग

काट डाले ? बस यही कारण है कि वह लोग जिन्होंने कांग्रेस को जाति-धर्म के भेद-भाव से रहित जनता की संस्था बना रखा है, अपने बच्चों को इस प्रकार की मूर्खता से रोकने का पूरा प्रयत्न करते हैं।"

"तो जैसे यह बम्बारी ही कांग्रेस और गांधीजी की अहिंसा का नमूना थी ?" प्रीतम सिंह ने मौका देखकर चोट की।

"गांधीजी की अहिंसा को आप लोग नहीं समझ सकते।" उस व्यक्ति ने विस्तार करते हुए कहा—"उनकी अहिंसा बहादुर की अहिंसा है, कायर की अहिंसा नहीं।"

"अगर आप इतने बड़े गांधी भगत हैं, तो ज़रा इस फसाद में ही अपना तजरबा करके दिखाइए, जिस तरह इस समय मुसलमान हमारे खून के प्यासे हो रहे हैं, आप हाथ जोड़कर अपनी जान बचाने का उपाय बताइए।" उस स्वयं-भू नेता ने उसकी पोल खोलने की आशा में प्रश्न किया।

उस व्यक्ति ने बड़े ठहराव से उत्तर देना शुरू किया—"सबसे पहले मैं आपकी एक ग़लतफ़हमी दूर कर दूँ, कि आप शायद मृत्यु से किसी प्रकार बचना ही जीवन का वास्तविक ध्येय समझते हैं, हालाँकि आपको याद रखना चाहिए कि मृत्यु से आप किसी भी प्रकार नहीं बच सकते। अपने नियत समय पर जिसे अवश्यमेव आना है, उससे डरकर भागने की चेष्टा में आप कई बार मर जाते हैं और फिर भी उससे बचाव का कोई स्थान नहीं पाते। चुनांचे यदि आप केवल मृत्यु से बचने के लिए किसीको मारते हैं तो एक व्यर्थ का पाप अपने सिर मढ़ लेते हैं, इसके अतिरिक्त पशुबल-प्रयोग करके भी तो यह निश्चित नहीं होता कि शत्रु आप से अधिक बलवान सिद्ध न होगा। चुनांचे इस अवस्था में यदि आपमें ताकत हो, यदि आप मृत्यु का भय अपने मन से दूर कर सकें, तो आइए! इन भेदभाव-पूर्ण कूचाबंदियों के ताले खोल दीजिए, जिन्होंने मानव को मानव से पृथक् कर रखा है, उन सब कृत्रिम सीमाओं

को मिटा दीजिए, और अपने बाल-बच्चों समेत बाहर निकल आइये, और जिन्हें अपने शत्रु समझ रहे हों उन्हें न केवल अपने नादान भाई समझ-कर बल्कि अपने दिल में उनके लिए प्रेम और दया के भाव लेकर उन्हें समझाइए, कि तुम नादानी कर रहे हो। यदि इसका तुरत ही असर न होगा, तोभी आप लोगों का विशुद्ध रक्तपात निष्फल नहीं जायगा। याद रखिये कि हिंसा से हिंसा की हर टक्कर एक नयी हिंसा का बीज बोती है, परंतु एक भी निर्दोष और सच्चे अहिंसावादी का खून वैकुण्ठधाम को कम्पायमान कर देता है। केवल आपका मुहल्ला ही यदि इतना बलिदान दे सके तो सारे भारत में एक भूचाल आ जाए और फिर एक समय वह आयेगा कि जिन्हें तुम म्लेच्छ कहते हो, स्वयं उस जाति के सत्पुरुष आगे आकर अपने आपको तुम्हारी जगह बलिदान के लिए पेश करेंगे। उस समय न केवल तुम्हारी विजय होगी, बल्कि तुम्हारा शत्रु भी विजय पायेगा, अपनी बुराई पर—मानवता पशुता पर विजय पायेगी। इस 'युद्ध' में किसीकी पराजय नहीं होती, आप मर अवश्य जायँगे, परंतु बिस्तर पर एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मरने की जगह अमरत्व की वह सुरा पान करके, जिसका मौक़ा हरेक के भाग्य में नहीं बदा होता, जिसके लिए देवता भी एक कर्मण्य-मनुष्य देह पाने के इच्छुक रहते हैं। प्रगट रूप में मृत्यु हो जाने पर भी आप वह अमर जीवन पा जायँगे, जिसकी कभी मृत्यु नहीं होती—और मृत्यु पर विजय पाने का केवल यही एक सिद्धि-मंत्र है................"

उसका अंदाज़ उपदेशकों का-सा हो गया था, और सब चुपचाप उसकी बातें सुन रहे थे। आनंद को निराशा के घनीभूत अंधकार में प्रकाश की एक किरण कुछ इस प्रकार चमकती हुई महसूस हुई जैसे अमावस की रात में एक घने चनार के पत्तों में से कोई सौन्दर्य-युक्त तारा झाँकने लगे, और जो अपनी शीतल प्रकाश रश्मियों से एक नियत पथ की ओर इंगित कर रहा हो।

उसे अचानक ऐसा महसूस होने लगा जैसे यह भाव एक मुद्दत से उसके अपने हृदय में मौजूद थे, और जैसे यही उसके वास्तविक भाव भी थे, धर्माचार की अकर्मण्य बातें केवल सोचने की हद तक ही सुन्दर थीं। कर्म और सम्भवता के प्रकाश में उनका रंग फीका पड़ गया था, और जैसे कर्म की ओर आते ही उसके वास्तविक भाव आज नग्न हो रहे थे।

यहाँ तक कि उसे अपने-आपसे डर लगने लगा। परंतु इस उफान में भी उसकी विवेक-शक्ति बिल्कुल बेसुध नहीं हो गयी थी। वह सोचने लगा क्योंकि वह सदा केवल सोचा ही करता था,—"वास्तव में इन्सान बुनियादी और प्राकृतिक तौर पर वहशी है, जंगली है। दूसरों को सताकर सुख पाना (sadism) उसकी प्रकृति में शामिल है। परंतु इस कच्चे माल का एक सूक्ष्म रस के साँचे में ढालना, इस चञ्चल बछेरे की-सी प्रकृति को सदाचार के कोड़ों से काबू में लाना ही सभ्यता है। और यही मानव को उसके साथी पशुओं से अलग 'कुछ' बना देती है........

इन्हीं बातों को सोचता हुआ वह उनके पास से चला आया कि कहीं उनकी और बातें सुनते-सुनते उसके अन्दर का पशु फिर से न जाग उठे।

चुनांचे घर जाकर उसने अपने सब मित्रों को एक-एक पत्र लिखने का निश्चय किया। उसने फैसला कर लिया था कि अब वह केवल सोचेगा नहीं, बल्कि कुछ करेगा भी। और वह 'कुछ' क्या है, इसका कोई भी कल्पित चित्र आँखों के आगे उजागर न हो पाया था तो भी उसने निश्चय किया कि और कुछ नहीं तो वह कम-से-कम हिंदुस्तान के कोने-कोने में स्थित अपने मित्रों को पत्र ही लिखेगा जिनमें वह शांति और प्रेम का प्रचार करेगा।

परन्तु अपने कमरे में पहुँचकर ज्योंही वह पत्र लिखने बैठा, तो सफेद कागज को देखते ही उस छुरी की चमक फिर से उसकी निगाहों के सामने

फिर गयी, थोड़ी देर पहले किसी के वक्ष में छुरा घोंपने की कल्पना उसने इस विस्तार से की थी कि उसे उस समय यों महसूस हो रहा था कि जैसे वास्तव ही में वह अभी-अभी किसीको छुरा मारकर चला आ रहा है, और जैसे एक वध के बाद लहू की प्यास और बढ़ गयी थी...

उसने कलम बंद कर रख दिया। वह डरने लगा था कि कहीं अचेतन या अर्धचेतन अवस्था में अनजाने ही वह किसी पत्र द्वारा न-जाने किस मित्र के सीने में खञ्जर उतार दे। उसे फिर अपने आपसे डर-सा लगने लगा, कि कहीं वह अपने दाँतों से किसीका मांस न काट खाये, या इटली के कवि 'दांते' के कथनानुसार अपने कलम की लौह-नोक से किसीके माथे में कोई रक्तरंजित चिह्न न दाग दे...

वह करीब-करीब भागता हुआ अपने घर से निकल गया। वहाँ से वह सीधा बाजार में पहुँचा। उसके मन में एक आशाजनक इच्छा भर थी, कि शायद बाजार में उसे वही व्यक्ति फिर से मिल जाय, जिसने अभी कुछ ही समय पहले उसे अकर्मण्यता की खड्ड से बाहर निकालकर कर्म का एक स्पष्ट-सिद्ध मार्ग दिखाने की कोशिश की थी। वह अब केवल सोचते ही रहना नहीं चाहता था; बल्कि कुछ करना चाहता था—'कुछ'...

* * *

वह बाजार में पहुँचा तो शहर छोड़कर जानेवालों का एक ताँता लगा हुआ था। मनुष्यों की एक नदी थी, जो किसी अज्ञात स्थान की ओर भागी चली जा रही थी। गलियों में से छोटे-छोटे काफिले कुछ इस तरह निकलकर उनमें मिल रहे थे; जैसे छोटे-छोटे नाले पहाड़ों की मजबूत और सुरक्षित ऊँचाइयों से किसी बहुत नीचे बहनेवाली नदी की गहरी खड्ड में सिर के बल गिर रहे हों। किसी-किसी टोली के पास रेडियो और सोफा-सेट भी थे, परन्तु अधिकांश के पास आग से टेढ़े-मेढ़े हो गये ट्रंक, अधजले कपड़ों की चंद गठड़ियाँ और कुछ बर्तनों की बोरियाँ थी, स्त्रियों

के बाल बिखरे हुए थे, बच्चों के चेहरे मैले और मर्दों के कपड़े फट गये थे। उन सबका केवल एक ही लक्ष्य था कि किसी-न-किसी तरह वह रेलवे स्टेशन तक पहुँच जायँ ; जहाँ से कोई-न-कोई गाड़ी तो उन्हें इस शहर से कहीं दूर ले जायगी। यह शहर—जिसकी गोद में उनका बचपन खेला था, जिसकी बहारों में उन्होंने जवानी की पहली धड़कनें महसूस की थीं, जिसकी हवाओं में उनके पुरखों के निशान लहरा रहे थे—वही शहर आज उनके लिए परदेश हो रहा था। उसकी धरती उनके और उनके बच्चों के खून की प्यासी हो गयी थी। चुनांचे वह उससे दूर भाग जाना चाहते थे। लीडरों की अपीलों, स्वयंसेवकों की रुकावटों और दर्शकों के तानों का उनपर कोई असर न हो रहा था। कुछ नौजवान उन्हें जबर्दस्ती रोकने की कोशिश कर रहे थे, परन्तु जितनी देर में वह एक टोली को समझाते रहते, उतनी देर में दर्जनों टोलियाँ उनसे लापरवाह पास से गुजरती चली जातीं—नदी में बाढ़ आयी हुई थी, और उसपर कोई बाँध नहीं बाँधा जा सकता था।

दूसरे लोग आवाजें कस रहे थे—"वीरों का काफिला हिन्दुस्तान विजय करने जा रहा है।"

कोई कहता—"यह सेठजी दिल्ली जा रहे हैं, लाल किले पर झंडा गाड़ेंगे।"

तो तीसरा कहता—"सुभाष बाबू इन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर गये थे।"

कुछ स्वयंसेवक ऊँची आवाज में चिल्ला रहे थे—"भाइयो इस तरह न भागो। उधर तुम्हारे मकान जल जायँगे, इधर तुम्हारा स्टेशन तक पहुँच सकना भी निश्चित नहीं।"

और यह सत्य था। अभी-अभी सूचना आयी थी कि न केवल छुहारी दर्वाजे के बाहर इन बेसरोसामान काफिलों पर एक बम फेंका गया था बल्कि स्टेशन के वेटिंग-रूम में भी, जहाँ हजारों की संख्या में शरणार्थी

जमा थे, दो बम फेंके जा चुके थे, परन्तु कोई किसीकी नहीं सुन रहा था। सब एक अस्पष्ट-सी आशा के सहारे बहे चले जा रहे थे। यहाँ तक कि जो लोग उनपर आवाजें कस रहे थे, कुछ घंटों बाद स्वयं उनमें से कुछ लोग इसी दरिया में बहते हुए दिखायी देते।

"हिंदुओं का morale बिलकुल टूट गया है," एक किनारे बैठे हुए कुछ नौजवान कौम का रोना रो रहे थे।

"यह केवल बचाव ही करने की नीति का फल है। काश उनमें भी पहले हमला करने की हिम्मत होती, तो आज उनकी जगह मुसलमान भाग रहे होते," दूसरे ने कहा।

"वह उस प्रोग्राम का क्या बना ?" तीसरे ने बड़े रहस्यपूर्ण अन्दाज में पूछा।

"बनेगा तो सब कुछ, अभी देखो दो बजे के करीब नीची गली से आग के लपटे उठेंगे। परन्तु खेद तो उन लोगों पर है जो इस समय भाग रहे हैं जब कि हमारा हमला शुरू होनेवाला है।"

उसका बयान अभी पूरा न हुआ था कि एक लड़का उनमें से उछला—"वह देखो।"

उन सबने देखा कि एक ताँगा सामान से लदा चला आ रहा है। कोई सेठ काफी रुपये का लालच देकर अपने यहाँ की औरतों के लिए उसे ले आया होगा।

नौजवानों में एक अस्पष्ट-सी हलचल पैदा हुई। और...

कुछ ही क्षणों के बाद ताँगे के समीप एक बिजली-सी चमकी। पलक झपकते में लोग इधर उधर बेतहाशा भागते दिखायी दिये। भागते समय उन्हें अपने-अपने सामान का भी ध्यान न रहा था; और देखते ही देखते सारा बाजार खाली हो गया।

केवल वह चार नौजवान रह गये थे। अब एक के हाथ में रक्त से लिथड़ी हुई एक छुरी पकड़ी हुई थी। लहू के छींटे उड़कर उसके कपड़ों

पर भी पड़े थे। ताँगे का मुसलमान कोचवान बुरी तरह घायल होकर गिर गया था, परंतु गिरते हुए उसका शरीर पायदान से अटककर आधा लटक गया था।

उसके पहलू से गरम-गरम खून का एक फव्वारा उसके कपड़ों को सींच रहा था।

गाढ़े लहू के मोटे-मोटे बिंदु उसके दिल के समीप थोड़ी-सी देर काँपने के बाद धरती पर टपकते जा रहे थे। आनंद को यह देखकर ऐसा लगा, जैसे मानव ने मानव के सीने में छुरा भोंककर आत्महत्या कर ली थी। और मानवता इतिहास की इस सबसे बड़ी ट्रेजेडी पर लहू के आँसू बहा रही है।

जख्मी कोचवान में हिलने-डुलने तक की सामर्थ्य भी न रह गयी थी; परंतु उसकी आँखें बड़ी खामोशी से सब कुछ देख रही थीं। वेदना अपनी सीमा का भी उल्लंघन कर चुकी थी; अलबत्ता उसकी निगाहों में एक मूक प्रश्न छलक रहा था। वह प्रश्न क्या था? वह प्राणी उस समय क्या सोच रहा था?—कोई नहीं जानता था। कौन कह सकता था कि उसका बहता हुआ निर्दोष लहू यह पुकार रहा था कि "मानव के अपने रक्त को इस प्रकार धूल में मिलने से बचाओ।" यह उसकी स्थिर, जमी हुई-सी निगाहें उस व्यक्ति को ढूँढ़ रही थीं। जो उसका बदला लेगा...

उसकी आँखें खुली थीं और जबान बंद।

"अब खड़े मुँह क्या देख रहे हो? पेट्रोल लाओ।" एक नौजवान ने कुछ इस प्रकार कहा जैसे वह कोई दफ्तरी कार्रवाई कर रहा हो।

जब उस पर पेट्रोल छिड़ककर आग लगायी गयी, तो उस समय भी वह उसी प्रकार खामोशी के साथ कुछ ऐसी निगाहों से अपने चारों ओर देखे जा रहा था जिनकी मौन गहराई तक पहुँचकर यह देख सकना सम्भव न था कि उनके अथाह अंतस्तल में मानवता के अश्रु लहू के कतरे बनकर टपक रहे थे या एक हिंस्र प्रति-विनाश की ज्वालाएँ भड़क भड़क

कर उसे—एक इंसान को—अपने प्रगति-चिह्न ताँगे-समेत जला रही थीं…

"साले समझते थे कि हम अपने सात आदमियों का बदला नहीं ले सकते, जिन्हें उन्होंने परसों इसी प्रकार जला दिया था।" एक नौजवान ने आग की प्रचण्ड शिखाओं के साथ मिलकर कहकहा लगाते हुए कहा।

"हाय-हाय—बेचारे घोड़े को तो खोल लो।" बायें किनारे के मकान की ऊपर वाली मंज़िल से किसी दयावान स्त्री की आवाज़ आयी।

घोड़ा चारों पैर उठाकर उछल रहा था। बड़ी मुश्किल से उसके बंद काटकर उसे आज़ाद किया गया और पास वाली हवेली में ले जाया गया। जहाँ कुछ दयावान लोगों ने फौरन उसे ठंडा पानी पिलाया। उसकी त्वचा एक-दो स्थानों से जल गयी थी, चुनांचे एक लड़की भागकर उसके लिये मरहम लेने गयी; और कुछ औरतें अपने आँचलों से हवा करके उसके घावों पर से मक्खियाँ उड़ाने लगीं।

इतने में एक नौजवान भागा हुआ अंदर आया, और एक मकान के सामने खड़े होकर उसने आवाज़ दी—"एक डिब्बा और भेजना जल्दी से। ताँगा जल गया, लेकिन वह अभी जलता ही नहीं।"

अंत का वाक्य उसने धीमे स्वर में केवल पास खड़े हुए लोगों को सुनाने के लिए कहा था।

थोड़ी ही देर में वही लड़की एक हाथ में घोड़े के लिए मरहम की डिबिया और दूसरे हाथ में उस मुसलमान इंसान के लिए पेट्रोल का एक डिब्बा उठाये बाहर निकली। पेट्रोल उस नौजवान के हाथ में देते ही वह उस घोड़े की ओर भागी, और उसकी मरहम-पट्टी में लग गयी।

* * *

आनंद, जो दूसरे लोगों के साथ भागकर इस गली में आ चुका था, अब बाहर जाकर जलते हुए ताँगे को देखने के बारे में सोच ही रहा था कि वे चारों नौजवान भी भागकर अंदर चले आये। किसीने दूर से

पुलिस के आने का इशारा कर दिया था, चुनांचे उनके अंदर आते ही गली की कूचाबंदी पर ताला चढ़ा दिया गया।

उनमें से एक युवक ने गली के नल पर बैठकर कपड़े बदले, और वहीं उस छुरे को धोने लगा। एक ही मिनट में वह लहू से लिथड़ा हुआ छुरा साफ हो गया और उसकी चमक फिर लौट आई। आनंद सोचने लगा कि "इस छुरे के लिए भी खूनी रंग केवल एक अस्थायी वस्तु है, जिसका अंत एक ही मिनट में हो जाता है। स्थायी और अनंत है केवल उसकी सफेदी और उज्ज्वलता ; और सफेदी और उज्ज्वलता पुण्य और शांति के चिह्न हैं, एक पाप-शस्त्र के मूल तत्व भी पुण्य और शांति के प्रतीक हैं। और फिर उसे अपना यह विचार, कि बुनियादी तौर पर मनुष्य एक शैतान है—उसके मूल-तत्वों में तमो-गुणी पिशाच-वृत्ति है—गलत दीखने लगा। उसने सोचा कि पुण्य और शान्ति ही अनादि और अनन्त हैं, आज सहस्रों वर्षों से दानवता और पाप युद्ध और अशान्ति की तलवार से पुण्य और शान्ति का वध करने की कोशिश कर रहे हैं ; परन्तु सफल नहीं हो पाते। शान्ति एक दिन अवश्य होती है, बल्कि शान्ति का समय सर्वदा ही युद्ध के समय से अधिक रहा है। मनुष्यों ने सौ-सौ साल तक निरन्तर युद्ध करके भी देख लिया, परन्तु शान्ति और मानवता का मूल नष्ट न हो सका—और अंततः वह दिन अवश्य आएगा, जब युद्ध और दानवता थक जाएगी, जब बिल्कुल शान्ति होगी—निरन्तर और अनन्त, जब कहीं कोई युद्ध नहीं होगा, जब सभी दिशाओं में इन्द्र-धनुष के रंग बिखरे होंगे.....

और यह सोचते-सोचते उसे इतिहास के बड़े-से-बड़े युद्ध-निपुण, बड़े-बड़े विजयी और सेनानायक चींटियों की तरह दिखायी देने लगे ; जिनकी जीवनियाँ वे थोड़े-से साल अनंतता की विराट् विशालता के सामने रेत के छोटे-से-छोटे परमाणु से भी अधिक तुच्छ और महत्व-हीन नजर आने लगे.....

और इन बातों के साथ-ही-साथ उसे इस बात का भी ख्याल आया कि आखिर उसका अपना महत्व क्या है—वह जो केवल सोचता ही रहता है और करता कुछ नहीं, उनसे भो बुरा है जो चाहे बुरा कहते हैं पर 'कुछ' करते तो हैं, अकर्मण्य तो नहीं हैं। लेकिन उसने यह भी सोचा कि 'मुझ अकेले के करने से क्या होगा। मैं अकेला तूफान के धारे को किस तरह मोड़ सकूँगा,' पर इस प्रकार की आशंकाएँ अधिक समय तक उसे हताश न कर सकीं।

अकर्मण्यता से कर्मनिष्ठता की ओर बढ़ते समय जैसे प्रतिद्वन्द्वी विचारों की एक बाढ़ उस पर छोड़ दी गयी थी, जो विभिन्न और परस्पर प्रतिकूल दिशाओं से उस पर टूट पड़े थे। और हर प्रतिद्वन्द्वी रौ उसे अपने धारे के साथ बहा ले जाना चाहती थी। एक आशंका पैदा होती तो उसके साथ ही उसका तोड़ भी दिमाग में आ जाता। और फिर एक नयी आशंका और फिर उसका जवाब। और इसी प्रकार वह अकर्मण्यता और केवल सोचते ही रहने के जीवन से एक कर्मण्य जीवन की ओर तिल-तिल बढ़ता जा रहा था......। चुनांचे उसने इस प्रश्न का उत्तर भी सोच लिया कि चाहे मेरी कोशिश कितनी ही अल्प-काय, कितनी ही तुच्छ क्यों न हो, वह समूचे तौर पर व्यर्थ और निष्फल नहीं जायगी। केवल सोचना भी तो किसी हद तक आस-पास के वायुमण्डल को प्रभावित कर देता है, और सम्भव है कि उस मण्डल में साँस लेता हुआ कोई दूसरा व्यक्ति उससे प्रभावित हो जाय; और फिर इसी प्रकार उससे आगे जोत से जोत जलने का सिलसिला कायम रह सकता है; और इतना महत्व-हीन आरम्भ भी चश्मे की तरह एक दिन नदी और समुद्र बन जाय......

"'डिफेंस' तो आखिर करना ही पड़ता है। इसके सिवा क्या चारा है। बल्कि कई बार तो जो प्रकट रूप में 'ऑफ़ेंस' दिखायी देता है, 'डिफेंस' ही का एक रूप होता है।" उन नौजवनों में से एक अपने इर्द-

गिर्द खड़े हुए कुछ बूढ़ों के सामने शायद अपने 'कारनामे' का औचित्य साबित करने की कोशिश कर रहा था।

आनन्द ने इससे पहले की बातें नहीं सुनी थीं, और उसके बाद की ही सुन सका। उस दलील ने उसके दिमाग में एक नयी विचार-धारा पैदा कर दी थी—'डिफेंस' या वीरतापूर्ण आत्म-संरक्षण वन्दनीय सही। परन्तु सात हिन्दुओं को जीवित जला देनेवाले मुसलमानों के बदले एक अनजान कोचवान को जीवित जला देना तो न वीरता है और न न्याय। नोआखाली के अत्याचारों का बदला बिहार के मुसलमानों से नहीं लिया जा सकता। अगर किसीमें सामर्थ्य हो तो रावलपिण्डी और नोआखाली में जाकर 'डिफेंस' करे.....परन्तु उस प्रकार करने से भी इस बात की गारण्टी कौन दे सकता है कि 'डिफेंस' बिलकुल अपनी सीमा के अन्दर ही रहेगा और 'ऑफेंस' की सीमा में प्रवेश करके एक आक्रांता-दल का रूप धारण न कर लेगा। उस समय उन महान-आत्मा मुसलमानों को कौन बचा सकेगा जिन्होंने किसी-किसी गाँव में अपनी जानों पर खेल-कर भी अपने हिन्दू पड़ोसियों की रक्षा की। यदि 'डिफेंस' करते हुए इस प्रकार के एक भी निर्दोष मुसलिम वीर के रक्तपात की सम्भावना हो, तो इससे आत्म-संरक्षण की चेष्टा के बिना मर जाना कहीं बेहतर है......

और यह सोचते हुए उसे अचानक ख्याल आया कि कहीं यह कोचवान वही ताँगेवाला तो नहीं था जिसके बारे में परसों ही सूचना आयी थी कि उसने बड़ी बहादुरी से एक हिन्दू स्त्री को मोरी दरवाज़े के बाहर मुसलमानों के एक बिफरे हुए दल के हाथों बचा लिया था......

"नीली गली में आग लग गयी है"—इतने में किसी छत पर से एक औरत की आवाज़ सुनायी दी।

बहुत से लोग यह सुनते ही गलियों की ओर भागे और छतों पर चढ़-कर देखने लगे। आनन्द ने यह सुनते ही आव देखा न ताव, सीधा तीर की तरह अपनी गली में पहुँच गया। वहाँ पहुँचते ही उसने देखा

कि सचमुच शम्सदीन के मकान को आग लगी हुई थी ; और कोई भी युवक वहाँ आग बुझाने के लिए मौजूद न था। केवल एक तरफ दो-चार बूढ़े उस आग को देख-देखकर कुछ इस प्रकार शोक प्रकट कर रहे थे जैसे यह शम्सदीन का मकान नहीं जल रहा था, बल्कि स्वयं उनके बचपन को सजीव जलाया जा रहा था।

उसे देखते ही उन सबके कण्ठों से वेदना-भरी एक ही पुकार निकली—"आनन्द, इस आग को बुझाओ। देखो, यहाँ कोई भी तो नहीं है।"

परन्तु आनन्द बुझाता कैसे ? पानी के जो ड्रम जो किसी ऐसी ही घटना के समय इस्तेमाल करने के लिये भरे रहते थे, किसीने बिल्कुल खाली कर रखे थे, और बहुत खोजने पर भी उसे एक बाल्टी तक न मिली जो वह कुएँ ही से पानी निकाल लेता। आग लगने से कुछ ही देर पहले नौजवान पार्टी ने सारे महल्ले की बाल्टियाँ न जाने क्यों जमा कर ली थीं।

उसे और कुछ न सूझा तो वह घबराया हुआ-सा उस गुप्त स्थान में घुस गया जहाँ हथियार इत्यादि सामान रखा जाता था।

वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि सब नौजवान बड़ी तसल्ली में बैठे बातें कर रहे हैं, उसे देखते ही उनके चेहरों पर एक विजयी मुस्कान की बाँकी-सी लकीरें खिंच गयीं।

"लो भई, हमने तो अपना काम पूरा कर दिया।" एक ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक कहा।

दूसरे ने पूछा—"ठीक तरह जल रहा है या नहीं।"

"यह तो पीछे बताऊँगा, पहले यह बताओ कि वह बाल्टियाँ कहाँ हैं, जो तुम लोगों ने अभी इकट्ठी की हैं ?" आनन्द ने सीधा प्रश्न किया।

उसके पास बातों के लिए कोई समय न था, परंतु उसकी जल्दी

और परेशानी का उन लोगों पर रत्ती भर भी असर न हुआ। एक लड़का चाकलेट के टुकड़े बाँट रहा था, वह अपने काम में उसी तरह लगा रहा, और बाकी लड़के उन टुकड़ों को मुँह में डालकर बड़े मजे से चूसने लगे थे।

आनन्द की सहन-शक्ति जवाब दे रही थी, और वह एकदम अधीर हो रहा था।

"देखो, यदि तुम लोग इसी तरह न स्वयं खोलोगे, न मुझे खोलने दोगे तो मैं इसी प्रकार निहत्था ही आग में चला जाऊँगा।" न जाने यह बात बिजली की भाँति उसकी ज़बान पर कैसे चमक-सी गयी।

उत्तर में नरोत्तम ने अपना चाकलेट बायें गाल में दबाकर गाना शुरू कर दिया—

> शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
> वतन पर मरनेवालों का......

परन्तु, इतनी देर में आनंद बाहर आ चुका था।

बाहर आग बहुत भड़क गयी थी।

आनंद ने पल भर के लिए खिड़कियों के समीप नृत्य करती हुई ज्वालाओं को देखा, और फिर सीधा उस मकान में घुस गया।

आखिर उसने अपना कर्म-क्षेत्र पा लिया था!

* * *

……ज्वालाएँ चारों दिशाओं से उसके गिर्द लिपटने की कोशिश में आगे बढ़ रही थीं। कड़वे धुएँ के घने बादलों ने हर कदम पर उसे [illegible]—परंतु उसे तो उस समय किसी भी बात का होश न था। किसी दरवाजे का एक मोटा सा पर्दा कहीं से उसके हाथ लग गया था और उसी की मदद से उन ज्वालाओं को दबाने की कोशिश करता हुआ वह [illegible] की मंजिल तक आ पहुँचा था।

[illegible] एक छोटी-मोटी [illegible] हो गयी थी। आनन्द के

कारण औरतों और बूढ़ों में एक हाहाकार मच गयी थी और अब नौज-वांन मजबूत होकर पानी की बाल्टियाँ लिये इधर से उधर भाग रहे थे, परंतु आग अब उनके काबू के बाहर हो चुकी थी...

आनंद अपनी निष्फल कोशिशों से थक चुका था, मगर वह निराश नहीं हुआ था। वह नीचे वालों की आवाजें सुन सकता था, और उसे इस विचार से एक अकथनीय शांति—एक उल्लास का अनुभव हो रहा था कि आखिर उसने उन्हें आग बुझाने की कोशिश करने पर मजबूर कर दिया था, और यह उसकी विजय थी......

परंतु अब सीढ़ियाँ भी धू धू करके जल रही थीं और विजयी होकर भी उसके पास अब नीचे जाने का कोई रास्ता न रह गया था। फिर भी वह खुश था कि वह अपने साथियों को सत्यमार्ग तो दिखा सका—आखिर उसने अपने निष्कर्म जीवन में कुछ तो किया.....

ऊपर की उठती हुई ज्वालाओं में से उसने सामने ऊपा के कोठे पर निगाह दौड़ायी। वहाँ उस समय कोई न था—शायद वह उस समय सारे महल्ले के साथ नीचे गली में खड़ी इस प्रकार आँसू बहा रही हो कि भले ही सारा संसार देख ले, या क्या जाने वह पानी की बाल्टियाँ भर-भर के ला रही हो—परंतु वह आग के कारण नीचे गली में झाँक भी तो नहीं सकता था। कारण वह उस समय एक बार तो ऊपा को देख लेता, परंतु हाय रे यह आग उसे इतना अवकाश देती दिखायी न दे रही थी...

वह फिर अपनी सोचों की ओर बढ़ा। उसने सोचा कि अग्नि के सामने—वह महाअग्नि जो पाँच हजार वर्ष या दस हजार वर्ष या शायद पचास हजार वर्ष के पुराने इन्सान को उसकी सारी सञ्चित संस्कृति और सभ्यता समेत इस प्रकार एक ही दिन में जलाकर भस्म कर रही थी—उसका या उसके व्यक्तिगत प्रेम का तुलनात्मक महत्व ही कितना है...

बार उसे कीट्स की एक कविता याद आ गयी जिसमें उसने लिखा था कि—

"ओ कामिनी—जब मैं यह महसूस करता हूँ कि मैं फिर
कभी तुम्हारे मुखारविंद के दर्शन भी न कर सकूँगा,

जब मुझे इस बात की आशंका होती है कि एक दिन मैं नहीं रहूँगा,
तो मैं इस संसार के विशाल तट पर खड़ा होकर सोचने लग
जाता हूँ—सोचता ही जाता हूँ,
यहाँ तक कि प्रेम, विख्याति और दूसरे सब महाकार्य नाऽस्ति
और नश्वरता
के गूढ़ शून्य में विलीन होते चले जाते हैं..."

वह यही कुछ सोचता हुआ ऊपर की मंज़िल में चला गया था। ऊपर के कमरों में अभी साँस लिया जा सकता था।

गली में से आनेवाली आवाजें उसे कहीं बहुत दूर से आती महसूस हो रही थीं। वह लोग उसे बचाने के लिए आग से लड़ रहे थे, और उस समय सबसे ऊपर की मंजिल में बैठकर ऐसा महसूस हो रहा था जैसे वह बहुत ऊँचा हो गया है—इतना ऊँचा इतने परे कि वहाँ काल की असीम निरंतरता और स्थान के अनंत क्षितिज भी बहुत नीचे, बहुत पीछे रह गये थे, वहाँ कोई सीमा न थी।

नीचे लोग आग से लड़ते रहे। और उस असीम ऊँचाई पर बैठा हुआ वह बड़े स्थिर-भाव से एक कविता लिखता रहा—

"ओ आज से हजार वर्ष बाद मेरी यह कविता पढ़नेवाले मानव !
मैं अपनी ऊँचाइयों से तुम्हारे वहाँ का सब कुछ देख सकता हूँ।
परंतु अफसोस, तुम्हें अपने यहाँ का कुछ नहीं दिखा सकता—
—ओ हजार वर्ष बाद आनेवाले
तुम्हारे आकाश में जो इंद्रधनुष के रंग सदा बिखरे रहते हैं,

उनकी ओर देख, और याद कर कि उसमें वह आकाश
नील-वर्ण भरने के लिए आज के दिन मेरे-जैसे तुम्हारे कई भाई
नील-वर्ण धुएँ के उत्तप्त भभाकों में खो गये,
अपने यहाँ की सुन्दर सम्मोहनी प्रभातों को देख और सोच
कि उनकी यह उज्ज्वल सुन्दरता तुम्हारे लिए
कायम रखने की चेष्टा में किसीने आज उनसे भी सुन्दर
उषा को छोड़ते समय अन्तिम दर्शनों की प्रतीक्षा
तक नहीं की—
हो सके तो उसे भी याद कर......

द्वितीय खण्ड

चौथा परिच्छेद

पंजाब के विशाल मैदानों में लहलहाते हुए खेतों की खड़ी फसल को ढोर-डंगर बड़े मजे से खा रहे थे, उन्हें इन हरकतों से रोकनेवाला कोई न था, और न कोई इस खेती को काटनेवाला ही था, इन खेतों की रक्षा करनेवाले इन्सान आज अर्द्ध-नग्न हालत में छोटी-छोटी टोलियाँ बनाये बे-सरोसामानी की हालत में, बरसते पानी और कड़कती धूपों में कहीं पनाह ढूँढ़ने के लिए इन विशाल मैदानों में इधर से उधर परेशान फिर रहे थे, इन्सान इन्सान से पनाह ढूँढ़ने के लिए पंजाब के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ लगाते फिर रहे थे। उनके पाँव छलनी हो गये थे, उनका सामान अग्नि-देव या लुटेरों की भेंट चढ़ गया था, कपड़े इस दौड़-भाग में फट गये थे, उनकी आधी के करीब औरतों ने आत्म-हत्या कर ली थी और जो बाकी थीं, वे कुछ इस तरह सहम गयी थीं कि उन्हें अब अपने पुरुषों पर भी विश्वास न रहा था। जो मर्द अपने गाँव की हर लड़की को अपनी बेटी समझा करते थे, जो पुरुष बाजारों में बड़े सम्मान से उनके लिए रास्ता छोड़ दिया करते थे और जिनके पुरखाओं ने उनकी माताओं और दादियों की लाज की सदा रक्षा की थी, उन्हीं पुरुषों ने आज उनके साथ वह कुछ किया था कि अब वे हर पुरुष से भयभीत होने लगी थीं। स्वयं अपने भाइयों और पतियों के चेहरों पर भी उन्हें कुछ इस प्रकार की बर्बरता और वहशत की मुद्रा अंकित दीखने लगी थी जैसे वे भी उनकी छातियों का मांस कच्चा ही खा जायँगे...

उनके बच्चे भूख और प्यास से बिलबिला रहे थे, बच्चों के कोमल

अमृतसर, पटियाला, लुधियाना इत्यादि के इलाकों से भी बेहद अफ़सोस-नाक खबरें आनी शुरू हो गयी थीं। यहाँ तक कि १४ अगस्त को सवेरे मुसलमान शरणार्थियों की पहली गाड़ी अमृतसर से लाहौर पहुँची।

उस दिन स्टेशन पर बहुत-से स्वयंसेवक शरणार्थियों को लेने के लिए पहले से प्रतीक्षा में खड़े थे, उन्हें देखकर और भी बहुत-से लोग तमाशा देखने के विचार से इकट्ठे हो गये।

अचानक घंटी बजी और थोड़ी ही देर में गाड़ी प्लेटफार्म पर आ गयी। कुछ क्षण तो सब लोग साँस रोके यही सोचते हुए खड़े रह गये कि अब उन्हें क्या करना चाहिए। गाड़ी के अन्दर भी एक मौन निस्तब्धता थी और बाहर भी। फिर एकाएक किसी स्वयंसेवक ने ऊँची आवाज़ में पुकारा—'पाकिस्तान' जिसके उत्तर में सारे जनसमूह ने एक स्वर होकर नारा लगाया—'जिन्दाबाद'।

उस जनसमूह में जैसे पलक झपकते ही जीवन लौट आया। स्टेशन 'अल्लाहो अकबर' और 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारों से गूँज उठा, और सब लोग इन नारों के बीच गाड़ी के विभिन्न डब्बों की ओर बढ़े, परन्तु उनकी आशा के विरुद्ध गाड़ी में से किसीने भी उनके नारों का जवाब नहीं दिया।

जोश-भरे नौजवानों ने जोर से दर्वाजे खोले और अन्दर घुस गये। पर दूसरे ही क्षण वे घबराकर बाहर निकल आये, और लोगोंने देखा कि उनके जूते स्याह लहू में लिथड़े हुए थे।

बहुत-से डब्बों के अन्दर फर्श पर खून-ही-खून था, और उसमें कई शरणार्थी एक दूसरे के ऊपर गिरे पड़े थे। बहुत-से इसी तरह पड़े-पड़े मर चुके थे, कुछ ऐसे घायल भी थे, जिनके अंगों में किंचित् भी सामर्थ्य शेष न थी; परन्तु जिनके नेत्रों में शायद अभी दृष्टि बाकी थी। इनके अतिरिक्त कुछ लोग पहली सीटों पर बैठे अन्दर आनेवालों की ओर चुप-चाप देखे जा रहे थे। वे जीवित थे, परन्तु शायद उन्हें अभी इस बात

पर विश्वास नहीं हो रहा था। या वे इन लोगों को भी उन सिखों और हिंदुओं के साथी समझ रहे थे, जिन्होंने रास्ते में गाड़ी रोककर उनके डब्बों को मानवता के कीटाणुओं से साफ करने की चेष्टा की थी।

एक डब्बे की दीवार पर किसीने लहू से लिख दिया था— 'रावलपिंडी का जवाब', और उस डब्बे पर छाया हुआ मृत्यु-मौन जैसे एक डरावनी मूक भाषा में पुकार-पुकारकर कह रहा था कि इनको रोको—जो नोआखाली का जवाब बिहार में और बिहार का जवाब रावलपिंडी में देते हैं। भगवान् के लिए कोई उन्हें समझाओ...

उन लोगों को बड़ी मुश्किल से इस बात का विश्वास हुआ कि वे अब एक सुरक्षित स्थान पर पहुँच गये हैं। और यह विश्वास मानो अर्जुन का तीर था जिसके लगते ही उनके नेत्रों से अश्रु-धाराएँ फूट निकलीं। उनमें महसूस करने की शक्ति फिर से लौट आयी, तब उन्हें अपने घावों और चोटों का आभास हो आया, और वे रोने लगे। घायलों में एक गति-सी उत्पन्न हुई और वह इस आशा से जोर-जोर से कराहने लगे कि उन्हें पहले उतारा जायगा—परन्तु अब तक तो वहाँ उनकी सुध लेनेवाला कोई भी न रहा था।

सारे प्लेटफार्म पर केवल चार-पाँच स्वयंसेवक रह गये थे, जो शरणार्थियों की ओर ध्यान दे रहे थे, बाकी सब लोग इतने ही में न जाने कहाँ चले गये थे। अलबत्ता स्टेशन के विभिन्न भागों और बाहरवाले बरामदे की ओर से बहुत शोर सुनायी दे रहा था, बीच-बीच में नारों की आवाजें भी उस चीत्कार के ऊपर ही ऊपर गूँज जातीं।

किसीने उनकी गाड़ी के पास से गुजरते हुए उत्साहवर्द्धक ऊँचे स्वरों में शरणार्थियों को सुनाने के लिए कहा—"स्टेशन पर हिंदुओं का कत्ले-आम किया जा रहा है।" मगर घायल शरणार्थियों को जैसे इस सूचना में कोई दिलचस्पी न थी। उस समय तो उन्हें स्वयंसेवकों की

अपने पास आवश्यकता थी जो घायलों को बाहर निकालते और लाशें उठवाते।

स्वयंसेवकों की व्यर्थ प्रतीक्षा के बाद आखिर शरणार्थियों ने खुद ही चेष्टा करनी शुरू की। जो ठीक-ठाक थे, वह पहले ही घायलों और लाशों को रौंदते हुए बाहर निकल गये थे और उन तीन-चार स्वयंसेवकों को अपने घेरे में लेकर 'रिलीफ-कैम्प' इत्यादि के बारे में पूछ-ताछ कर रहे थे।

उधर घायलों ने ऊँचे स्वरों में मदद के लिए चिल्लाना शुरू कर दिया था। यों मालूम होता था कि हर कोई जल्दी-से-जल्दी उन खूनी डब्बों से बाहर निकलना चाहता था। चुनांचे कुछ घायलों ने रेंग-रेंगकर दर्वाजों में से अपने आपको बाहर लटकाकर प्लेटफार्म पर गिरा लिया। इतने में एक स्वयंसेवक सामने के कमरे से निकला। उसके हाथ में एक नंगा छुरा था, जिससे ताज़ा खून के कतरे टपक रहे थे। पास से गुजरा तो एक घायल ने, जिसकी दोनों टाँगें बेकार हो चुकी थीं, उसे मदद के लिए पुकारा। मगर वह यह कहता हुआ आगे बढ़ने लगा कि "थोड़ा-सा काम अभी बाकी है, वह करके अभी आया।"

घायल ने जल्दी से धरती पर लेटकर उसके आगे बढ़ते हुए पाँव दोनों हाथों से थाम लिये, और दया की भीख माँगती हुई-सी निगाहों से उसकी ओर देखते हुए कहा—"मगर हमारा काम कौन करेगा?"

स्वयंसेवक गुस्से में भरा हुआ रुक गया, उसने धिक्कार-भरी निगाहों से उसकी ओर देखकर कहा—"तो यह हम किसकी खिदमत कर रहे हैं, अपने बाप की?—अबतक सौ से ज़्यादा हिन्दू स्टेशन पर कत्ल किये जा चुके हैं और आपका मिज़ाज ही कहीं नहीं टिकता।"

घायल शरणार्थी की आँखों में आँसू आ गये—"यह तुम किसीकी खिदमत नहीं कर रहे मेरे भाई। बल्कि ऐसी कई और गाड़ियाँ भरने

का सामान कर रहे हो।" उसने उस गाड़ी की ओर संकेत किया जो उन्हें अमृतसर से लायी थी।

स्वयंसेवक ने झटककर अपनी टाँगें छुड़ा लीं—"कायर" उसने धिक्कारते हुए कहा—"कौमी जहाद से रोकते हो—डरपोक कहीं के।" और छुरेवाला हाथ झटकता हुआ तेजी से आगे बढ़ गया।

उसकी ठोकर से वह शरणार्थी धरती पर लेट गया। झूलते हुए छुरे से टपका हुआ किसी हिन्दू के रक्त का एक कतरा उसके गाल पर गरम-गरम आँसू की तरह गिरा, और वहाँ पहले से सूखे हुए मुसलमानी रक्त को फिर से ताजा करके उसमें कुछ इस प्रकार घुल गया कि यह जाँच सकना भी असम्भव हो गया कि उस बहती हुई खून की लकीर में मुसलमान का खून कितना है और हिन्दू का कितना.......

* * *

उस दिन बारह बजे से पहले-पहले रेलवे स्टेशन पर उस कौमी जहाद की खातिर चार सौ से अधिक हिन्दुओं को अपना रक्त भेंट करना पड़ा। और उसके बाद लाहौरवाले इतिहास के बड़े-से-बड़े कत्लेआम का रिकार्ड मात करने की सफल कोशिश में लगे रहे।

उन चार दिनों में वहाँ सूरज दिखायी नहीं दिया। शहर के कोने-कोने में भड़कती हुई आग के धुएँ से क्षितिज से क्षितिज तक सारा आकाश भर गया था। ऊपर की ओर देखने की कोशिश करते ही आँखों में जलता हुआ बूरा-सा पड़ने लगता। यहाँ तक कि इन गर्मियों में भी कोई आदमी रात को छत पर नहीं सो सकता था, क्योंकि सवेरा होते-होते वायुमण्डल में उड़ती हुई स्याह राख से बिस्तर भर जाता था।

पिछले छः महीनों से लाहौर में मरना भी बे-मजा हो गया था, क्योंकि रिलीफ़-ट्रक के बगैर लाश को भी सुरक्षित रूप में श्मशान घाट तक ले जाना सम्भव न था; और रिलीफ़ कमेटीवाले पेट्रोल की बचत को ध्यान में रखकर उस समय तक ट्रक न भेजते थे, जब तक दस-

पन्द्रह मुर्दे इकट्ठे न हो जायँ। मगर उन चार दिनों में तो श्मशान घाट में उत्सव की-सी हालत रही। हजारों लाशें बड़े-बड़े ढेरों के रूप में वहाँ बिखरी पड़ी थीं; और हर ढेर के ढेर को इकट्ठा जलाया जा रहा था। श्मशान-घाट की कुछ हज़ार मन लकड़ियाँ उनके लिए कम पड़ गयी थीं, चुनांचे खुद जलती हुई लाशों ही को एक दूसरी के लिए ईंधन का काम करना पड़ता। इसके बावजूद बहुत सी लाशों को अधजली हालत में राख के तोदों के साथ एक कोने में फेंक दिया जाता था।

इन चार दिनों में शहर की चारदीवारी के अन्दर हिन्दुओं का जैसे एक भी मकान आग से न बचा था। बल्कि कुछ मुहल्लों को तो आगे बढ़ते हुए मुसलमानों के पहुँचने से पहले वहाँ के हिन्दुओं ने हताश होकर स्वयं अपने ही हाथों से फूँक दिया।

आनन्द का [मुहल्ला भी १५ अगस्त को जला दिया गया। शाम होते ही एक सौ के करीब मुसलमान एक-एक करके उसी शम्सदीन के मकान में इकट्ठे हुए, और अन्धेरा होते ही वह लोग एकाएक मुहल्ले पर टूट पड़े। शम्सदीन सबके आगे था, बल्कि आनन्द के मकान पर उसने अपने हाथों से पेट्रोल छिड़ककर आग लगायी।

लाला बनवारीलाल ने अपने मकान का पिछला दर्वाज़ा खोलकर दूसरी गली में जाने की कोशिश की, मगर उस गली वालों ने मुसलमानों के आने का शोर सुनते ही उसके दर्वाजे को बाहर से कुंडी लगा दी थी, ताकि मुसलमान उस रास्ते उनकी ओर न आ सकें। बनवारीलाल के बार-बार पुकारने पर उधर से किसी सितम-ज़रीफ़ ने केवल इतना उत्तर दिया कि—"लालाजी, इस समय कर्फ्यू लगा हुआ है। इस तरह एक गली से दूसरी गली में जाना कानून के विरुद्ध है।" लेकिन यह बात कहनेवाले को इस बात का पता न था कि खुद उनकी गली में भी मुसलमानों का एक बहुत बड़ा हथियारबन्द जत्था दूसरी ओर से प्रवेश कर चुका था।

इसके बाद किसीको दूसरे का पता न रहा। कौन-कौन आग में जल गया, किस-किसने लड़ते हुए जान दी, कुँओं में कौन-कौन गिरा, कौन सहायता के लिये किसे पुकारता रहा, किसीको यह जानने का अवकाश न था। यहाँ तक कि जो लोग भाग रहे थे, उन्हें यह भी पता न था कि इस समय वह किस स्थान पर हैं—अपनी गली में, या किसी दूसरे कूचे में या किसी बाजार में! उस समय शक्ल सूरत से हर जगह एक-सी थी, गिरते हुए मकानों के जलते हुए मलबे ने धरती पर हर रास्ता रोक रखा था और धरती से ऊपर तो केवल आग ही आग थी, हर दिशा में, हर जगह।

आनन्द चारों ओर किसीको ढूँढ़ रहा था। इस एक-स्वर चीत्कार के दर्म्यान वह एक स्वर विशेष सुनने के लिए इधर से उधर भागते हुए लोगों से टकराता फिर रहा था; और उसे कुछ पता न था कि वह कहाँ पहुँच गया है। एक रोता हुआ बालक उसने कहीं से उठा लिया था, और उसे गोद में उठाये उठाये वह इधर से उधर किसीको ढूँढ़ता हुआ भटकता रहा...

फिर अचानक गोलियाँ चलने की आवाज आने लगी, और फिर "रुक जाओ, रुक जाओ—"की आवाजें; जिन्हें सुनकर सब लोग ठिठक गये। बाद में उसे पता चला कि वह शाहालमी के बड़े बाजार में थे, और मुसलमानों का एक बहुत बड़ा जत्था अस्त्र-शस्त्र संभाले उनके ठीक सामने पहुँच चुका था; और करीब था कि इस प्रकार बेतहाशा भागते हुए वे सब लोग सहज में उस जत्थे का शिकार बन जाते, कि डोगरा रेजमेंट की एक गारद ने मौके पर पहुँचकर उन आक्रमणकारियों पर गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं।

फिर वही गारद उन सबको सुरक्षित रूप से एक रिलीफ़ कैम्प तक छोड़ गयी। इसी कैम्प में पहुँचकर उसे पता चला कि उनके महल्ले के डेढ़ सौ व्यक्तियों में से कुल बीस व्यक्ति बचकर यहाँ पहुँचे थे,

एक मासूम-सा प्रश्न उसकी निर्मल झीलों की-सी नीली आँखों की गह-राइयों में तैरता हुआ दिखाई दे रहा था। वह प्रश्न शायद और किसी भी भाषा के शब्दों में इस शुद्ध व्यथा के साथ उच्चारण न किया जा सकता था, जिस भाँति उसकी मूर्खता और वह अकथनीय खामोशी उसे बयान कर रही थी। सेठ किशोरलाल की गोदी में बैठा हुआ वह बालक उस प्रश्नसूचक दृष्टि से हर व्यक्ति के मुख की ओर बारी-बारी देख रहा था ; और जब वह देखते-देखते थक गया, और किसी ने उसके उस मूक प्रश्न का उत्तर न दिया, तो आँसुओं के दो कतरे उसके गालों पर लुढ़क आये। आनन्द को एकाएक ही किसी का यह पद याद आ गया कि 'इन आँसुओं के सितारे बनाए जायँगे।' और वह सोचने लगा कि यदि सितारे इसी भाँति बनाए गये हैं, तो उन्हें बनानेवाले की बेदाद सचमुच ही सराहना योग्य है। बालक के हाथ में कटी हुई काँस का बना हुआ एक दो पैसे वाला बीन बाजा अभी तक पड़ा हुआ था।

लाला बनवारीलाल के यहाँ से कोई न बचा था। स्वयं उनका क्या हुआ, यह किसी को पता न था ; परन्तु उनके घर की स्त्रियों ने मुहल्ले की कई और स्त्रियों के साथ कुएँ में छलाँग मारकर अपनी लाज बचा ली थी। ठीक उस समय कमलिनी अपनी माँ की चीखों और आवाजों के बावजूद गली के बाहर वाले भाग की ओर भाग गयी थी, जहाँ सेठ किशोर लाल का मकान था। और तत्पश्चात उसी बूढ़े ने एक लपकती हुई ज्वाला के प्रचंड प्रकाश में कमलिनी और प्रदुम्न को कुएँ की मुँडेर पर एक दूसरे की छाती से चिमटा हुआ देखा था ; और उसके बाद एक 'छप' सी आवाज आयी थी। वह निश्चय से नहीं कह सकता था कि उन्होंने कुएँ में छलाँग लगायी थी या कोई जलती हुई छत उन पर आ गिरी थी।

दो सच्चे प्रेमियों की याद और उनके सम्मान में आनन्द का सिर झुक गया। उसे संसार से सच्चे प्रेम के इस प्रकार चले जाने का बहुत

दुख हुआ। परन्तु उसके साथ ही उन पर ईर्ष्या भी होने लगी। काश वह भी इसी भाँति किसी के कलेजे से लगे-लगे जल जाता, और इस जीवन भर के विरह और हीनता की जलन से छूट जाता। परन्तु उस समय भी उसकी मजबूरियों की यह दशा थी कि वह ऊषा के बारे में कुछ जानने के लिये तड़प रहा था, परन्तु सेठ किशोरलाल तो क्या किसी दूसरे के सामने भी वह उसका नाम अपनी जबान पर न ला सकता था कि कहीं उसके परिणामस्वरूप उनके उस सम्बन्ध की शुद्धता पर, उसकी महानता पर कोई बुरा असर न पड़े, या उस निर्दोष की इज्जत पर कोई हरफ आये। यह वह किसी भी कीमत पर बर्दाश्त न कर सकता था। विशेषतया इस समय जबकि उसका चंचल मन बार-बार उसे कह रहा था—"जानता हूँ कि ऊषा भी उस आग में..." और हर बार वह अपने दिल के मुँह पर हाथ रखकर उसे यह वाक्य पूरा करने से रोक रहा था।

वह शरणार्थियों के उस झुरमुट में हरेक को खामोशी से देखता फिर रहा था, परन्तु यदि कोई उस प्रकट मौन के पर्दे चीर कर, उसकी आत्मा की खिड़कियाँ खोलकर अन्दर झाँक सकता, तो देखता कि वहाँ महाप्रलय के चीत्कार से भी ऊँचे-स्वरों में कोई केवल एक नाम को पुकार रहा था, और वह नाम था ऊषा—ऊषा—ऊषा...

उसके ठीक सामने सेठ किशोरलाल उस बालक को उसी प्रकार गोद में लिये बैठे थे। बालक अपनी बीन को दोनों हाथों से थामे-थामे सो गया था। सेठजी खामोशी से अन्धकार की ओर देख रहे थे। वह आरंभ से ही इसी भाँति खामोश बैठे थे, और उनके इस मौन से आनन्द को डर लग रहा था। इस रहस्यपूर्ण मौन में उसे कई आतंक छिपे हुए दिखाई देने लगे, जिन्हें देख-देखकर उसका मन अपना अधूरा वाक्य पूरा करने की कोशिश और भी जोर से करने लगा यहाँ तक बचने की और कोई विधि न देखकर उसने प्रतिक्षण डूबती हुई एक अप्रत्यक्ष-सी आशा का सहारा लेकर उनसे पूछ ही लिया—

"सेठजी, आपने कुछ नहीं सुनाया कि क्या कुछ देखा।"

किशोरलाल ने एक चेतनाहीन-से व्यक्ति की भाँति उसकी ओर ठण्ढी-सी निगाहों से देखा और एक अपरिचित-से स्वर में कहने लगा—"मैंने जो कुछ देखा है, उसके बाद अब मुझे और कुछ भी दिखायी नहीं देता। कितना अन्धकार है यहाँ।" और फिर जैसे एक बार जिह्वा खुलते ही उसके सारे बन्धन टूट गये और वह किसीके सुनने या न सुनने से लापर्वाह-सा, स्वप्न में बोलनेवाले मनुष्य की भाँति आप ही आप कहता चला गया—"यहाँ अन्धेरा ही अन्धेरा है। वहाँ कितना प्रकाश था। उफ वह प्रकाश—जब मैं तिजोरीसे जेवर, और नोट निकाल रहा था तो यों मालूम होता था जैसे कोई डाकू हजारों रोशनियाँ लिये बिलकुल मेरे सिर पर खड़ा है, इतनी रोशनी थी कि मैं उन नोटों को कहीं भी छिपा न सकता था। नीचे से ऊषा और उसकी माँ सहायता के लिए पुकार रही थीं, परन्तु मुझे तो नोटों को छिपाना भी मुश्किल हो रहा था। कई बार कई तरीके किये, परन्तु तसल्ली न हुई।" वह अज्ञात रूप में छाती के पास कपड़ों के अन्दर कुछ टटोलता भी जा रहा था—"आखिर मैंने एक पटके की सहायता से उन्हें अपने शरीर के साथ बाँधना शुरू कर दिया। परन्तु अभी सारी गड्डियाँ सँभाल न पाया था कि निचला दर्वाजा टूटने की आवाज आयी। मैंने जल्दी से अपनी खिड़की में से झाँककर देखा कि एक भीड़ दर्वाजा तोड़कर हमारे अन्दर दाखिल हो रही है, मैंने यह भी देखा कि जो लोग भाग रहे थे उनको दो-चार मुसलमान टाँगों और बाँहों से पकड़ कर जोर से झुलाते हुए आग में फेंक देते। एक दो छोटे-छोटे बालकों को उन्होंने अपने भालों पर टाँग लिया था और उन्हें वह विजय-पताकाओं की तरह उठाये फिर रहे थे।"

"तो फिर ऊषा और उसकी माँ—?" आनन्द ने कुछ इस प्रकार घबराकर पूछा कि उसे उचित-अनुचित का ध्यान तक न रहा।

"उस समय मुझे इतनी फुर्सत ही कहाँ थी, कि मैं उनको ढूँढ़ता

फिरता। हजार जल्दी करने पर भी नोटों की कुछ गड्डियाँ वहीं रह गयीं; और मैं, जो कुछ हो सका, उसीको सँभालकर एक पिछले दर्वाजे से निकल गया। भगवान जाने ऊषा और उसकी माँ का क्या बना..." उसने अपनी हथेलियों से आँखों को मलना शुरू कर दिया।

"सेठजी, आप आँखें क्यों भरते हैं, आप भी मजबूर थे। उस समय एक ही चीज तो बचा सकते थे आप। और फिर रुपया भी तो नहीं छोड़ा जा सकता!"

"हाँ बेटा, तुम तो खुद सयाने हो। आखिर रुपया किस तरह छोड़ा जा सकता था।" उन्होंने सूखी आँखों को मलना छोड़ दिया और अपना हमदर्द पाकर उसे अपना राजदार बनाते हुए कहने लगे—"तुम्हीं सोचो, यह सारा प्रपञ्च आखिर रुपये ही से तो है। जेब ठोस हो तो पत्नियों की क्या कमी है। अब तुम्हीं बताओ, मैंने कौन सा पाप किया है।" वह साथ-ही-साथ अपने अन्तःकरण से भी तर्क कर रहे थे।

आनन्द वह आखिरी बात करके चुप हो गया था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। जैसे वह कुछ सुन ही नहीं रहा था। उसने अब तक अपने दिल को भी जो वाक्य पूरा न करने दिया था, वह सेठ किशोरलाल ने किस आसानी से कह दिया था। सेठजी के कठोर स्वरों में भावों की लचक केवल उस समय आयी थी जब उन्होंने उन नोटों का वर्णन किया जो मजबूरी हालत में वहीं रह गये थे।

दूर से शहर में आग की रोशनी दिखायी दे रही थी और आनन्द की दृष्टि उसी ओर जम गयी थी। वहाँ क्या कुछ जल रहा था। वहाँ जीवित मानव जल रहे थे और उनके साथ ही मृत मानवता भी। वहाँ सेठ किशोरलाल के नोट जल रहे थे और आनन्द का प्रेम—सब कुछ जल रहा था, और आनन्द सेठ किशोरलाल के पास बैठा हुआ दूर से तमाशा देख रहा था। वह सोचने लगा कि इस हालत में सेठ और उसमें क्या अन्तर रह गया है?

"मेरा विचार है कि प्रातः मुँह-अँधेरे ही हम रेसकोर्स रोड तक पहुँचने का प्रयत्न करें। वहाँ राय बहादुर गंगासिंह की कोठी है। सिविल लाइन्स निश्चय ही सुरक्षित जगह होगी। आपका क्या खयाल है?"

आनन्द ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। वह सेठ के एक-एक शब्द का अर्थ अच्छी तरह जानता था। वह समझ सकता था कि यह व्यक्ति उसे वहाँ तक केवल अपनी और अपने धन की रक्षा के विचार से अपने साथ ले जाना चाहता है, नहीं तो राय बहादुर की कोठी में आनंद-जैसों के लिए जगह कहाँ। और उसका अनुमान ठीक निकला। मौन की ओर ध्यान दिये बिना ही सेठ किशोरलाल ने थोड़ी देर बाद फिर बात छेड़ी—

"मेरे विचार में तो आप भी जरूर चलें। सम्भव है कि आपके लिए भी वहाँ स्थान हो जाय। और यदि न हो, तो भी सिविल लाइन्स से यहाँ तक आने में कोई खतरा नहीं।"

आनन्द ने सोये हुए बालक के हाथ से वह कांस की बीन झपटकर छीन ली और उसे विस्मयान्वित सेठ के हाथ में पकड़ाते हुए बोला—
"आप यह बीन क्यों नहीं बजाते सेठजी?"

इतिहास के अक्षर-बोध से भी अनभिज्ञ सेठ नीरो से अपनी इस तुलना के व्यंग्य को न समझ सका और केवल विस्मय से उसकी ओर देखता रह गया।

परन्तु आनन्द यह कहते ही जल्दी से उठा और एक ओर को चल दिया...

और फिर चलता ही गया। यहाँ तक वह फिर अपने मुहल्ले में वापस पहुँच गया।

— —

पाँचवा परिच्छेद

प्रातःकाल निकट था, और मुहल्ले के हर मकान से गाढ़ा धुआँ निर्धन की आह की तरह आसमान की ओर जा रहा था। करीब करीब सब मकान गिर चुके थे, फिर भी कहीं-कहीं किसी अधजली छत की किसी कड़ी से चिमटे हुए कुछ नन्हें-नन्हें अंगार उसके लहू की आखिरी बूँदें चूसने में लगे हुए थे।

ताप से आनन्द का शरीर झुलस गया था, और उत्तप्त ईंटों पर से गुजरते हुए उसके पैरों के तलवे ज़ख्मी हो गये थे। उसके बावजूद वह वह गरम-गरम मलवे के ढेरों पर से गुजरता हुआ आगे बढ़ता गया। वह वहाँ जाना चाहता था जहाँ उसकी मुहब्बत ने आखरी साँस लिये थे, जहाँ सौंदर्य किसी प्रेम-पगे परवाने की भाँति जीवित जलकर एक नयी परिधि, एक नयी प्रणय-परंपरा की रचना कर गया था। वह अपने ताजमहल के खँडहर देखना चाहता था; और उस आग में झुलस जाने-वाली एक निर्दोष आत्मा को अपने आँसुओं से कुछ ठण्ढक पहुँचाना चाहता था...

कुछ स्थानों से अधजले मांस की बदबू आ रही थी, परन्तु अन्धकार और धुएँ के कारण कोई लाश दिखायी न दे रही थी। न कोई जीवित स्वर ही किसी ओर से सुनायी दे रहा था—सब मर गये थे, या राख हो चुके थे। केवल एक जगह आनन्द का पैर किसी कोमल-से कीचड़ में पड़ा तो हल्की-सी 'च्याउँ' की एक वेदनापूर्ण आवाज उस भयानक शब्द-हीनता को तीर की तरह चीरती हुई निकल गयी, उसने तपी हुई ईंटों के मद्धम-से प्रकाश में ध्यान से देखा, तो वह उनकी गली का संरक्षक

कुत्ता था। आग से उसकी खाल बिलकुल जल चुकी थी; और अब वह रह गया था केवल पिल्पिली-सी चर्बी का एक ढेर मात्र, जिसमें बद-किस्मती से अभी प्राण बाकी थे।

उसने सोचा कि इस हालत में उसके जीवन से मृत्यु कितनी अधिक सुन्दर हो सकती है। परन्तु उसे अपने हाथों मार डालना भी तो उसकी ताकत में न था। उसमें एक कुत्ते का वध करने की भी शक्ति न थी। कुछ देर के लिए तो उसे उन लोगों के साहस पर ईर्ष्या-सी होने लगी, जो इन्सान को भी बड़ी आसानी से काट फेंकते हैं। और उसे यों महसूस हुआ जैसे जीवन एक निरंतर यातना, एक अनन्त वेदना ही का नाम हो, जिसका इलाज केवल उसका वध करने से ही हो सकता है...

कुत्ता एक ही 'च्याउँ' करके चुप हो गया था। और अब वह चर्बी का ढेर कुछ इस तरह बल खा रहा था, जैसे कोई अंतःस्तल को चीरती जाती वेदना के मारे अपने शरीर को मरोड़ रहा हो। आनन्द ने अपने ताजमहल के खँडहरों पर बहाने के लिए जो आँसू अब तक सँभाल रखे थे, वे उस कुत्ते की इस दर्दनाक हालत पर बह निकले; और वह कुछ इस प्रकार रोया कि अन्त में जब वह अपने उस प्रणय-तीर्थ पर पहुँचा, तो वह एक बरसी हुई बदली की भाँति बिलकुल लुट चुका था।

सेठ किशोरलाल की आलीशान बिल्डिंग की जगह अधजले मलवे का एक ढेर रह गया था, जिसमें से धुआँ निकल रहा था। सबसे निचली मंजिल की तमाम छतें गिर चुकी थीं, परन्तु चार-पाँच फुट ऊँची दीवारें अभी खड़ी थीं, जिनसे यह पता चल सकता था कि यहाँ उनकी बैठक थी, यहाँ आँगन था या ड्योढ़ी। हाँ, केवल ड्योढ़ी की छत बाकी रह गयी थी। परन्तु उस पर भी इतना मलबा गिरा हुआ था, कि हर घड़ी उसके गिर जाने की आशंका थी।

आनन्द उस जलते हुए ढेर में घुस गया और अभी तक जलती हुई शहतीरों के ऊपर से फाँदता हुआ इधर से उधर फिरने लगा, वह स्वयं

नहीं जानता था कि उसे किस विशेष स्थान की तलाश है। एक निराशा के सहारे वह इस अन्धकार में, जिसे कुछ सुलगते हुए अंगारों ने और भी गूढ़ कर दिया था, इधर-से-उधर फिरता रहा...

...वह कहाँ था? या कम-से-कम उसकी राख कहाँ थी? वह शायद यही जानना चाहता था। उसने मलवे के एक ढेर से कुछ ईंटों को हटाने की कोशिश की, मगर उसके हाथ जल गये और वह ढेर फिर भी उतना ही बड़ा रहा!

अन्त में वह उस ड्योढ़ी के अन्दर चला गया। उसमें ऊपर जानेवाली सीढ़ियों में से तीन-चार सीढ़ियाँ अभी बाकी थीं। वह उन पर भी चढ़ गया। उसका दिमाग धुँधलाया हुआ-सा था।

उसे क्या कहना है, इसका कोई सुलझा हुआ चित्र उसके सामने न आ रहा था। यहाँ तक कि वह इसी क्या करूँ क्या न करूँ की उलझी हुई-सी अवस्था में आखिरी सीढ़ी पर जाकर बैठ गया।

सामने वही ड्योढ़ी थी जिसका बड़ा दर्वाजा मुसलमानों ने तोड़ दिया था। यही वह मज़बूत द्वार था जो सदा आनन्द और ऊषा के दर्मियान एक अटल बाधा की तरह खड़ा रहा। यह द्वार उस पर हमेशा बन्द रखने की कोशिश की जाती रही थी, पूँजीवाद का वही द्वार, जिसे वह सबके सामने खुले बन्दों एक बार भी न खोल सका था, आज टूटा पड़ा था; और उसे अन्दर आने से रोकने वाला कोई न था। पर वह बसत-प्रभा आज कहाँ थी? काश आज वह...

और उसे आग से भरे हुए उन खण्डहरों के बीच बैठे हुए वह लम्बी घड़ियाँ याद आ गयीं, जो उसने शीतकाल की एक अन्धकारमयी रात्रि में इसी ड्योढ़ी में बैठकर ऊषा की प्रतीक्षा करते-करते बिता दी थी। वह धक-धक करते हुए क्षण, जिनमें तीखे काँटों की एक निरन्तर चुभन-सी छिपी हुई थी; परन्तु जिनमें उस चुभन के बावजूद एक रस था। आज न वह चुभन थी और न आशा का वह जीवन-रस।

उस रात दो बार किवाड़ खुलने का खटका हुआ था और उसने ऊपर की मंजिल पर किसीके पैरों की आहट सुनी थी, जिनके नपे-तुले अंदाज को वह अच्छी तरह पहचानता था। परन्तु दोनों बार किसीके जाग जाने से ऊषा को वापस अपने कमरे में लौट जाना पड़ा था। चुनांचे उस रात प्रातःकाल के करीब उसे निष्फल ही चले आना पड़ा था। परन्तु उस निष्फलता में निराशा न थी, बल्कि भविष्य में बेहतर मौके मिलने की आशा ने पूर्व में एक स्वर्ण-दीप जला रखा था, जिसका आलोक प्रतिक्षण बढ़ता ही जा रहा था।

उस रात भोर के मंद से आलोक को जब उसने निशा की श्यामल केश-राशि पर यों आरूढ़ होते देखा था तो उसे विश्वास हो गया था कि आह को केवल एक रात चाहिये असर होने तक......परंतु आज वह विश्वास कहाँ था। वह असर कहाँ था?

आज उसने उन अंगारों के मन्द प्रकाश में देखा कि वह एक रात जिसमें आह को स्वयं असर बन जाना था, वह अन्धकारमयी रात उसके जीवन से कहीं अधिक दीर्घायु है। उस शारद-रात्रि में आशामयी प्रतीक्षा की उष्णता थी, परन्तु आज इस अग्नि-नृत्य ने उस अव्यक्त उष्णता को बिलकुल ठण्ढा कर दिया था। काश यह ज्वाला उस सौंदर्य्य-दीप को यों ठण्ढा न कर देती! फिर चाहे उसे जीवन-भर केवल प्रतीक्षा ही करनी पड़ती, परन्तु उसमें एक उम्मीद की गरमी तो होती। प्रतीक्षा के उन तीखे काँटों की चुभन में जो रस था, उससे तो वह यों वञ्चित न रह जाता। काश...

और वह अपनी प्रणय-चिता पर बैठा उस दीप-शिखा को ढूँढ़ने की कोशिश करता रहा, जिसे जलने की भी स्वतंत्रता न दी गयी थी। वह सोचने लगा कि जब हजारों मकान और उनमें बसनेवाले मानव और उनकी मानवता—इस सबको जलने की स्वतंत्रता है तो फिर उस एक नन्हे-से दीप को भी क्यों न जलते रहने दिया गया...

* * *

अचानक उसके कानों में बाहर से किसीके रोने की आवाज़ आयी। कोई सिसकियाँ ले रहा था। और न जाने किसे पुकार रहा था।

आनंद तेजी से बाहर की ओर लपका।

उसने बाहर आकर देखा कि लम्बी दाढ़ी वाला एक आदमी आसमान की ओर हाथ उठाये कुछ कह रहा है। आनंद धीरे-धीरे उसके पास तक पहुँचा तो उसने देखा कि उसकी आँखें बंद हैं, परन्तु अश्रु-द्वार खुले हैं, दो नदियाँ थीं जो उसके नेत्रों से फूटकर श्वेत वर्ण दाढ़ी की जड़ों में खो रही थीं। आँसुओं के कुछ बिंदु मोतियों के दानों की तरह दाढ़ी पर से लुढ़कते जा रहे थे। उसे जो कुछ कहना था, शायद कह चुका था और अब वह बिल्कुल खामोश हो गया था। इसी बीच में उसका सिर झुककर छाती से लग गया था।

'क्या तुम्हारा भी कोई मर गया है बाबा?' आनंद ने कुछ देर उसकी ओर देखते रहने के बाद पूछा।

उसने धीरे-धीरे आँखें खोलीं। उसकी निगाहें आँसुओं के बीच में से तैरती हुई आनंद तक एक बार पहुँचीं; और फिर वापस उन्हीं गहराइयों में गोता मार गयीं। यहाँ तक कि फिर से उन आँखों में आँसुओं के उबलते हुए सोतों के सिवा कुछ न रहा।

"यही मालूम होता है कि अल्लाह के सिवा बाकी सब मर गये हैं।" उसका स्वर भर्राया हुआ था।

"फिर भी तुम मुझसे बेहतर हो कि उन मरनेवालों के लिए रो तो रहे हो।" आनंद ने पास ही जलती हुई एक शहतीर की ओर तापने के लिए हाथ बढ़ाकर कहा—"अच्छा यह बताओ कि मैं रो भी क्यों नहीं सकता?"

बूढ़े ने उत्तर दिया, 'मैं उन मरनेवालों के लिए नहीं रोता, बल्कि उन्हें मारनेवालों के लिए रोता हूँ, जिन्होने हिन्दुओं को इस तरह कत्ल करके इस्लाम को खतरे में डाल दिया है। मुझे इस आग में अपने मजहब

की रूह जलती हुई दिखायी दे रही है। काश यह दीवाने जान सकते कि वह क्या कर रहे हैं।"

बूढ़े की बात अभी पूरी न हुई थी कि अचानक बाहर से एक शोर उठा। कुछ आदमी जोशीले नारे लगाते हुए इसी ओर आ रहे थे। बूढ़े ने फौरन आगे बढ़कर आनंद के कंधों को झंझोड़ते हुए उससे पूछा—

"तुम हिंदू हो?"

"हाँ" आनंद ने चौंककर उत्तर दिया।

"तो फौरन उसकी ड्योढ़ी में जाकर छिप जाओ—" उसने किशोरलाल की ड्योढ़ी की ओर इशारा करते हुए कहा।

"लेकिन उस ड्योढ़ी में तो अब मेरे लिए कुछ नहीं रहा। मैं यहीं अच्छा हूँ।" और फिर आनंद भावहीन-सा उसी तरह आग तापने लगा।

बूढ़े ने आगे बढ़कर उसे बाजू से पकड़ लिया, और उसे करीब-करीब घसीटता हुआ उस ड्योढ़ी की ओर ले गया।

"बेवकूफ मत बनो। यह कीमती जान यूँ गँवाने के लिए नहीं है।"

आनंद ने हँस दिया, "शायद मेरी जान कीमती ही हो, परंतु मैं अब इसे मृत्यु के बदले बेच सकता हूँ बड़े मियाँ!"

बूढ़ा ड्योढ़ी तक पहुँचते-पहुँचते हाँफ गया था। उसने आनंद को एक ओट में खड़ा करते हुए कहा—"तुम नहीं जानते कि खुदा ने तुम्हें किस काम के लिए मेरे पास भेजा है।" और फिर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह बाहर निकल आया। निकलते हुए आनंद ने उसे अपने चुगे के अंदर से एक चमकता हुआ छुरा निकालते देखा; और वह कई प्रकार के शक मन में लिये वहाँ खड़ा रहा।

कुछ ही क्षणों में कोई बीस-पचीस नौजवान वहाँ पहुँच गये। बूढ़े के पास पहुँचते ही एक आवाज़ आयी—"कहो मौलाना, क्या सब कुछ ठीक तरह से जल गया?"

"हाँ बेटा, बिल्कुल जल गया।" मौलाना के स्वर में बड़ी स्थिरता थी।

"कोई काफ़िर इधर-उधर छिपा हुआ तो नहीं है ?"

"यही तो मैं देखता फिर रहा हूँ, लेकिन हाय री बदकिस्मती, कि मेरा खञ्जर अभी तक सफेद है।"

फिर टोली में से किसीने पुकारा—"बूढ़े मौलाना—" और बाकी सबने एक ज़ोरदार नारा लगाया—"जिंदाबाद।"

वह लोग जा रहे थे कि मौलाना ने पीछे से आवाज़ दी—"अगर कोई दिखायी भी दिया तो इस आग में शायद उसके पास न जा सकूँ, इसलिए एक नेज़ा मुझे भी देते जाओ।"

इसके उत्तर में फौरन दो-तीन नौजवानों ने अपने-अपने भाले सामने कर दिये; और मौलाना ने उनमें से सबसे जोशीले लड़के का भाला ले लिया।

फिर "बूढ़े मौलाना—जिन्दाबाद" का एक और नारा गूँजा और वह लोग आगे निकल गये।

आनंद जब बाहर निकला तो मौलाना उस भाले को तोड़कर एक जलते हुए मकान में फेंक रहे थे। उसके बाद उन्होंने आसमान की ओर भरे हुए नेत्रों से देखते हुए कहा—"तेरी ताकत में तो यह भी है कि तू पाप के उन सब हथियारों को इसी तरह जला दे, फिर भी तू क्यों खामोश है ?"

आनंद को देखते ही उन्होंने अपनी आँखें पोंछ डालीं और उसका बाजू थामकर कुछ भी कहे बिना उसे अपने साथ सामने वाली मस्जिद में ले गये; और वहाँ उसे एक टाट पर बिठाकर स्वयं अंदर चले गये।

थोड़ी देर बाद जब वह एक गठड़ी-सी उठाये बाहर निकले तो उन्होंने आनंद को अपने आप ही हँसते देखा।

"तुम इस तरह किस बात पर हँस रहे हो ?" उन्होंने विस्मित-सा होकर पूछा।

"आपकी उस भाले वाली हरकत पर", आनंद ने व्यंग्य के स्वर में

कहा, "क्या आप यह समझते हैं कि साफ झूठ बोलकर पाये हुए उस एक भाले को जलाकर आपने पाप की ताक़तों को कमज़ोर कर दिया है?"

"देखने में तुम्हारा एतराज़ ठीक है।" मौलाना ने बड़ी शांति से उत्तर दिया। "लेकिन मेरे अज़ीज़—याद रखो कि नेकी को कभी कमजोर या तुच्छ नहीं समझना चाहिए। नेकी का मामूली से मामूली काम भी निष्फल नहीं होता ; बल्कि क़ुरान शरीफ़ में तो यहाँ तक कहा है कि जिसने एक जिंदगी को बचाया, वह ऐसा ही है जैसे उसने सारी दुनिया की जिंदगी को बचाया।"

"यह मुसलमानों के लिए सच होगा मौलाना, क्योंकि मैंने तो सुना है कि आपके यहाँ हिन्दुओं को मारना जहाद समझा जाता है।"

"यह उन लोगों की भूल है जो मज़हब को पूरी तरह नहीं समझते। यहाँ तक कि एक हदीस में तो रसूले-करीम ने खुले तौर पर कहा है कि अगर कोई मुसलमान किसी बेगुनाह नामुस्लिम का खून करेगा तो क़यामत के दिन मैं उस बेगुनाह का साथ दूँगा और क़ातिल के खिलाफ़ गवाही दूँगा।"

अचानक एक कोने में पड़े हुए टाइम-पीस का अलारम ज़ोर से बज उठा। मौलाना बात अधूरी छोड़कर उठ खड़े हुए। अलारम को बन्द किया और बाहर आकर जल्दी से हाथ-मुँह धोकर मस्जिद के छोटे-से 'मिंबर' पर चढ़ गये और अज़ान देने लगे—

"अश्हदुन् ला इलाह-इल्लिल्लाह..."

उनकी आवाज़ कितनी मीठी थी। आनद को जीवन में पहली बार स्वर के जादू का आभास हुआ। वह इन शब्दों के अर्थ नहीं समझ सका, और न उसने इसकी कुछ आवश्यकता ही महसूस की। उस स्वर में कुछ इस प्रकार की निष्कपटता के भाव छिपे हुए थे कि उसीसे उन शब्दों के भावार्थ का पता चल रहा था।

वह उस स्वर-मोहिनी के जादू में खोया हुआ चुपचाप सुनता रहा।

यहाँ तक कि "या अल-उल्फ़लाह" के दोबारा उच्चारण के बाद मौलाना मुँह पर हाथ फेरते हुए जल्दी से निकले; और आते ही आनंद से कहने लगे—

"अब हमारे पास वक्त बहुत कम रह गया है। अभी कोई नमाज़ पढ़नेवाला आता होगा, चुनांचे तुम जल्दी से उस गठड़ी में से एक शलवार निकालकर पहन लो, और मेरे साथ चलो।"

"लेकिन..."

"लेकिन-वेकिन का वक्त नहीं है मेरे अज़ीज़! तीन मासूमों की जान से भी प्यारी चीज़ खतरे में है।" मौलाना ने आनद को बोलने तक का मौका न दिया।

जब तक आनन्द ने शलवार पहनी, मौलाना मेहराब के एक ताकचे से कपड़े में लिपटी हुई कोई वस्तु उठा लाये।

* * *

बाहर निकलते ही उन्हें पुलिस का एक छोटा-सा दस्ता एक व्यक्ति को गिरफ्तार करके ले जाता हुआ मिला। एक सिपाही ने मौलाना को सलाम किया, और उनके पूछने पर उसने बताया कि इसके पास से एक भरा हुआ रिवाल्वर निकला था।

पुलिस वाले आगे चले गये, परन्तु आनंद के पैर तो जैसे वहीं जम गये। उसे यों महसूस हुआ जैसे कोई बिजली उसके सारे शरीर को सनसना गयी हो। मौलाना ने पूछा—"क्या हुआ?"

"यह व्यक्ति एक दिन मुझे संसार का सबसे बड़ा अहिंसावादी दिखायी दिया था, जिसने घुप अन्धेरे में मुझे रोशनी का एक रास्ता दिखाया था। लेकिन आज यह भी...मुझे विश्वास नहीं होता!"

मौलाना ने उसके कन्धे पर हल्का-सा हाथ रखा, और उसे धीरे-धीरे चलाते हुए बड़ी गम्भीर आवाज में कहने लगे—"इस खूनी ड्रामे की सबसे बड़ी ट्रेजेडी यही है मेरे अज़ीज़, कि वह मल्लाह जो कभी हजारों लोगों

को नदी पार करा दिया करते थे, आज न सिर्फ इस तूफान में खुद भटक गये हैं बल्कि गुनाह की इन तूफानी लहरों के आगे बढ़ने के लिए रास्ता भी वही बना रहे हैं—और यही सबसे बड़ी ट्रेजेडी है।" उनकी आवाज़ में इतनी गहरी वेदना थी कि आनंद को यों महसूस हुआ, जैसे वह मौलाना किसी दुःखांत नाटक का वह नायक हो जिसके सारे साथी मर गये हों, मगर जिसे खुद चाहने पर भी मृत्यु न आयी हो।

सुलगती हुई आग और सिसकते हुए मकानों में से गुज़रते हुए उन्हें पूर्व में बढ़ते आलोक का ठीक-ठीक अनुमान न हो रहा था। फिर भी अभी किसी व्यक्ति को थोड़ी दूरी से भी पहचान लेना कठिन था। परन्तु फिर भी मौलाना की गति और घबराहट बढ़ती हुई रोशनी के साथ-साथ बढ़ती जा रही थी।

* * *

आनंद को इस बात की कुछ भी सुध न रही कि उस रहस्यपूर्ण-सी मुहिम पर जाते हुए वह क्या कुछ सोचता आया था, कौन-कौन-से विचार उसके मस्तिष्क में चक्कर लगा रहे थे। वह कोशिश करके भी उन्हें फिर से याद न कर सकता था। उसके स्मृति-पट पर तो केवल वही एक क्षण अंकित होकर रह गया था, जब उसे ऐसा महसूस हुआ था जैसे मेघ-रहित नीले आसमान में ही बिजली का एक कौंधा कहीं से लपककर गिरा हो और फिर सारा वायु-मण्डल एक गिरते हुए पर्वत की तरह गड़गड़ाने लगा हो—

यह वह क्षण था जब मौलाना ने एक टूटे-फूटे, गुफा-जैसे मकान का दर्वाज़ा खोला; और उसके खुलते ही सामने ऊषा एक खम्भे से बँधी हुई दिखायी दी।

"इन तीनों लड़कियों को फौरन खोलो—जल्दी करो।" मौलाना की आवाज़ उसे गिरते हुए पहाड़ों की कर्ण-भेदी गड़गड़ाहट के बीच कहीं बहुत दूर से आती प्रतीत हुई।

पहला रोमाञ्च दूर होते ही उसने अच्छी तरह आँखों को मलकर उनका चुँधियापा दूर किया, तो उसने देखा कि सचमुच दो और लड़-ड़ियाँ एक और खम्मे के साथ इसी प्रकार बँधी हुई थीं। उनके मुँह में कपड़े ठुँसे हुए थे; और वे कुछ इस प्रकार उनकी ओर देख रही थीं, कि अनायास उसे वह कोचवान याद आ गया जो छुरा लगने के बाद ताँगे के पायदान से लटककर अपने ऊपर पेट्रोल डालनेवालों को केवल देखता ही रह गया था।

वह भागकर ऊषा के पास गया; और उसके गिर्द बँधे हुए रस्से पर पागलों की तरह झपट पड़ा। हाथों से, दाँतों से और हर प्रकार से उसने उसे काट डालने की कोशिश की; परन्तु उस समय उसके हाथ कुछ इस तरह नाकारा हो गये थे जैसे ऊषा के नहीं बल्कि उसके अपने हाथ उस रस्से में जकड़े हुए हों, जिसे खोलने की कोशिश वह ज्यों-ज्यों करता जाता था त्यों-त्यों वह फाँसी के फन्दे की तरह और कसता चला जा रहा था। वह उस निराश पन्छी की तरह छटपटा रहा था, जो अपने निर्बल पंखों से पिंजरे को तोड़ने की कोशिश में अपने आपको घायल कर बैठा हो, परन्तु फिर भी पिंजरे की सीखों से टकराये जा रहा हो।

उसने घबराहट की हालत में गाँठ खोलने के प्रयत्न से फौरन ही हताश होकर काँपते हाथों से उस रस्से को तोड़ डालने के लिए जोर लगाना शुरू किया; और जब उसमें सफल न हो सका तो उसने धरती में गड़े हुए उस खम्भे ही को उखाड़ फेंकने के लिए जोर लगाना शुरू किया; और जब उसमें भी सफलता न हुई तो उसने खम्भे को एक जोर की टक्कर मारी और फिर एकाएक जैसे वह शिथिल हो गया, और उस खम्भे के साथ लिपटकर रोने लगा।

ऊषा और दोनों लड़कियाँ उसी प्रकार उसे देखती रहीं, और बस—न वह हाथ हिला सकती थीं, न जबान। और फिर यह सब कुछ जैसे क्षणमात्र ही में तो हो गया था; और शायद इतनी देर में तो उन्हें इस

बात का विश्वास भी न आया था कि सचमुच ही कोई उन्हें उस कैद से रिहाई दिलाने आ पहुँचा था।

आनन्द बालकों की तरह खम्भ से लिप कर रोता रहा, यहाँ तक कि मौलाना ने स्वय आगे बढ़कर उसी छुरे के साथ उनकी रस्सियाँ काट भी दीं। वह फिर भी उसी प्रकार बिलखता रहा।

रस्सियाँ खुल जाने पर कुछ देर तक तो लड़कियों की समझ में भी कुछ न आ रहा था कि अब उन्हें क्या करना चाहिए। वह तीनों आनन्द को अपने पास रोता देखती रहीं, परन्तु बोलीं कुछ नहीं। फिर उन्होंने मौलाना की ओर देखा, और फिर उनके सर पर बँधे हुए सब्ज अमामे की ओर—और फिर सहज ही न जाने उन्होंने क्या सोचा कि तीनों एक साथ ही दर्वाजे को लपकीं और निकट था कि वह इसके परिणाम की चिंता न करते हुए उस खुले दर्वाजे से बाहर निकल जातीं कि मौलाना ने कड़ककर पुकारा—"ठहरो।"

जाने क्यों इस कड़क ने जैसे उन्हें फिर उन्हीं रस्सियों में जकड़ दिया, और वह वहीं की वहीं खड़ी रह गयीं। मौलाना ने झपटकर वह दर्वाजा बन्द कर दिया और उनका रास्ता रोककर खड़े हो गये। उनकी इस कड़क से आनन्द भी चौंक पड़ा और जल्दी से उनके पास आ गया।

"यह क्या बदतमीज़ी है? क्या तुम्हें मैं इसलिए यहाँ लाया था कि इन मासूमों की मदद करने की जगह तुम औरतों की तरह टसवे बहाने लगो?"

आनन्द की चेतना जैसे एक प्रकार की बेहोशी के बाद फिर से सजग हो उठी थी। उसने लज्जित सा होकर कहा--"क्षमा कीजिये मौलाना! असल में आप नहीं जानते कि..."

"मैं कुछ नहीं जानना चाहता सिवाय इस बात के, कि क्या तुममें इतनी हिम्मत है कि इन लड़कियों को किसी हिफाजत की जगह पर पहुँचा सको?"

इसके उत्तर में "हाँ" कहने के लिए आनन्द का रोम-रोम वाक्-शक्ति माँगने लगा, यहाँ तक कि उन कोटि-कोटि "हाँ" शब्दों के बीच उसकी अपनी जिह्वा ने मौलाना से क्या कहा, इसकी उसे कुछ सुध न थी।

उसे तो केवल इतना होश था कि वह ऊषा को बार-बार देखे जा रहा था, और बस। यहाँ तक कि वह लोग शहर की चारदीवारी के बाहर तक आ पहुँचे। उसे यह भी ख्याल न रहा था कि मौलाना उन्हें किन रास्तों से छिपे-छिपे और जल्दी-जल्दी वहाँ तक ले आये थे। वह जैसे यहाँ तक सुषुप्त अवस्था ही में चला आया था; और इस जागरित स्वप्न से वह उस समय जागा जब चारदीवारी के बाहर होते ही मौलाना सहसा रुक गये।

उनके रुकते ही आनन्द की वह जागरूक स्वप्न-शृंखला टूट गयी और अचानक उसे मौलाना की उपस्थिति, उनकी महानता और उस कार्य्य की विशालता का अनुभव एक साथ ही हो आया, और वह मौलाना से इस बारे में कुछ कहने की बात सोचने लगा; परन्तु उससे पहले ही मौलाना ने लड़कियाँ उसके हवाले करते हुए कहा—

"जाओ, खुदा तुम्हारी हिफाजत करेगा।"

"यह मैं नहीं मानता।" आनन्द ने फौरन जवाब दिया।

"क्या?" मौलाना ने हैरान होकर पूछा।

"यही कि आप अपनी महानता को खामख्वाह खुदा के सिर थोप रहे हैं। अगर आपका खुदा ही सबकी रक्षा करता है, तो वह देखिये आकाश पर छाया हुआ धुआँ—और यह इधर धरती पर बहनेवाला लहू। खुदा शायद यही कुछ कर सकता है। जो आपने किया है ऐसा महान् कार्य वह नहीं एक इन्सान ही कर सकता था। चुनांचे..."

"यह कहना कुफ्र है मेरे अज़ीज़!", मौलाना ने रोकते हुए कहा।

आनन्द अर्थपूर्ण रूप में मुसकराता हुआ कहने लगा—"अगर

आप कुफ्र से इतना डरते होते तो फिर आप अज़ान देकर खुद नमाज से यूँ न भाग आते। क्या आपके धर्म में...”

“तुम मेरा मजहब नहीं समझ सकते”, मौलाना ने फिर बात काटते हुए कहा, “केवल नमाज़ का ही नाम मजहब नहीं है, और न इनसान को केवल खुदा की तारीफ़ करते रहने के लिए बनाया गया है। उस काम के लिए फ़रिश्ते बहुत थे। इनसान को तो इनसानियत की सेवा करने, और खुदा की इस कायनात को खूबसूरती, खुशी और प्यार से भरने के लिए भेजा गया है। और यही उसका असली मज़हब या धर्म है।”

कितना सादा धर्म था—हर प्रकार के तकल्लुफ़ और झूठे अलंकारों से रहित। आनन्द ने महसूस किया कि यही है वह सब धर्मों का मूल, प्रकृति में स्वयमेव वृक्ष के रूप में फूट पड़नेवाले अंकुर की तरह किसी कृत्रिम प्रयास के बिना अनायास ही बन जानेवाला एक प्राकृतिक धर्म—जो संसार के हर पुण्य-कर्म और परम आनन्द का मूल-स्रोत है—वह नन्हा-सा चश्मा जो संसार की बड़ी-से-बड़ी धर्मरूपी नदियों को अपना अमृत-रस प्रदान करता है। माल एक ही था, परन्तु हर धर्म के दुकानदार ने अपना-अपना दाम बढ़ाने के लिए उस पर भाँति-भाँति के तकल्लुफ़ और धर्म-कर्मादि के आडम्बर की भिन्न-भिन्न मुहरें लगा रखी थीं ..

और यह सोचते-सोचते उसे वह बूढ़ा मानव एक महान् पवित्रता के ऊँचे शिखर पर बैठा हुआ दिखायी दिया, जहाँ किसी भी धर्म का दोष उसे स्पर्श न कर सकता था। वह महादेव के सिर से निकलनेवाली परम पावनी गंगा की तरह पवित्र था—और अजेय!

लेकिन “यह सोचने और सवाल-जवाब करने का वक्त नहीं है”, मौलाना ने उसकी विचार-धारा को फिर काट दिया। “असली काम के लिए ज़िंदगी में बहुत कम फ़ुर्सत मिला करती है। अपनी ज़िम्मेदारी को समझो और इन्हें ले जाओ। रिलीफ़ कैम्प अब पास ही है। खुदा तुम्हारी हिफ़ाज़त करेगा।”

यह कहते-कहते उन्होंने बगल से एक छोटी-सी गठड़ी निकालकर आनन्द के हवाले कर दी, "इसे नीची गली के मंदिर से मैं बचा लाया था।" और फिर और बातचीत का मौका दिये बिना वह जल्दी से पीछे को मुड़े और चारदीवारी के अन्दर गुम हो गये।

* * *

रास्ते में आनन्द ने गठड़ी खोलकर देखा तो उसमें भगवान् श्री-कृष्ण की एक छोटी-सी काले पत्थर की मूर्ति थी, आनन्द ने मन-ही-मन उस व्यक्ति के प्रति सीस झुका दिया, जिसने जलते हुए मंदिर में से उस मूर्ति को बचाकर अपना स्थान उस मूर्ति से भी ऊँचा कर लिया था—जिसका धर्म मूर्ति-पूजकों और मूर्ति-खण्डकों के प्रचलित धर्मों से कहीं अधिक महान् था...

छठा परिच्छेद

रिलीफ़ कैम्प में पहुँचने से पहले उसने ऊषा से कोई बात न की। मन में हजारों बातें उठ रही थीं, मगर जबान पर जैसे ताला पड़ गया था। फिर भी उसे इस बात की तसल्ली थी कि सेठ किशोरलाल तो निश्चय ही अपने नोट सँभाले रेस-कोर्स रोड पर राय बहादुर की कोठी में चला गया होगा। चुनांचे ऊषा कैम्प में उसीके सहारे होगी। और फिर वह और ऊषा...

परन्तु सदा की भाँति उसका यह स्वप्न भी बस एक मिथ्या-स्वप्न ही हो के रह गया।

कैम्प में दाखिल होते ही उसने सेठ किशोरलाल को देखा। वह रेस-कोर्स रोड के रास्ते ही से लौट आये थे; क्योंकि थोड़ी ही दूर जाने पर उन्हें उस ओर के कुछ हिन्दू शरणार्थी फौजवालों के साथ इसी कैम्प की ओर आते हुए मिले थे। वह स्थान भी सुरक्षित न रहा था।

सेठ ने जब बड़े ही भावुक तरीके से अपनी लड़की को गले लगाया, तो उसमें यह झूठा नाटक, यह महा-आडम्बर, यह घोर प्रवंचना, देखने और सहन करने की शक्ति न रही और वह जल्दी से आगे निकल गया।

कैम्प की अंतिम सीमा तक पहुँचकर वह लोहे के तारों से लगकर खड़ा हो गया; और हृदय के तूफानों को रोके हतबुद्धि-सा दूर किसी शून्य की ओर देखने लगा।

* * *

इसी प्रकार कितना समय व्यतीत हो गया, इसका उसे कुछ भी अनुमान न था। इतनी देर वह क्या देखता रहा था, क्या सो ता रहा था, इसका विस्तार असम्भव था। बस एक धुन्ध-सी थी जिसने उसकी बाह्य दृष्टि और आंतरिक अनुभूति दोनों को धुँधला दिया था और कुछ भी स्पष्ट न था।

उसे न जाने क्यों कुछ ऐसा महसूस हो रहा था जैसे यह धुंध अपना विराट् मुँह खोले उसके प्रेम और ऊषा के सौंदर्य्य दोनों को निगलती जा रही है। और वह घबराकर जितना ही उस सर्व संहारक धुंध से बाहर निकलने की कोशिश में छटपटाने लगा, वह उतना ही गाढ़ी होती चली गयी...और फिर जैसे इस धुंध ने एक डरावने आदमी का रूप धारण कर लिया, जिसने एक हाथ से प्रेम और दूसरे से सौंदर्य्य का गला बड़े ज़ोर से दबा रखा था। जब भी वह दो नन्हे-से प्राण एक दूसरे की ओर हाथ बढ़ाने की चेष्टा करते, तो वह दैत्य और भी जोर से उनका गला दबा देता, यहाँ तक कि दोनों मरणासन्न अवस्था में छटपटाने लगते। और उस पर वह दैत्य इस जोर से ठठाकर हँसता कि यों प्रतीत होने लगता जैसे इस दैत्य-ध्वनि के आघात से आकाश भी फटकर उनपर आ गिरेगा।

उसने अधिक ध्यान से देखा तो उसे उस दैत्य की शक्ल सेठ किशोर लाल की-सी दिखायी दी। इसके बाद और अधिक देखने का साहस उसमें न था। उसने घबराकर उधर से अपनी निगाहें फेर लीं। और निगाहें फिराते ही सहसा उसे अपने पीछे किसीकी मौजूदगी का एहसास हुआ। मुड़कर देखा तो वही लीलीपोपो वाला बालक उसी प्रकार विस्मय-भरे नेत्रों से उसकी ओर बिटर-बिटर देखे जा रहा था।

वह कब से यहाँ खड़ा था? जाते हुए सेठ किशोरलाल उस निस्सहाय को किस बेचारगी की हालत में छोड़ गया था? और वह आनन्द का हाथ थामने के लिए उस समय चुपचाप उसके पास क्यों आ गया था, जबकि वह अपनी नाव डुबो आनेवाले नाविक की तरह स्वयं भी बेचा-

रगी की हालत में था ? वह इसका आश्रय लेने आया था या इस अवस्था में उसे आश्रय देने आया था ? मन में उठते हुए इन प्रश्नों का उत्तर सोचने की उसने आवश्यकता ही महसूस नहीं की। आनंद तो उस समय घोरतम निराशा की उस चरमसीमा पर पहुँच चुका था, जहाँ हर बात और हर घटना बिल्कुल प्राकृतिक मालूम होती है, अर्थात् यदि ऐसा न होता तो यह एक अप्राकृतिक या असाधारण बात होती—

आनन्द ने लपककर उसे गोद में उठा लिया और न जाने क्यों बेतहाशा चूमना शुरू कर दिया। बालक की जबान खामोश थी, परन्तु उस समय भी उसकी निर्मल झीलों की-सी आँखों में एक मासूम-सा प्रश्न तैर रहा था, जो किसी भिखारन की भाँति जैसे हर देखनेवाले से एक उत्तर की भीख माँग रहा था......

उसके बाद जितने दिन वह लोग वहाँ रहे, आनन्द ने उस बालक को अपने पास ही रखा। बल्कि जितना वह ऊषा से अपने आपको छिपाने की कोशिश कर रहा था, उतना ही वह अपने आपको जैसे उस बालक की गोद में डालता चला जा रहा था। वह उसीके साथ सोता, उसीके साथ खाता, उसीसे बातें करता और उसीके साथ खेलता।

ऊषा पर इसका क्या असर हुआ, और उसके यह दिन किस प्रकार बीते, इसकी आनन्द को कुछ खबर न थी। बल्कि उसने बड़े प्रयत्नों से यह सब कुछ न जानने की कोशिश की थी; और इसी कोशिश में, जिसकी सफलता का उसे स्वयं भी यकीन न था, उसके दिन बीत रहे थे। ऊषा की उसे इतनी ही खबर थी कि वह बालक प्रायः दिन के समय, जब वह साथी शरणार्थियों की किसी-न-किसी सेवा में व्यस्त होता, ऊषा के पास रहा करता था। और रात को थककर जब वह बिस्तर में लेटता, तो प्रतिदिन बालक से एक छोटा सा प्रश्न पूछता—

"तुम्हारी ऊषा बैनजी कैसी है?"

"अच्छी है।" बालक अपनी तोतली भाषा में उत्तर दे देता।

"मेरे बारे में कुछ पूछती थीं?"

"नहीं......!!"

और उसके बाद हर रोज़ वह थोड़ी देर के लिए मौन हो जाता। उसके अन्दर 'कुछ' आहत अवश्य हो जाता, परन्तु वह एक ऐसे निस्तब्ध मौन में अपने को लपेटे रहता कि कुछ भी प्रत्यक्ष न हो पाता।

वह अकसर सोचा करता कि उस बालक के हाथ वही ऊषा को कुछ संदेश भेजे। परन्तु हर बार वह किसी मसलहत, किसी अव्यक्त शुभ हेतु को सोचकर अपने दिल पर पत्थर रख लेता—उस अन्तर के आहत 'कुछ' का मुँह सी देता जिससे वह एक आह भी न कर सके। उसे वही धुंध वाला दैत्य अनायास ही याद आ जाता और वह अपने आपको किसी काम में लगाने के लिए अपने हाथों का एक नकली बीन बाजा बजाकर बच्चे को सुलाने लग जाता। इस समय वह प्रायः यह सोचता कि यदि ऊषा की ओर उसके हाथ बढ़ाने से उस बेचारी के गले पर उस दानव की पकड़ और सख्त हो जाती है, तो वह भले ही अपने उस हाथ को काट डालेगा, परन्तु उसे बढ़ने नहीं देगा...

इसी प्रकार कामनाएँ करते हुए, इरादे बाँधते, सोचते और फिर उन्हें तोड़ते हुए उसके दिन एक-एक करके व्यतीत हो रहे थे, कि एक दिन जब वह उस बालक के साथ धूप में बैठा अपने हाथों को मुँह से लगाये बीन बजाने की नकल कर रहा था, तो वह बालक एकाएक तालियाँ बजाता हुआ अपने उस विशेष स्वर में गाने लगा—

"ऊषा भैनजी—ऊषा भैनजी..."

इससे पहले कि वह मुड़ कर देखता ऊषा बसंत के पहले फूल की तरह अचानक उसके सामने आ खड़ी हुई। उसका यह आकस्मिक आगमन उसके लिये जैसे आशा की कल्पना से भी परे की बात थी; और वह हतबुद्धि-सा एक उल्लास-पूर्ण घबराहट की हालत में यह भी न सोच सका कि उसे-सम्मान के लिये उठना चाहिये या कम से कम कोई स्वागत-सूचक

बात ही कहनी चाहिये। हाँ—किसी कविता का वह एक पद, जो वह हमेशा ऊषा के आने पर दुहराया करता था, आज भी बिना किसी ज्ञात चेष्टा के उसकी जिह्वा पर आ गया—

"देखता क्या हूँ कि वह जाने-इंतजार आ ही गया..."

यह एक चरण बल्कि सारी कविता ही ऊषा को बेहद पसन्द थी ; परन्तु आज उसने जैसे उसे सुना ही नहीं। उसने छूटते ही पूछा—

"क्या आप कल वाले काफले के साथ नहीं चलेंगे ?"

इस आकस्मिक हमले ने क्षण भर के लिये एक बार तो आनन्द को अस्त व्यस्त कर दिया। उसका अस्तित्व ही जिन आधारों पर खड़ा था, मानो किसी ने उन आधारों ही पर आघात किया हो और फिर जैसे सारा संसार ही एक अर्द्ध ज्ञात से सन्नाटे में डूबता चला जा रहा हो।

उसने अपने जीवन की सारी शक्ति संचित करके अपने आपको उस बढ़ते हुए सन्नाटे में डूबने से सँभाला—और फिर सब ठीक हो गया। उसकी चेतना लौट आयी और उसे सब कुछ दिखायी देने लगा। यह सब कुछ शायद एक क्षण से भी कम समय में हो गया था, क्योंकि ऊषा इसी प्रकार अभी-अभी प्रश्न करके उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी। एक क्षण से भी कम समय—कभी-कभी कोई एक क्षण किस प्रकार कालहीन हो जाता है, जिसकी अवधि काल के किसी भी माप से मापी नहीं जा सकती।

ऊषा का प्रश्न जैसे अभी समाप्त हुआ था। उसने बालक को अपनी गोदी में उठाते हुए हँसकर उत्तर दिया—

"क्या यह जरूरी है कि मैं भी सबसे पहले भागने वालों के काफले में शामिल हो जाऊँ। आखिर सभी तो कल नहीं जा सकते।"

ऊषा ने जैसे वह उत्तर सुना ही नहीं। उसे शायद इसकी भी [illegible] न रही थी कि उसने अभी-अभी क्या कुछ पूछा भी था। [illegible]

जो कुछ कहने आयी थी, वह जैसे अब उसके रोके न रुक सका और ज़बान पर आ ही गया—

"क्या तुम मुझसे इसलिए घृणा करने लग गये हो कि मुझे मुसलमान उठा कर ले गये थे ?"

यह कहते कहते वह फूट पड़ी, और फिर और कुछ कहे बिना, जिधर से आयी थी, तेजी से उधर ही लौट गयी। आनन्द बिजली की तरह उठकर उसके पीछे भागा, लेकिन इससे पहले कि वह ऊषा का रास्ता रोक लेता और अपना कलेजा चीर कर उसे दिखा देता, सामने से सेठ किशोर लाल आते दिखाई दिये। उन्हें देखते ही उसके पाँव जैसे पत्थर के समान हो गये और धरती में धँसते हुए महसूस होने लगे।

ऊषा पल्लू से आँखें पोंछती हुई पिता के पास से तेजी से गुजर गयी, आनन्द की निगाहें उसका पल्लू थामने की निष्फल चेष्टा में उसके पीछे पीछे भागती ही रह गयीं और बीच में सेठ किशोर लाल एक अटल शाप की तरह खड़ा हो गया।

आनन्द सिर झुकाये हुए अपने स्थान पर लौट आया और फिर बालक को, जो उसके इस प्रकार उठकर भागने से धरती पर बुरी तरह गिर गया था, अपनी गोद में उठाकर बेचैनी की अवस्था में इधर से उधर घूमने लगा, संभवतः उसे यह भी पता न था कि बालक उसकी गोद में आकर भी रो रहा था, उस समय शायद वह कुछ भी सुन न सकता था, वह तो किसीको कुछ सुनाना चाहता था, मगर सुननेवाला कहाँ था ...!

* * *

वह रात उसने बड़ी बेचैनी की हालत में गुज़ारी।

"क्या तुम मुझसे इसलिए घृणा करने लग गये हो ......" बार-बार यह एक वाक्य विष में बुझे हुए बाण की तरह उसके कानों को

चीरता हुआ मस्तिष्क में जाकर कहीं खुब जाता, और फिर दूसरा, और तीसरा, और..बाण चलते रहे, रात बीतती गयी।

रात-भर उसकी जबान किसीसे एक बात कहने को तड़पती रही, और तड़पती ही रह गयी। उसे जाने क्यों इस बात का विश्वास था कि जो उसके शांत शून्य में एक ही जलते हुए प्रश्न से चारों ओर आग लगाती एक दावानल की तरह अचानक आ दाखिल हुई थी, उसका उत्तर पाने के लिए भी इसी प्रकार किसी ही क्षण वह इंद्र-धनुष की तरह सहसा ही प्रकट हो जायगी—और फिर वह उसे इस तरह चली जाने नहीं देगा। वह लोक-लाज और तकल्लुफ के तमाम पर्दे उतारकर सबके सामने उसके चरणों से लिपट जायगा और तबतक उसे जाने नहीं देगा जबतक अपना दिल निकालकर उसे न दिखा ले..परन्तु इंतजार दीर्घ से दीर्घतर होता गया और वह जाने-इंतजार न आयी··

आखिर प्रभात हुआ और उस प्रभात-प्रभा के जाने का समय बहुत निकट आ गया, वह तब भी न आयी। आनन्द को यों महसूस होने लगा जैसे कोई उसका कलेजा निकाले लिये जा रहा हो, दिल की धड़कन क्षण-क्षण में इतनी तेज हो जाती कि उसे अपना साँस घुटता हुआ महसूस होता। यों तो वह उस [illegible] के स्थान से ऊषा के निकल जाने पर प्रसन्न था, परन्तु वह उसे यह [illegible] दिल में छिपे हुए चले जाने नहीं दे सकता था। वह उसके जाने से पहले उसे कम-से-कम एक बात का विश्वास दिलाना चाहता था, नहीं तो उसके बाद एक पल भी आराम कर सकने की कोई सूरत न रह सकती थी। उसे इस बात का तो पूरा विश्वास था कि एक बार जो बात वह अपने मुँह से कह देगा, ऊषा या उसका [illegible] न [illegible] न था, परन्तु वह एक बात कहने का उसे [illegible]...

[illegible], और कोई [illegible] उपाय [illegible] इसने [illegible] निर्णय किया ; और [illegible]

लिखकर उस बालक के हाथ में दी कि ऊषा को चोरी से दे आये। वह जानता था कि बच्चे की निष्कपट नादानी को देखते हुए ऐसा करना बहुत खतरनाक है, परन्तु आज परिस्थिति ही इतनी विषम थी कि उसने अपनी और उससे भी अधिकतर ऊषा की लाज को भी दाँव पर लगाने से सकोच न किया।

उस पत्र में क्या लिखा था, उसका एक-एक अक्षर जीवन-भर के लिए उसे हृदय-पट पर इस तरह अंकित हो गया जैसे पत्थर पर खुदा हुआ हो।

पत्र में उसने एक जगह लिखा—"यहाँ का कानून यही है ऊषा कि जिस पिता ने अपने रुपये बचाने के लिए तुम्हें और तुम्हारी माता को उस अग्नि-कुण्ड में झोंकने से भी सकोच न किया, वही आज भी तुम्हारा अधिकारपूर्ण अधिपति है; और मैं—जो तुम्हें ढूँढ़ने के लिए जलती आग और चलती तलवारों में भी चला गया था—तुम्हें नहीं पा सकता। क्योंकि उसके पास वह धन है, जो उसने तुम्हारी कीमत पर भी अपने पास रखा, और हममें से कोई भी काँच की उस दीवार को तोड़कर एक दूसरे के निकट नहीं जा सकता।

"हम में उस दीवार को तोड़ने की ताकत ही न हो, यह बात भी ठीक नहीं; बल्कि जैसा कि मैंने एक बार पहले भी तुम्हें समझाया था कि हमारे देश और समाज की हजारों वर्षों की परम्पराओं और रूढ़ियों ने लाज और इज्जत के विष-मुखी काँटे उस दीवार के दोनों ओर कुछ इस प्रकार बिछा रखे हैं कि अगर कोई अंधा जोश में उन पर से गुजर कर उस दीवार को तोड़ भी डाले तो उसका सारा जीवन बदनामी के घावों से छलनी हो जाता है, और मेरा प्रेम आज तक न इतना अंधा था और न स्वार्थी, कि मैं तुम्हें उन काँटों पर से घसीटता हुआ ले जाता—! मेरे निकट प्रेम के यह अर्थ कभी नहीं हुए—

"इसके बावजूद उस दिन जब मैं तुम्हें वहाँ से लेकर आया तो मैंने

"मैंने सोचा था कि जल्दी ही तुम अपने पिता के साथ किसी दूसरे शहर में चली जाओगी, जहाँ उनका धन तुम्हारे लिए फिर से हर प्रकार के ऐश्वर्य के सब साधन जुटा देगा ; और उस पर यदि मैं किसी-न-किसी तरह अपने दिल पर पत्थर रखकर अपने आपको तुम्हारे रास्ते से अलग रखकर कम-से-कम उस समय तक खामोश खड़ा रहूँ जब तक तुम्हारा काफिला उस हद तक दूर चला जाय कि फिर उसे ढूँढ़ लेना मेरे लिए असम्भव हो जाय ; तो शायद मेरी अनुपस्थिति मुझे भूल जाने में तुम्हारी सहायता करे। और इस प्रकार कम-से-कम तुम तो उस रोग से छुटकारा पा जाओ, जो लाइलाज और स्थायी-सा होकर रह गया है।

"यही सोचकर मैंने अपनी निगाहों पर बंधन डाल दिये थे और दिल पर ताले, मैंने अपने नेत्रों से उनकी ज्योति छीन लेने की कोशिश की और दिल से उसका चैन और सुख। परन्तु इन सब बातों के बावजूद मुझे अपनी निर्बलता का ज्ञान था—मैं जानता था कि मैंने दिल पर वह जख्म खाया है जो तुम्हें किसी भी सूरत दिखाये न बने, और अगर चाहूँ कि छिपा लूँ तो छिपाये न बने। चुनांचे मैंने तुमसे उल्टी दिशा में भाग जाने का फैसला किया था। तुम्हारा काफिला पूर्वी पंजाब के सुरक्षित स्थानों की ओर जा रहा था, और मैंने पश्चिमी पंजाब के भीतरी भागों में खो जाने का निर्णय किया—जहाँ आहत मानवता सिसक रही है, जहाँ सुख-शान्ति का अकाल पड़ा हुआ है, और जहाँ भूख और भय का मारा हुआ मानव मदद के लिए पुकार रहा है......

"मैंने और भी कितने ही फैसले किये थे। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि मैंने उस कवि की भाँति केवल अपनी अलभ्यता, अप्राप्यता या हीनता पर पर्दा डालने के लिए यह कहकर अपने आपको धोखा देने की कोशिश की थी कि 'और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा।' नहीं तो तुम्हारा केवल एक ही वाक्य मेरे तमाम फैसलों को इस प्रकार पलक झप-कते में मटियामेट न कर देता, और मैं इस तरह एक मजबूर और

समझा कि शायद मेरी तड़प ने विधाता को पिघला दि
कि—'दिल इस सूरत से तड़पा, उसको प्यार आ ही गय
यह मेरी भूल थी। मैंने जिस वस्ती का बसना इतना स
था, वह दरअसल इतना आसान न था। मैंने यह समझ
आग के दरिया में से डूबकर गुजरा हूँ तो अब आँसु
जाने का समय आ गया है, मगर मुझे मालूम न था
आग थी जिससे न दिल बहलेगा और न विरह की रा
कुछ कम होगा।

भाँति-भाँति के कई प्रश्न उसके मनस्तल पर उतरते और हजारों नन्हें-नन्हें चक्करों का एक समाप्त न होनेवाला सिलसिला पैदा करते रहे। और वह कासिद के सकुशल लौटने की प्रतीक्षा करता रहा। दूसरा कोई काम भी तो न था। जहाँ तक उस काफले के साथ चलने की तैयारी करने का सवाल था, इस बेसरोसामानी की हालत में वह हर समय तैयार ही तैयार था।

आखिर तंग आकर वह स्वयं बाहर निकला; और डरता-डरता सेठ के तंबू की ओर जाने लगा। परन्तु थोड़ी ही दूर जाने के बाद वह रुक गया। यदि उसका पत्र पकड़ा गया हो, तो वह किस मुँह से उस कैम्प के पास तक जा सकता है! उस ओर से कुछ हल्के-से शोर की ध्वनि भी सुनायी दे रही थी। या शायद यह उसका अपना भ्रम था। परन्तु उसका साहस जवाब दे गया और वह जल्दी से अपने तंबू की ओर लौट आया।

अपने तबू के पास पहुँचा ही था कि उनकी कैम्प-कमेटी का सेक्रेटरी घबराया-हुआ सा सेठ के तबू की ओर जाता हुआ मिला। उसे देखते ही उसने पूछा—"क्या तुम किशोरीलाल के तंबू से आ रहे हो?"

आनंद पर जैसे बिजली गिर गयी। उसे यकीन हो गया कि वह पकड़ा गया है। मानो पाप के अहसास ने उसकी जबान बन्द कर दी और वह एक अपराधी की भाँति अपना जुर्म स्वीकार करनेवाली दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। परन्तु आँखें शरमा गयीं और वह इस प्रकार भी प्रेम का अपराध स्वीकार न कर सका, और उसने आँखें झुका लीं।

सेक्रेटरी ने जाने क्या सोचा कि वह और कुछ पूछे बिना जल्दी से आगे बढ़ गया। और इस बात पर विस्मित कि वह उसे कुछ भी सख्त सुस्त कहे बिना क्यों चला गया है, आनंद उसे जाते हुए देखने के लिए जल्दी से मुड़ा, और क्या देखता है—कि सामने से उसका नन्हा पत्रवाहक सिर झुकाये चुपचाप चला आ रहा है, यों जैसे किसीने उसे पीटा हो।

आनन्द ने फौरन आगे बढ़कर उसे कंधों से पकड़ लिया—"क्यों, क्या हुआ?"

निस्सहाय दास की तरह तुम्हारे काफले के साथ चलने की तैयारी न कर रहा होता।

"मैं जानता हूँ कि मेरा यह निश्चय उस लाइलाज रोग को और भी खतरनाक बनाने के सिवा और कुछ नहीं कर सकता, जिसके चुंगल से कम-से-कम तुम्हें छुड़ाने की तमन्ना मैंने सदा उतनी ही तीव्रता से की है, जितनी तीव्रता से तुम्हें पाने की तमन्ना। मैं यह भी जानता हूँ कि जब इस महाप्रलय में भी हमें मिलने नहीं दिया गया तो भी भविष्य में 'आप जाए न बने, तुमको बुलाए न बने' वाली परिस्थिति बदल जायेगी, ऐसी तमन्ना अब भी करना सिर्फ फरेबे-तमन्ना है। परन्तु तमन्ना और फरेबे-तमन्ना में 'आशकी इस्तयाज क्या जाने'—यही एक बात साबित करने के निमित्त मैंने अपना शेष जीवन अर्पण कर देने का फैसला कर लिया है; ताकि जिस प्रकार कल तुमने आँखों में आँसू भरकर यह उलहना दिया कि 'तुम मुझसे घृणा करते हो', उसी प्रकार तुम एक दिन यह कहने पर मजबूर हो जाओ कि 'मैंने तुम्हें मुहब्बत में इस तरह जिंदगी तबाह कर लेने को कब कहा था!' और फिर जब तुम यह देखो कि तुम यह बात बहुत देर से कहने आयी हो और कि इस बात से किसी अनिष्ट को टाल सकने का समय बीत चुका है, तो तुम्हारी आँखों में बेअख्त्यार आँसू छलक-छलक जायँ......

* ० * *

पत्र लिखने से पहले वह बेचैन था ही, परन्तु पत्र भेजने के बाद उसकी बेचैनी दुगनी हो गयी। कई तरह की शंकाएँ उसे परेशान करने लगी। कहीं ऐसा न हो जाय—कहीं ऐसा न हो जाय......और उस पर उस नन्हें संदेश-वाहक के लौटने में देर होती जा रही थी। "अगर कहीं सेठ ने रास्ते ही में उससे वह पत्र ले लिया तो......और फिर ऐसा होने पर यदि कहीं ऊषा ने यह समझ लिया कि मैंने जान-बूझकर उसे बदनाम करने के लिए ऐसा किया है तो...?"

तृतीय खण्ड

मैं बच गया....

लेकिन लड़के ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल उसका पत्र उसे वापस दे दिया।

"क्या हुआ वहाँ? क्या तुम्हें किसीने मारा? फिर तुम यह पत्र वापस कैसे ले आये?"

आनन्द प्रश्न-पर-प्रश्न पूछे जा रहा था, लेकिन लड़का कोई उत्तर न दे रहा था। वह केवल उसकी ओर कुछ ऐसी निगाहों से देखे जा रहा था जिनकी गहराइयों में कई मासूम-से प्रश्न तैर रहे थे—शायद वह प्रश्न ही उसकी सब बातों का प्रत्युत्तर था।

आनन्द की सहन-शक्ति का अंत हो चुका था। उसने बच्चे को बड़ी क्रूरता से झँझोड़ते हुए कटुतर स्वर में पूछा—"तुम बताते क्यों नहीं; क्या हुआ वहाँ—?"

लड़के ने आखिर जबान खोली, मगर उसकी आवाज बर्फ की भाँति सर्द थी—"ऊषा भैनजी मर गयी!"

"मर गयी? किस तरह—?" मानो उसने अपने आप प्रश्न किया।

"उसने रात को ज़हर पी लिया!" लड़के ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

तृतीय खण्ड

मैं बच गया....

थीं—जीवन की सारी दीप्ति—उसने उन्हें खो दिया था जिनके दम से उसका जीवन जीवन था। उसने वह सब कुछ खो दिया था जिसे वह कभी अपना समझता था। और उस प्रलयंकर नरमेध में उसके पास बची रह गयी थी केवल श्मशान की-सी वीरानी, नश्वरता, श्रीहीनता और एक अशक्त-सी कराहना, जो मृत्यु की अंधी, संगीन दीवारों से सिर पटक-पटककर इसलिए बार-बार रो रही थी कि शायद उसके मूक-रुदन की ध्वनि ही दीवार के उस पार किसीके कानों तक पहुँच सके...परन्तु मरनेवाले बड़े जालिम होते हैं...

और उसे बड़े उग्र रूप से लगने लगा कि ऊषा सचमुच ही बड़ी जालिम निकली। प्रेम और उसकी अक्षुण्णता के नाम पर अपनी आहुति देकर उसने मृत्यु के अंधकार को भी एक अक्षय आलोक से आलोकित कर लिया, परन्तु आनन्द को जीवन के उजियारे में भी उन अँधियारों में धक्का दे गयी, जहाँ चारों दिशाओं से एक अंधकार-समूह उमँड़ता ही चला आ रहा था, जहाँ उसकी तमाम अनुभूतियाँ सुन्न-सी हो गयी थीं। यहाँ तक कि उसका जीवन एक ऐसे मरुस्थल की भाँति शुष्क हो गया था जहाँ एक आँसू तक न बरसता था। और जहाँ ऊषा की याद भी आँसुओं के कर से भी वंचित एक हारे हुए बादशाह की तरह सिर झुकाये प्रवेश करती, और हताश-सी होकर दिल के किसी अंधेरे कोने में जा बैठती...

वह सोचने लगा कि ऊषा भले ही मर जाती, परन्तु उससे पहले उसे सफाई का एक मौका तो देती, कम-से-कम उसकी वह चिट्ठी ही रह जाती तो शायद उसे इतनी यंत्रणा न सहनी पड़ती। परन्तु वह तो...

और उसके एक हाथ ने अज्ञात रूप में ही जेब में रखी हुई उस चिट्ठी को जोर से थाम लिया, मानो कोई उससे वह छीने लिये जा रहा था।

धीरे-धीरे उसकी उँगलियाँ जेब के अन्दर ही अन्दर उस पत्र के अक्षरों

को टटोल-टटोलकर जैसे प्रकाशहीन अंधों की तरह पढ़ने की कोशिश करने लगीं। और जैसे उन्होंने वह वाक्य पढ़ लिया जिसमें उसने केवल ऊषा को तड़पाने के लिए यह इच्छा प्रकट की थी कि "फिर जब तुम यह देखो कि तुम यह बात कहने बहुत देर से आयी हो और कि इस बात से किसी अनिष्ट को टाल सकने का समय बीत चुका है तो तुम्हारी आँखों में बेअख्तयार आँसू छलक-छलक जायें..." और फिर उसे याद आ गया कि यह वाक्य लिखते समय उसने किस प्रकार कल्पना की थी कि इसे पढ़ते ही ऊषा किस प्रकार तड़प उठेगी, और फिर किस तरह पहला मौका पाते ही वह हाथ में वही पत्र लिये उसके सामने आ जायगी और सदा की भाँति एक संक्षिप्त—पर कितना स्निग्ध—वाक्य उसकी जबान पर तड़प जायगा—"तुम्हें ऐसा लिखते हुए शरम नहीं आती?" और फिर उसके आँसू थामे नहीं थमेंगे, यहाँ तक कि वह उसकी आँखों को चूम-चूमकर उन छल-छल करते हुए प्यालों में से अमृत एक-एक बूँद पी जायगा......परन्तु उसे यह पता न था कि जिस समय वह यह पत्र लिख रहा था, उस समय पहले ही बहुत देर हो चुकी थी, और ऊषा उससे बाजी जीत चुकी थी। उसे यह खबर न थी कि जिस समय वह उसे केवल उस एक वाक्य—उस एक फरियाद के लिए, जो उसकी आत्मा के गूढ़तम तल से उठी थी और ऊपर के सब आवरणों को चीरती हुई ओठों पर आ गयी थी—उस आहत की-सी पुकार के लिए बड़े संतोष से बैठा उलहने दे रहा था—जवाबी ताने लिख रहा था, उस समय एक फटी हुई चादर में लिपटी हुई ऊषा की लाश किसी तुरंत बिगड़ जानेवाले से कह रही थी कि "कफन सरकाओ मेरी बेजबानी देखते जाओ।"

और फिर धीरे-धीरे उस पर यह अहसास छाने लगा कि ऊषा ही उसमें अधिक पीड़ित रही, उसीके साथ सबसे अधिक अन्याय हुआ—वह मजलूम थी, जालिम नहीं। उसे अन्त समय में एक अच्छा कफ़न भी

नसीब न हुआ, बल्कि एक शरणार्थी की फटी हुई फालतू चादर में उसे लपेटा गया। काश उसने वह चिट्ठी पहले ही भेजी होती—चाहे वह उसे जहर पी लेने के बाद ही मिलती, तो भी उसकी मृत्यु में एक शांति तो होती और किसीके प्रेम की छलना और बेवफाई की जलन उसकी मृत्यु-शय्या पर यों काँटे तो न बखेरे रहती, वह तो मरकर भी इतनी सी सांत्वना न पा सकी थी कि कोई पश्चात्तापी उसकी अरथी के पीछे सिर झुकाये चला जा रहा है...परंतु उसकी अरथी का जुलूस ही कब निकल सका था, उसे वह समय याद आ गया जब किशोरलाल ने लाशों से भरे हुए एक ट्रक पर बैठे हुए फौजी के हाथ में ऊषा की लाश सौंप दी, उस सैनिक ने किस बेदर्दी से उसे भी उठाकर दूसरी लाशों के ढेर में बेपरवाही से फेंक दिया था और आनन्द दूर खड़ा केवल देखता रहा था, और कुछ न कर सका था।

उस समय उसने चाहा भी था कि उस फौजी का हाथ रोक ले और उससे इतना तो कहे कि "इसे जरा आराम से—यह दूसरी सब लाशों से कहीं ज्यादा नाजुक है; उसकी रेशम की-सी त्वचा पर भरींटे आ जाने का डर है।" परंतु फिर उसे यह विचार भी साथ ही आ गया था कि यह कहनेवाला वह कौन था? जब वह जीवित थी तब जो बाप उसे जलती आग में छोड़कर चला आया था, वही आज उसकी मृत्यु के बाद संसार के सामने उसका अधिकारपूर्ण वारिस था, हाय रे अन्धे संसार! और तेरी यह निष्ठुरता कि उस झूठ-मूठ रोनेवाले ही को अश्रु-प्रदर्शन का अधिकार था और आनंद दूसरे दर्शकों के बीच एक दर्शक भर था, और कुछ नहीं। क्या उसे केवल इतना ही अधिकार था कि वह सबकी भाँति अफसोस का केवल एक-आध वाक्य ही कह सके, और कुछ अधिकार नहीं था उसका?

आज ज्यों-ज्यों वह दृश्य उसकी आँखों के आगे आता गया और उस दिन की अपनी बेचारगी का आभास अपने क्रूरतम रूप में उसके

सामने आकर एक विकट हास्य-ध्वनि करने लगा, तो उसके साथ-ही-साथ हार्डी की एक कविता भी उसके मस्तिष्क में घूमने लगी, उस कविता में एक प्रेयसी अपने प्रेमी की अरथी का चित्र खींचती हुई वर्णन करती है कि :—

उसकी अरथी धीरे-धीरे श्मशान की ओर जा रही है, उसके
रिश्तेदार शव के साथ-साथ चल रहे हैं।
और मैं पराये लोगों के साथ एक उचित दूरी पर चल रही हूँ।
वह उसके बांधव हैं, मैं उसकी प्रेयसी हूँ।
उनके काले वेश मातम के प्रतीक हैं,
परन्तु मैं अपना रंगदार गाउन बदलकर काला नहीं पहन सकती
वह काले वस्त्रोंवाले शोक-रहित निगाहों से चारों ओर देख रहे हैं,
जबकि मेरा दुख आग की तरह मुझे झुलसे डाल रहा है......

* * *

आनन्द सोचने लगा कि हार्डी को क्या पता था कि उसकी कल्पना भविष्य में आनेवाले किसी अभागे की यथार्थता से खिलवाड़ कर रही है।

उसने एक साधु से सुना था कि किसीकी भी कल्पना मिथ्या नही रहती, किसी-न-किसी दिन प्रकृति अवश्य उसे यथार्थता का रूप दे देती है। वाल्मीकि ने कुञ्जों के एक जोड़े की जुदाई को देखकर अनायास ही जो पद कह दिये थे वही एक दिन रामायण की उस महान् ट्रेजेडी का आरम्भ साबित हुए, जिसमें सीता की सारी निर्दोषता और राम की सारी शक्ति भी मृत्यु को उनके बीच एक अनन्त विरह की दीवार खड़ी करने से न रोक सकी। फिर उसने यह सोचा कि वह स्वयं भी तो कवि है, क्या जाने उसकी अपनी दुखान्त कविताएँ किस आनेवाले हतभागे मानव की जीवनी का नक्शा तैयार कर रही हैं। और यह सोचते हुए उसे इस विचार से एक प्रकार की सांत्वना का आभास होने लगा कि उसकी तमाम

कविताएँ उस आग में जल गयी थीं। शायद इस प्रकार न-जाने कितने बेगुनाहों पर आयी हुई बला टल गयी हो।

यह विचार आते ही उसने चाहा कि वह संसार भर के उन दुःख-विलासी साहित्यकारों और कवियों का सारा-का-सारा साहित्य फूँक डाले और आनेवाले करोड़ों इनसानों को सुरक्षित कर दे। उन खिलंडरे नभचरों और ग्रहसितारों को आग लगा दे जो अपनी आँख-मिचौनी में मस्त अट्टहास करते हुए इधर से उधर भागे फिर रहे हैं और यह कभी नहीं सोचते कि उनकी हर हरकत उनका हर कदम इस धरती की करोड़ों मासूम जीवनियों से खेल रहा होता है। वह उन सब मन-मौजी खिलाड़ियों को एक विराट अग्नि-कुंड में भस्म करके मानव को ग्रह चक्र की मजबूरियों से मुक्त कर देना चाहता था। वह प्रकृति की इस सारी नियति, इस सारे नियमित क्रम को नष्ट-भ्रष्ट कर डालना चाहता था, जिसमें देवताओं का खिलौना इनसान मजबूर भी था, पीड़ित भी और लाचार भी—और अगर यह सब कुछ किसी परमात्मा की इच्छा से हो रहा था तो वह उससे भी विद्रोह करना चाहता था और...

और वह क्या कुछ न चाहता था, या उसने क्या कुछ न चाहा था। परन्तु उससे मिला क्या? और उसे वह सब कुछ याद आ गया जो कई बार उसने और ऊषा ने मिल कर चाहा था। उन्होंने क्या-क्या मनसूबे बाँधे थे, भविष्य के अधूरे स्केचों में उन्होंने कल्पना के कैसे-कैसे सुन्दर रंग भरे थे, विरोध के सख्त से सख्त तूफानों में भी उन्होंने किस प्रकार आशा का आँचल थामे रखा था—परन्तु आज वह आशा कहाँ थी, वह आँचल किसने झटक कर उसके हाथ से छुड़ा लिया था, वह सौंदर्य कहाँ था, विचारों को वह उज्ज्वलता क्या हुई जो किसी की कल्पना ही से आलोकित हो सकती थी...

अपनी मुलाकातें याद आते ही उसे वह सब स्थान याद आने लगे जहाँ वे मिला करते थे। वे जगहें जिनके कारण लाहौर उसके लिये संसार

का सुन्दरतम शहर था। लेकिन अब तो वह शाख भी न रही थी जिस पर कभी आशियाना था—और फिर लाहौर का नुकसान भी उसे अपना निजी नुकसान महसूस होने लगा। उसने सोचा कि हो सकता है कि अब कोई शहर-सुधार-सभा या इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट इस तोड़-फोड़ से लाभ उठाकर शहर की उन तंग सड़कों और अँधेरी पेंचदार गलियों की जगह खुली और सीधी राहें बना देगा ; और इस प्रकार उन रास्तों और मोड़ों का निशान तक मिट जायेगा, जिनके चप्पे-चप्पे से उसकी कोई न कोई याद सम्बंधित थी। वह राहें, जिन पर उसके मदमाते सौंदर्य्य ने अक्सर अपनी छाया डाली थी, एक-एक करके उसकी आँखों के सामने से गुजर गयीं—जहाँ कभी अपने रक्षक-गणों में घिरी होने पर भी उसकी निगाहों ने उसे झुकते हुए अभिनदन अर्पण किये थे, जहाँ कभी किसी मोड़ से लाभ उठाकर उन्होंने जल्दी से एक आध बात कर ली थी या वह पत्र ही एक दूसरे को थमा दिये थे, जो किसी ऐसे ही मौके की प्रतीक्षा में कई-कई दिनों से हर समय जेब में रखे रहते थे—और फिर भी कितना कुछ कहने को बाकी रह जाता था !

उसके साथ ही उसे वह तमाम हिमाकतें भी याद आ गयीं जो भावनाओं के ज्वार में कभी मूर्खता महसूस न होती थीं, मगर बाद में जिनका विचार करके भी वह काँप उठता था। और फिर उसे वह सब वादे एक-एक करके याद आ गये जो उन्होंने एक दूसरे से किये थे, उसने ऊषा को सदा ही यह कहकर छेड़ा था कि 'तुम्हारे वचन का क्या भरोसा ? तुम एक दिन खालिस हिन्दुस्तानी लड़की की तरह विरोध का एक भी शब्द जबान पर लाये बिना उसकी मोटर में चली जाओगी जिसके हाथों में तुम्हारे माता-पिता तुम्हे सौंप देंगे...'

और सचमुच ही वह एक हिन्दुस्तानी लड़की की तरह रत्ती भर आपत्ति किये बिना उसकी मोटर में चली गयी थी, जिसके हाथों में उसके पिता ने उसकी लाश सौंप दी थी...

आनन्द सोचने लगा कि उस मौन में भी ऊषा को कितनी यातना, कितनी घनीभूत वेदना का सामना करना पड़ा होगा। क्या मरते समय उसे भी वह एक-एक क्षण याद न आया होगा जो उन्होंने इकट्ठे बिताया था। क्या उसे आनन्द के वह तमाम वादे याद न आये होंगे—वह उस समय उसे कितना बड़ा फरेबी समझती होगी, और उस घनीभूत घृणा ने उसके जीवन को उस समय कितना कटु, कितना विषैला बना दिया होगा कि उसने विष की कटुता से शरण माँगी—और आनन्द को यों महसूस होने लगा कि ऊषा ने आत्महत्या नहीं की, बल्कि स्वयं उसने, उसके प्रणयी आनन्द ने, ऊषा का वध किया है...

सहसा एक चीख प्रतिध्वनित हो उठी, जिसकी भयानक आवाज उस नीरवता को भेदती हुई सारे वायु-मण्डल को कुछ इस प्रकार कँपा गयी कि उसका दिल हिल-सा गया। उसके तमाम विचार खसखस की तरह बिखर गये और वह घबराकर उठ खड़ा हुआ। सामने ही उसी तंबू के एक कोने में सोया हुआ बालक कोई भयानक स्वप्न देखकर अचानक बड़ी डरावनी आवाज़ में चिल्लाने लग गया था।

इससे पहले कि वह उस तक पहुँच कर उसे उठा लेता, एक युवती ने फुर्ती से तंबू में प्रवेश करके उस बालक को गोदी में ले लिया। गोदी में आते ही बालक चुप हो गया और फिर कुछ इस प्रकार की प्रश्न करती हुई दृष्टि से उस औरत के चेहरे की ओर देखने लगा कि आनन्द को बरबस ही उस बालक की याद आ गयी, जो उसका आखिरी सन्देसा लेकर गया था और उसके मरने की सूचना लाया था। उसकी निगाहों में प्रायः इसी तरह का एक मासूम-सा प्रश्न जाग उठा करता था। उस दिन जब वह पहले पहल शरणार्थी कैम्प में पहुँचे थे तो सेठ किशोरलाल की गोद में बैठा हुआ वह अपनी निगाहों में इसी प्रकार का एक मूक प्रश्न लिये हर एक से किसी उत्तर की भीख माँग रहा था। ऊषा को अपने साथ कैम्प में वापस लाने के बाद वह उस धुँधले-से शून्य में खो गया, तो उस समय

भी उसने चुपके से उसका हाथ थाम कर कुछ ऐसी ही निगाहों से उसकी ओर देखा—और उस समय भी जब वह आनन्द का पत्र वापस ले आया था और आनन्द उसे झँझोड़-झँझोड़ कर प्रश्न पर प्रश्न किये जा रहा था तो उसकी वर्फानी निगाहों ने प्रत्युत्तर में एक ऐसा ही ठंडा-सा मूक प्रश्न पेश कर दिया था—यहाँ तक कि आनन्द उन खामोश निगाहों से काँपने लग गया था। वह उन चीरते हुए मूक प्रश्नों से कहीं दूर भाग जाना चाहता था।

न जाने वह खामोश सवाल क्या थे। शायद वह पूछ रहा था कि "तुम कौन हो ? तुम ऊषा के कौन हो ? तुम्हें उसका वध करने का क्या अधिकार था ? तुम्हारे पास उस पर मालिकाना अधिकार साबित करने के लिए कितने लाख रुपये हैं, कितनी बिल्डिंगें हैं, कितनी उपाधियाँ— ??" या शायद वह यह पूछता था कि "तुम मानवता और न्याय के ऐसे कहाँ के ठेकेदार हो ? उसके लिए तुमने केवल सोचते रहने के सिवा सारे जीवन में और क्या किया है, कौन-सा अमली सबूत पेश किया है ? उसके लिए तुमने अपना लहू कब बहाया है, अपनी चिरवांछित मनो-कामनाओं को कब हँसते-हँसते भेंट किया है...?" और आनन्द ने उन जालिम निगाहों से भयभीत होकर अपने उस नन्हें-से आसरे को अपने ही हाथों अपने से जुदा कर दिया था। उस नन्हे भेदी को आनन्द ने उसी दिन पूर्वी पंजाब जानेवाले काफिले के साथ विदा कर दिया था और स्वयं अपने पहले निश्चयानुसार इनसे विरोधी दिशा में चला गया था—जहाँ घायल मानवता सिसक रही थी और जहाँ घृणा और आतंक का मारा हुआ इनसान मदद के लिए पुकार रहा था ..

* * *

पूर्वी पंजाब की ओर जानेवाला काफिला जब चलने लगा तो उस बालक ने आनन्द से कुछ नहीं कहा। एक लड़की की गोदी में चुपचाप बैठे हुए उस जालिम ने जाते-जाते केवल उन मूक प्रश्न करती हुई निगाहों

से उसकी ओर कुछ इस प्रकार देखा कि उसके चले जाने के बाद भी वह निगाहें आनन्द के दिल और दिमाग पर गड़ी की गड़ी रह गयीं। वह जैसे आत्म-ग्लानि के भाले लिये प्रतिक्षण उसका पीछा कर रही थीं—'तुमने अपने जीवन में कौन-सा असली कारनामा किया है—?' यह प्रश्न उसके चारों ओर शून्य दिशाओं में बार-बार गूँज उठता था और वह एक दयनीय अवस्था में 'कुछ' करने के लिए पश्चिमी पंजाब के भीतरी भागों में इधर-से-उधर भागता फिर रहा था, परन्तु कहीं भी उसे अपना कर्तव्य-क्षेत्र न मिल रहा था...

उसे दिशा का ठीक-ठीक ज्ञान न रहा था, बल्कि ज्ञान तो उसे ऊषा की मृत्यु के बाद अपना भी न रहा था। उसे केवल इतना पता था कि वह एक बार रावी को पार कर आया था और दूसरी बार अभी कोई और नदी उसकी राह में न आयी थी।

* * *

जिन गाँवों में वह गया, वह सब उजड़े हुए थे।

पंजाब के वह जवान गाँव, जिनके खेतों में जवानी लहराती रहती थी, जिनके कुँओं से पानी निकालनेवाले बैल वहाँ के छैले युवकों की मधुर-मधुर वंशलियों की ताल पर अपने पैरों में बंधे हुए घुँघरू बजाते हुए चला करते थे, और जहाँ वायु-मण्डल में वारसशाह के लिखे हुए उस महाकाव्य 'हीर' के पद कुछ इस प्रकार तड़पा करते थे कि उन्हें सुनकर वृद्धों की रगों में युवा के सारे प्रणय फिर से जाग उठते और रोटी लेकर खेतों को जाती हुई युवतियों के सीनों में नयी-नयी उमंगें धक-धक करने लग जातीं—उन्हीं गाँवों पर आज श्मशान की-सी मुर्दनी छायी हुई थी। यों दिखायी देता था कि किसी अनदेखी जालिम शक्ति ने उन हँसते-गाते गाँवों को उजाड़ कर वहाँ मरघट और कब्रिस्तान आबाद कर दिये थे। वहाँ की वायु में मरनेवालों की चीखें और बचनेवालों की आहें भटकती फिर रही थीं और धरती पर मरनेवालों का रक्त और बचनेवालों के अश्रु...

इन देहातों में लोग अब भी रहते थे जो शक्ल-सूरत में आदमी दिखायी देते थे, लेकिन शायद उनमें इनसान एक भी न था। वे लोग इन देहातों में उसी तरह रहते थे जिस तरह जंगलों में जानवर रहते हैं—एक दूसरे को मारकर खा जानेवाले जानवर !

उनका कोई धर्म न था। वे जंगली थे और जंगल का कानून ही उनका कानून था। उन्होंने हँसते-गाते देहात को जंगलों की भाँति सुनसान कर दिया था, और दिलों की बस्तियाँ उजाड़ डाली थीं। उन्होंने शताब्दियों से अपने साथ रहनेवाले पड़ोसियों को मार डाला था और उनके साथ कत्ल कर दिया था उन सभ्य भावनाओं को, जो शताब्दियों के शिक्षण और विकास के बाद इनसान ने अपने दिल में पैदा की थीं। यहाँ तक कि अब हर ओर, हर गाँव में, और हर चेहरे पर एक वहशत बरस रही थी और बस—

रास्तों और खेतों में पड़ी हुई लाशों के चेहरों पर भी उसी वहशत की मुद्रा अंकित थी जो उनके चेहरों पर मौजूद थी, जिन्होंने केवल इसलिए उनका वध कर डाला था कि उनका धर्म अलग था। जिन औरतों और लड़कियों को वह जबर्दस्ती उठा लाये थे, उनकी निगाहों में भी वही आतंक और दहशत मौजूद थी, जो उनकी अपनी माताओं और बहिनों की निगाहों में थी, यहाँ तक कि इस बात का विवेक कर सकना भी असम्भव था कि यहाँ किस औरत से बलात्कार नहीं किया गया, किसका सतीत्व नष्ट नहीं हो गया—वहशत ने उन सब में कोई अंतर न छोड़ा था, प्रत्येक की पवित्रता बर्बाद हो चुकी दिखायी देती थी। यदि कोई अंतर था तो केवल इतना कि किसीके शरीर से व्यभिचार किया गया था तो किसीकी आत्मा से, और दोनों ही भ्रष्ट और कलंकित थीं...

दिशा और काल के ज्ञान से बेपर्वाह वह उन स्थानों से गुजरता चला गया। मनःस्थिति और बाहरी वेशभूषा के लिहाज से जो विक्षिप्तता, जो दीवानापन उसके चेहरे पर स्पष्ट था, उसके कारण वह दीवानों की उस

दुनिया ही का एक व्यक्ति दिखायी देता था, चुनांचे सबने उसे अपने में से एक समझा और वह बिना रोक-टोक आगे बढ़ता गया...

* * *

बालक अब तक सो गया था। वही नौजवान औरत उसे खामोशी से अन्दर ले आयी और फिर उसके लिए बने हुए स्थान पर उसे सुलाने के लिए थोड़ी देर के लिए उसके साथ लेट गयी।

"यह फिर.. " वह कुछ पूछने ही लगा था कि लड़की ने ओठों पर अंगुली रखकर उसे चुप रहने का इशारा किया।

आनन्द चुप होकर उसकी ओर देखने लगा। वह किस प्यार से बालक को बड़ी शान्ति से सुलाने की कोशिश कर रही थी। बालक ने उसकी धोती के एक किनारे को थाम रखा था, जैसे वह उसकी अपनी माँ हो! और यह देखते हुए न-जाने क्यों उसके दिल में एक घुटी हुई-सी कामना जगी कि काश—यह लड़की ऊषा होती और यह बालक उनका अपना बालक—!

उसने जोर से सिर झटककर इस विचार को दूर भगाने की कोशिश की, वह स्वयं भी तो ऊषा ही के कारण इतनी दूर भाग आया था—अपने लाहौर से इतनी दूर, इस कैम्प तक—। और फिर उसे वह दिन याद आ गया जब इस कैम्पवालों ने उसे अपने कैम्प के निकट नदी तट पर भूख और थकान के मारे बेहोश पड़ा पाया था। जाने वह कितने दिन खाये-पिये बिना ही चलता रहा था, यहाँ तक कि वह थककर एक नदी के किनारे ठंडी-ठंडी रेत में लेट गया था। और उसके बाद जो उठा है तो उसने अपने आप को इसी तम्बू में पाया......

एक ही वार में सिर उतर जाये, नहीं तो याद रखो टुकड़े-टुकड़े करके तुम्हारी जान निकालूँगा।"

यह कहते हुए उसने आनन्द को बाजू से पकड़कर उकड़ूं बिठाने की कोशिश की, आनन्द ने कोई आपत्ति नहीं की; परन्तु उसकी अपनी ही जल्दी और घबराहट से आनन्द की कमीज बाजू से फट गयी, जाने क्या हुआ कि उस सिख ने फौरन उसका बाजू छोड़ दिया—

"तुम्हारे बाजू पर 'ओ३म्' खुदा हुआ है, तो क्या तुम हिन्दू हो?"

"हाँ" आनन्द ने कुछ न समझते हुए कहा।

"तो पहले क्यों नहीं बताया। अभी नाहक की मौत मर जाते।"

परन्तु इतनी देर तक आनन्द कमजोरी के मारे आँखें बन्द करके लेट गया था। सिख ने अपनी किरपान म्यान में डाली और उसे अपनी पीठ पर उठाकर पास ही एक मकान के अन्दर ले गया।

वहाँ कुछ खाने-पीने से जब उसमें उठने-बैठने की शक्ति लौट आयी तो उस सिख ने अपनी पहली कार्रवाई का औचित्य समझाते हुए उसे बताया कि "यह हमारा गुरुद्वारा है, जिसे बरबाद करने की मुसलमानों ने पूरी कोशिश की है, हम यहाँ गुरू के चार ही सेवक थे, जिनमें से तीन एक हमले में मारे जा चुके हैं, मुझे भी वह मुर्दा समझकर छोड़ गये थे, परंतु, गुरु की कृपा थी, उन्हें अभी अपनी सेवा करानी थी, सो मैं बिलकुल बच गया, और आज तक जबकि दूर-दूर तक के सब गुरुद्वारे जल चुके हैं, इस गुरुद्वारे में सेवा बराबर हो रही है। यह चूँकि रास्ते से बहुत हटकर है, इसलिए कोई इधर से गुजरता ही नहीं और किसी को इसका ख्याल ही नहीं आया। आज तक केवल दो मुसल्मान इधर से गुजरे थे, लेकिन मैंने उन्हें किसीको जाकर बताने के योग्य ही नहीं छोड़ा। तुम्हें अभी दिखाऊँगा उनकी लाशें—अभी तक पिछवाड़ेवाले खेत में पड़ी सूल रही हैं, मुर्दे खा-खाकर कुत्तों के पेट भी

इतने भर चुके हैं कि वह भी अब दूर पड़ी हुई किसी लाश को खाने नहीं आते।"

यह कहते-कहते वह उसे अपने साथ बाहर की ओर ले जा रहा था, चलते-चलते वह कहता गया, "तुम्हें देखकर मैं खुश हुआ था कि चलो एक और शिकार आज मिला, मेरे तीसरे साथी का बदला भी पूरा हो जायगा। फिर जब तुमने ऊटपटांग उत्तर दिये तो मैं समझ गया कि तुम दरअसल गुरुद्वारे का हानि पहुँचाने के विचार से आये हो।"

"और तुम डर गये—" आनन्द ने पूछा।

"हाँ, डर ता गया था। मुसलमान का क्या भरोसा। मुझे यकीन था कि जरूर कोई हथियार तुम्हारे पास होगा...यह देखो यह पड़े हैं दोनों" उसने अचानक दो लाशों की ओर इशारा करते हुए कहा।

उनमें से एक बूढ़ा था। लबें ठीक शराअ के अनुसार कटी हुई और बाल किंचित् लम्बे थे, उसके माथे पर नमाज के सिजदों का निशान पड़ गया था और गले में पड़ी हुई जाप की माला खिसककर बाहर को निकल आयी थी। उसका चेहरा देखकर न जाने क्यों आनन्द को वह मौलाना याद आ गये जिन्होंने उन तीनों लड़कियों को मुक्ति दिलायी थी। उसने घबराकर उस पर से दृष्टि हटा ली।

दूसरी लाश एक सुकुमार लड़के की थी जिसकी मसें अभी-अभी भीगी थीं और ओठों के ऊपर नन्हें-नन्हें बालों की रेखा बड़ी सुन्दर लगती थी। मृत्यु के बाद शव के अकड़ जाने के बावजूद उसके अंगों में एक सुकुमार कोमलता अब भी झलक रही थी। उसके एक-एक अंग में एक माधुर्य्य, एक लचकीली-सी कोमलता अभी तक इस प्रकार जाग्रत थी मानों अभी-अभी उसकी मा ने उसके सारे शरीर पर वात्सल्य और स्नेह से काँपता हुआ हाथ फेरकर कोई बड़ा ही प्यारा आशीर्वाद दिया हो—"जुग-जुग जियो बेटा—बड़ी सुंदर बहू पाओ—" और उसके शरीर में एक रोमांच-सा जाग उठा हो ..

"बस एक-एक झटका भी बर्दाश्त न कर सके दोनों", सर्दारजी ने उनके शरीर की कोमलता का उपहास करते हुए कहा।

"सर्दार जी, आप फौज में भर्ती क्यों नहीं हो जाते?" आनंद ने सहसा पूछा।

"वाह गुरू का नाम लो जी! हम गुरू के भक्त हैं। उनकी भक्ति और सेवा ही अपना धर्म है। हम फौज में भर्ती क्यों हों—?"

"क्योंकि आपका गुरू की भक्ति पर विश्वास नहीं।"

"विश्वास क्यों नहीं! यदि ऐसा न होता तो इतने महीनों से मैं यहाँ इस खतरे में क्यों पड़ा रहता?"

"परंतु आपको तो गुरू और उसकी भक्ति से अधिक अपनी किरपान पर विश्वास है—!"

इसके बाद वह बहुत देर वहाँ न ठहर सका था...

* * *

और फिर एक दिन जब वह इसी प्रकार एक दरिया के किनारे थक कर गिर पड़ा था तो उसे पता न था कि आखिर उसकी मंजिल आन पहुँची थी।

जब उसे होश आया तो उसने अपने आपको उस कैम्प में पाया। असल में यह कोई बाकायदा सरकारी कैम्प न था, बल्कि उसकी नींव इसी प्रकार कुछ भटके हुए, अपनी जान बचाने के लिये भागते हुए लोगों के एक जगह मिल जाने से पड़ गयी थी। वहाँ विभिन्न प्रकार के और विभिन्न इलाकों से लोग आकर जमा हो गये थे। उनमें से बहुधा तो प्रांत के उन सुदूर भागों से आये थे, जहाँ मुकम्मल कत्ले-आम हुआ था और उस कत्ले आम में से कोई एक आध किसी प्रकार बच कर भाग आया था। कुछ ऐसे भी थे जो काफिलों से बिछड़ गये थे—थककर बैठ गये थे या बीमार हो गये थे—और काफिलेवाले उन्हें उसी तरह छोड़ कर आगे चले गये थे। यह सब भटके हुए, बिछुड़े हुए लोग,

जिनमें से हरेक अकेला था, यहाँ आकर जमा हो गये थे। उनमें कोई भी किसी का कुछ न था, परंतु यों प्रतीत होता था जैसे माला के मनकों की भाँति वह अब मुसीबत के एक ही धागे में पिरो दिये गये थे। एक ही रिश्ते ने उन सबको इकट्ठा कर दिया था, और अब हर कोई एक दूसरे का कुछ न कुछ अवश्य था, और कुछ नहीं तो हर कोई एक दूसरे के दुःख में भाग तो लेता था ; जैसे उनके पुरखा उनके लिये जायदाद के तौर पर एक विराट दुःख छोड़ गये हों और यह सब उनकी औलाद पुरखों की उस जायदाद में एक दूसरे की भागीदार बनने आज यहाँ जमा हुई हो।

एक दूसरे की कहानी हर कोई सुनता था, और यह सुनने-सुनाने का सिलसिला इतना लंबा हो जाता, और दोनों पक्ष उस कहानी में इस तन्मयता से डूब जाते, और फिर दोनों इस प्रकार एक रंग होकर उसमें से बाहर निकलते कि यह निर्णय करना मुश्किल हो जाता कि वह घटना वास्तव में किस पर घटी थी। यहाँ तक कि होते-होते यह प्रतीत होने लगता जैसे सामूहिक दुःख की भट्ठी में से पिघलकर निकलने के बाद मानवी भावनाओं के उस उबलते हुए लावे को किसी एक ही साँचे में ढालकर सब एक ही प्रकार के बुत बना दिये गये थे। या फिर वह सब किसी एक ही क्लासिक ट्रेजेडी के हीरो दिखाई देते थे......

विभिन्न शहरों, विभिन्न जातियों और विभिन्न घरानों के इन व्यक्तियों की इस 'एकता' को देखकर आनन्द ने चाहा था कि काश स्पेन में लड़ने वाले 'इंटर्नेशनल ब्रिगेड' की भाँति यह कैम्प मजलूमों और पीड़ितों का एक अन्तराष्ट्रीय कैम्प होता, जहाँ हर कौम, हर देश और हर धर्म के पीड़ित इसी भाँति एकत्र होकर एक हो जाते। उस सूरत में यह एकता कितनी बड़ी नैतिक शक्ति होती। शायद एक ही ऐसा कैम्प संसार भर की जालिम ताकतों की नींव हिला देता। मजलूमियत, आत्म-पीड़ा और अहिंसा के हथियार से लड़नेवाली यह सेना हमारे महानतम मानव के

स्वप्न का शुभ फलादेश बन जाती......परन्तु अफसोस ऐसा न था! इस नारकीय भट्ठी का यह कोना भी किसी एक धर्म के लिए मानों रिजर्व करा लिया गया था। किसी दूसरे धर्म के मजलूमों और पीड़ितों को उनके साथ मिलकर दुःख सहने की भी अनुमति नहीं दी जा सकती थी। और अपना यह अधिकार साबित करने के लिए, अपने इस पीड़ा स्थान को भी दूसरों की दृष्टि से छिपाये रखने के लिए उन लोगों ने भी इस ओर से भूलकर गुजरते हुए चार मुसलमान मुसाफिरों को कत्ल करके उस दरिया में बहा दिया था, जो दोनों मजहबी देशों की साझी जायदाद था—जिसके एक किनारे पर एक धर्मवालों ने अपनी ठेकेदारी कायम कर रखी थी और दूसरे तटपर दूसरे मजहबीवालों ने। परन्तु जीवन की भाँति बहते हुए उस दरिया की लहरों के दो टुकड़े उनसे न हो सके थे। उसकी लहरें दोनों कटे हुए किनारों के बीच सिलाई के टाँकों की भाँति इधर से उधर आ-जा रही थीं। दोनों किनारों से उसमें हजारों लाशें फेंकी गयी थीं, परन्तु उसने धर्म और मजहब के भेद-भाव बिना उनको एक-दूसरी की गोदी में डाल दिया था। कई जीवित इन्सान उसने एक किनारे से लेकर दूसरे किनारे को सौंप दिये थे। यह लड़की, जो इस समय आनंद के सामने ही एक कोने में उस बालक को सुलाती-सुलाती स्वयं भी सो गयी थी, यह भी तो इसी प्रकार इन्हीं लहरों की गोद में बहती-बहती इस किनारे पर आ लगी थी और फिर जब कई घंटों के बाद उसे होश आया था, उस समय आनंद उस पर झुका हुआ उसकी बाँहों को ऊपर नीचे करके उसकी साँस चलाने की कोशिश कर रहा था, तो उसने आँखें खोलकर उसे देखते ही कुछ-कुछ विस्मय और कुछ-कुछ आनंद के मिले-जुले स्वर में पूछा था—"आप—? क्या आपने मुझे क्षमा कर दिया—?"

जब आनंद कुछ न समझ सकने के कारण कुछ न बोला तो उसके चेहरे पर फिर जैसे वेदना की कालिमा छा गयी।

उसने फिर पूछा "नहीं—? ओह..." और फिर वह एकदम

से फूट पड़ी, और उसने बेतहाशा रोना शुरू कर दिया—मानों नदी का सारा पानी उसके पेट में नहीं, उसकी आँखों में भर गया हो।

आनन्द चुपचाप उसकी बाँहों को उसी प्रकार ऊपर नीचे करता रहा।

"तो फिर आपने मुझे नदी से निकाला क्यों? मुझे डूब क्यों न जाने दिया?" वह कहे जा रही थी और रोये जा रही थी, कि इतने में पास ही सोये हुए छोटे बालक ने रोना शुरू कर दिया था। उसे सुनते ही वह तड़प कर उठी—"प्रेम—! मेरा प्रेम—! यह क्यों रोता है? कहाँ है वह—?"

और जब आनन्द ने उसे न छोड़ते हुए यह कहकर उसे जबर्दस्ती लिटाये रखने की कोशिश की कि "आप लेटी रहिये, उठना अभी ठीक नहीं।"

तो उसने एक झटके में अपनी बाँहें छुड़ा लीं। आँसुओं की झालर के अन्दर से भी उसके चेहरे पर एक आवेशपूर्ण क्रोध की लालिमा आँधी के मुकाबले पर जलनेवाली दीपशिखा की भाँति फड़कती दिखायी दी और वह कहने लगी—"क्या आप मुझे अपने बेटे से भी मिलने नहीं देंगे? यह नहीं हो सकता—यह नहीं हो सकता। देखिए वह कैसा रो रहा है..." और वह उठकर विद्युत् वेग से उसके पास पहुँची और लड़के को उठाकर अपनी छाती के साथ जोर से भींच लिया।

आनन्द इस दृश्य को सहन न कर सका और जल्दी से बाहर निकल गया। उसे यों निकलते देखकर उसने बड़े संतोष से कहा—"जाइए, आप मेरा मुँह नहीं देखना चाहते, न देखिए। आपके लिए मैं कलंकिनी हो गयी हूँ, मगर मेरा बेटा तो मुझे ऐसा नहीं समझता। उसे मेरी जरूरत है, मां की जरूरत है। वह किसी के तानों से नहीं डरता। उसे बिरादरी की लाज से मां का दूध अधिक प्यारा है।"

और सचमुच ही जब उसने अपना स्तन बालक के मुँह में दिया तो वह कई दिन का तरसा हुआ बालक गटर गटर दूध पीने लग गया।

वह नन्हा बालक जिसे उसने आते ही अपना प्रेम समझकर एक बार दूध पिलाया था, धीरे-धीरे सूख रहा था, वह उस लड़की से एक ही दिन पहले वहाँ लाया गया था। एक नौजवान किशनचंद उसे गोदी में उठाये हुए जब उस कैम्प तक पहुँचा था तो वह थकन के मारे बेहाल हो रहा था।

उसने आनंद को बताया था कि "यह उसकी बहन का लड़का था। उसकी बहिन को मुसलमान जबर्दस्ती उठाकर ले गये थे, और जाते हुए उनमें से एक ने यह कहकर उसकी गोदी से यह बालक छीन लिया था कि—

'इस सर्टिफ़िकेट को साथ कहाँ लिये जा रही हो। इसके साथ तो तुम्हारा मूल्य आधा भी नहीं रहता।'

"और यह कहकर उन्होंने इस बच्चे को मार डालना चाहा, परंतु मेरी बहिन चिल्लायी कि 'इसे न मारो—भगवान के लिए इसे न मारो, तुमने इसके पिता को मार डाला, अब यही एक उसकी निशानी रह गई है, भगवान के लिए इसे न मारो, इस निशानी को जीवित छोड़ दो। मैं तुम्हारे साथ जहाँ कहोगे चलूँगी, परंतु इसे जीवित छोड़ दो...'"

'बिल्कुल आराम से चलोगी? कोई गड़बड़ तो नहीं करोगी?' उन्होंने पूछा।

"हाँ" मेरी बहिन ने इतना ही कहा और कपड़े में मुँह छिपा लिया। उन्होंने उस बालक को वहीं सड़क पर फेंक दिया और मेरी बहिन को लेकर चले गये। उसने कुछ दूर जाकर एक बार मुँह फेरकर, सड़क पर पड़ी हुई इस नन्हीं जान की ओर देखा, जो चोट खाकर भी उठने की असफल चेष्टा कर रहा था, और वहीं पछाड़ खाकर गिर पड़ी। मर गयी या ज़िंदा रही, इसका मुझे पता नहीं; परंतु दो आदमी उसे पीठ पर लादकर ले गये,—अब इस बालक को बचाइये, किसी तरह इसे बचा लीजिये, मैं दो दिन से इसे लिये-लिये चल रहा हूँ। इन दो दिनों में

दूध की एक बूँद भी इसे नहीं मिली। आप इसे किसी भी तरह बचा लीजिये..."

यह कहते-कहते किशनचंद फूट-फूटकर रोने लग गया था, आनंद ने भूख और थकन से नीम-मुर्दा हो गये उस बालक को अपनी गोदी में ले लिया था। परंतु वहाँ भी दूध कहाँ था। उन्हें तो अब अपने खाने के लाले पड़ रहे थे, क्योंकि उनके पास जो थोड़ा-बहुत खाने को था, वह भी अब समाप्त हो रहा था।

उस बालक को पानी पिला-पिलाकर एक दिन और जिला दिया गया। परन्तु इस प्रकार तो बालक जीवित नहीं रह सकता था। उसकी आवाज गले के अन्दर ही डूबती चली जा रही थी और बाहर से पता भी न चलता था कि वह रो रहा है। वह बार-बार इस प्रकार रोने के लिए मुँह खोलता, छटपटाता और हाथ-पाँव मारता कि इसी कैम्प के एक दस-बारह साल के लड़के ने उसे देखकर आनन्द से कहा—"कितना प्यारा बालक है! किस तरह चुपचाप किलकारियाँ मारकर खेल रहा है।"

इस मासूम परन्तु भीषण व्यंग्य ने यथार्थ को और भी असहनीय, और भी दर्दनाक बना दिया, और करीब था कि आनन्द का धैर्य भी टूट जाता। उस मूक परन्तु असीम वेदना के दृश्य को देखकर उसे अपने हाथों मार डालने की एक दानवी इच्छा उसके अन्दर बार-बार प्रबल हो उठती और बार-बार वह अपनी भरसक शक्ति से उसे दबा रहा था कि इतने में डूबते को बचाने के लिए वह लड़की नदी की लहरों से एक टूटी-फूटी नाव की भाँति सहसा ही प्रकट हो गयी—और उसने होश में आते ही उस बालक को दूध पिलाना शुरू कर दिया...यहाँ तक कि बच्चे के गले में रोने का स्वर फिर से पैदा हो गया—जीवन का स्वर—और वह फिर जीवित हो गया...

* * *

परन्तु दुबारा उसे दूध कौन पिलाता।

वह लड़की तो इसके बाद किसी ध्रुव के हिमसागर की भाँति जम चुकी थी जिसे आनंद की तीखी से तीखी बातों के अग्नि-बाण भी पिघला न सके थे।

फिर दूसरा दिन आ गया।

बालक फिर बुझता जा रहा था, और लड़की का जमूद उसी तरह क़ायम था।

आनन्द ने उसके पास ही बालक की पीढ़ी को रखते हुए उसके बारे में बातें छेड़ दीं।

"इस बालक की माँ को मुसलमान उठाकर ले गये हैं और .."

परन्तु न जाने किस तरह इतनी-सी बात ने उसकी ज़बान के सारे बंधन जैसे काटकर फेंक दिये। उसने तुरन्त आनन्द की बात काटते हुए पूछा—

"तो क्या इसीलिए इसके पिता ने इस निर्दोष को भी बाहर फेंक दिया?"

"नहीं, इसका पिता तो पहले ही अपनी पत्नी की रक्षा करता हुआ मारा गया था।"

"अपनी पत्नी की रक्षा करता हुआ—?" उसने विस्मय से पूछा जैसे उसे इस बात पर विश्वास न हो। आनंद ने केवल सिर हिलाकर 'हाँ' कर दिया। फिर जैसे एकदम से सारे बन्धन खुल गये और वह बरफ के एक बहुत बड़े ग्लेशियर की भाँति पिघलती, टूटती और गिरती हुई ढलती रही, और फिर जैसे उसकी जमी हुई आँखों से कई नदियाँ फूट निकलीं।

आनन्द चुपचाप उसके पास बैठा उस जमूद के टुकड़े-टुकड़े होते देखता रहा। वह रोती रही—फूट-फूटकर; यहाँ तक कि उसमें सोचने-समझने की शक्ति फिर से लौट आयी। तब उसने प्रेम की रेखा की

परन्तु फिर भी उसकी सिसकियाँ बंद न हुईं। और इसी प्रकार सिसकियाँ लेते-लेते उसने कहा—

"हाय—ऐसी स्त्रियाँ भी होती हैं जिन्हें ऐसे पति मिलते हैं—!"

आनन्द ने मौका देखकर चोट की—"मगर ऐसे मर्द होते कितने हैं?"

"हाँ—बहुत थोड़े—!" वह फिर किसी सोच में पड़नेवाली थी कि आनंद ने फिर उसे कुरेदना शुरू किया और घावों को छेड़ता ही गया यहाँ तक कि वह उसी पिघले हुए मूड में उसे अपनी कहानी सुनाने लगी :

"हमारे गाँव पर मुसलमानों ने जब हमला किया तो प्रभात का समय था। मैं दरिया के किनारे सूखी टहनियाँ चुन रही थी। खेती तो उस साल हुई कहाँ थी जो सूखे डंठल घरों में मौजूद होते। हमारा गाँव दरिया के उस किनारे पर कुछ ऊपर को है। वहाँ तट बड़ा सुन्दर है और सुंबल के बड़े-बड़े वृक्षों की एक लम्बी कतार बहुत दूर तक चली गयी है। मैं बचपन में इन पेड़ों की सबसे ऊँची टहनियों पर चढ़ जाया करती थी, और फिर दूर तक नदी की चमकती हुई लकीर को देखकर बहुत खुश हुआ करती थी। मैं नदी में तैरा भी बहुत करती थी। जब मैं तेरह-चौदह वर्ष की थी तो एक ही साँस में नदी के आर-पार तैर सकती थी..."

वह कई असम्बद्ध बातों के टुकड़े इस प्रकार जोड़ती चली जा रही थी जैसे वह किसी मीठे स्वप्न के बीच बड़बड़ा रही हो। और आनंद को तो उस समय नदी की वह बल खाती हुई चमकती लकीर और सुंबल के पेड़ों की लंबी कतार और उसकी टहनियों से झूमते हुए नुकीले लाल फूलों के बीच किसी कोमल-सी लता की भाँति झूलती हुई एक नन्हीं-सी बालिका—जैसे यह सब कुछ आनन्द को उस समय उसकी आँखों में झूलता हुआ दिखायी दे रहा था। वह उन स्वप्निल से नेत्रों में होनेवाले उस नाटक को बस देखे जा रहा था, यहाँ तक कि उस लड़की को भी इस बात का आभास हो आया...

और फिर जैसे अचानक ही उसका स्वप्न भंग हो गया, लड़ियाँ जैसे [illegible] में बिखर गयीं ; और वह रोमाण्टिक आसमानों से उतरकर फिर [illegible] सत्य की मिट्टी कुरेदने लगी—

"मुसलमान नदी के उस पार से नावों में बैठकर हमारे गाँव पर [illegible] हमला करने गये थे। मैं लकड़ियाँ चुनती-चुनती किनारे के बिल्कुल समीप आ गयी थी। मेरे पति भी थोड़ी ही दूर पर इसी काम में लगे हुए थे। मैंने नावों को उधर आते नहीं देखा। मैंने केवल कुछ आवाजें सुनीं कि—

'सुब्हान अल्लाह—क्या जवान छोकरी है !'

'भई बिस्मिल्ला तो बहुत अच्छी है।'

"......मैं ने जो घूमकर देखा तो तीन-चार हट्टे-कट्टे मुसलमान छोटी-छोटी कुल्हाड़ियाँ लिये मेरी ओर बढ़ रहे थे। बीसियों अभी नावों से उतर रहे थे और उनके पीछे अभी कई और नावें आ रही थीं।

मेरी चीख निकल गयी और मैं लकड़ियाँ फेंककर अपने पति को आवाज़ें देती हुई एक ओर को भागी, परन्तु मैंने देखा कि मेरा पति मुझसे भी पहले भागना शुरू कर चुका था, और अब तक बहुत दूर निकल गया था ; उसने शायद मुझसे पहले उनको उतरते हुए देख लिया था [illegible] मुझे बचाने की बजाय वह अपनी जान बचाकर भाग गया था।

मैं भी अपनी पूरी शक्ति से भागी, परन्तु ....."

और वह थोड़ी देर के लिए मौन हो गयी।

o o o

जब उसने दुबारा अपनी कहानी शुरू की तो उसकी आवाज़ पहले से धीमी पड़ गयी थी :

"उसी तरह गाँव की कई दूसरी स्त्रियाँ भी उनके कब्ज़े में आ गई थीं। उनमें [illegible] बूढ़ी और नौजवान [illegible] [illegible] गाँव के [illegible] [illegible], और तब मुझे अपने पति [illegible] [illegible] आया। उसी

अपने आपको बचा लिया था और मेरे नन्हें प्रेम को भी साथ ले गया था।

मेरे साथ कुछ ऐसी औरतें भी थीं जिनके पतियों की लाशें भी उन्हीं घरों में थीं जहाँ वह पराये पुरुषों की दासता में रहती थीं, पर मैं खुश थी--मेरा पति जीवित था, और जैसे खुशी के मारे उसका गला भर आया।

हमारे गाँव पर उनका कब्जा हो गया था और एक महीना हम अपने ही घरों में उनके कब्जे में रहीं। फिर एक दिन हमने उनकी बातों में सुना कि नदी के इस किनारे के गाँव हिंदुस्तान में आ गये हैं, और दूसरे ही दिन उन्हें पता नहीं किस सेना के आने की सूचना मिली कि उन्होंने सब औरतों को इकट्ठा करके नावों में बिठाया और नदी के उस पार अपने गाँव में ले आये।

एक-एक स्त्री के गिर्द दस दस, पंद्रह-पंद्रह मर्द बैठे थे, थोड़ा-बहुत सामान जो हमारे घरों में था उसे तो वह पहले ही अपने गाँव भिजवा चुके थे। आखिरी सामान केवल हम रह गयी थीं, सो वे हमें भी ले आये।

मुझे न जाने क्यों उनके यहाँ ले जाये जाने का इतना दुःख न था जितनी खुशी इस बात की थी कि हमारा गाँव उनके चंगुल से मुक्त हो गया था। शायद इस खुशी की तह में यह आशा छिपी हुई थी कि गाँव के आजाद होते ही वह फिर अपने घर लौट आयेंगे—अपने उसी घर में, अपने उसी गाँव में, जो केवल नदी के दूसरे किनारे पर था—वह दूसरा किनारा जिसे मैं प्रतिदिन हर समय देख सकती थी—और जब से आयी थी, देखती ही रहती थी।

उन्हीं दिनों रावी में पानी बढ़ रहा था। उसका पाट चौड़ा होता जा रहा था। परंतु दूसरा किनारा जैसे मेरी आँखों के और भी निकट आता जा रहा था। हर दिन जो बीत रहा था, मेरी आँखों की शक्ति

बढ़ा रहा था और दूर होते हुए दूसरे किनारे की हर वस्तु स्पष्ट से स्पष्टतर होती जा रही थी, और......"

उसने जैसे क्षण-भर के लिए थमने की कोशिश की, परंतु कहानी के इस स्थान पर पहुँचकर एक क्षण का ठहराव भी शायद उसके वश में न था और वह कहती चली गयी—

"और फिर एक दिन मैंने अपने प्रेम को नदी-तट पर खेलते देखा। वह अकेला था, उसे अभी तक अच्छी तरह चलना भी नहीं आया, चुनांचे दो पग चलता और फिर गिर पड़ता। उसका पिता शायद पास ही लकड़ियाँ चुन रहा था। मुझे उन पर क्रोध हो आया। नदी की लहरें बिफरी हुई थीं। बाढ़ आने के चिह्न थे, और उन्होंने उसे खेलने के लिए किनारे पर अकेला छोड़ दिया था। जब तक मैं वापस न पहुँचूँ, क्या उन्हें उसकी रक्षा भी अच्छी तरह न करनी चाहिए थी। मैं तड़प उठी, मैं एक बार वहाँ जाकर उनसे कह आना चाहती थी कि जब तक मैं लौट न आऊँ, प्रेम को इस प्रकार नदी पर अकेला न छोड़ दिया करें। परंतु वहाँ एक बार इतनी-सी देर के लिए भी जाना सम्भव कहाँ था। मैं और मेरी तरह हर औरत उन बहशियों के बीच जकड़ी हुई थी।

उसने उठकर पानी पिया, पर फिर भी जब उसने दुबारा अपनी बात शुरू की तो जैसे उसका गला बैठा हुआ था। आनंद बुत की भाँति चुप बैठा बस सुनता रहा, और वह इस प्रकार कहती रही जैसे वहाँ कोई दूसरा सुननेवाला था ही नहीं और वह अपने आपको सुना रही थी—

उसे अभी साफ बातें करना तो कहाँ आया था। परंतु जब वह मेरे वापस जाने पर अपनी तोतली भाषा में केवल एक शब्द में कई लम्बे-लम्बे वाक्यों का आशय भरकर मुझसे पूछेगा—"मुसलमान?" तो मैं उसे क्या उत्तर दूँगी, और अब वह क्या सोच रहा होगा, उसी सुंबल के मोटे तने के इर्द-गिर्द वह अपनी माँ को कहाँ ढूँढ़ रहा होगा? वह किस प्रकार मुझे बुला रहा होगा—माँ-माँ!

"माँ वारी जाए बेटा"—अनायास ही मेरे मुँह से निकला, परंतु उस तक मेरी आवाज न पहुँच सकी और मैं बेचैन हो उठी।

इतने में और अंधेरा हो गया कि वह लड़खड़ाता हुआ चलने की कोशिश में किनारे के पास ही गिर गया। पानी की लहरें उसके बहुत निकट तक आ रही थीं, चुनांचे मुझसे और नहीं सहा गया; और ं उस दोमंजिले मकान खिड़की से, जहाँ से यह सब कुछ देख ी थी, पलक झपकते में साथवाले एकमंजिले मकान की छत पर द गयी।

वह घास की छत कहाँ से टूटी और मैं कहाँ-कहाँ से फिसली, मुझे कुछ ा नहीं। केवल इतनी सुध है कि धरती पर जहाँ गिरी, वहाँ बहुत-सा ड़ और गारा था। परंतु रुकने का अवकाश ही कहाँ था। चुनांचे ना कुछ सोचे-समझे नदी की ओर भागने लगी।

मैं अपनी पूरी शक्ति से तैर रही थी, पर निगाहें उसी ओर लगी हुई और क्या देखती हूँ कि वह भागे हुए आये और उन्होंने प्रेम को से उठाकर गोदी में ले लिया। बस, मेरे प्राणों में प्राण आये। ट का आभास होने लगा। और उसके साथ ही जिस किनारे से थी उस किनारे पर एक कोलाहल सुनायी दिया। सिर घुमाकर तो सारे गाँव के मुसलमान तट पर इकट्ठे हो गये थे। एक नाव की जा रही थी और कई प्रकार की आवाजें आ रही थीं। तब े इस बात की गम्भीरता का एहसास हुआ कि मैंने क्या किया -

', और यह कि अब अगर मैं पकड़ी गयी तो उसका परिणाम क्या हो सकता है।

सबकी निगाहें मुझ पर थीं। चुनांचे मैंने तैरना छोड़ दिया और [illegible] खाने शुरू कर दिये। और फिर एक ऐसी लम्बी डुबकी लगाया कि उन्हें यह विश्वास हो जाय कि मैं वास्तव में डूब गयी हूँ।

बीच में मैंने साँस लेने के लिए जब एक-दो बार सिर निकाला तो देखा कि प्रेम अपने पिता की गोद में बैठा घर की ओर लौट रहा है। मेरा जी चाहा कि उन्हें ज़ोर से आवाज दूँ कि "ठहरो—मैं भी आ रही हूँ। एक दिन जिस जगह पर तुम मुझे खो गये, आज उसी जगह से इकट्ठे वापस घर चलेंगे—" परन्तु फिर इस किनारे के मुसलमानों का ध्यान आता और मैं बहाने के तौर पर डूबनेवाले की भाँति हाथ-पाँव मारने लगती और फिर गोता मार जाती।

दो-तीन बार ऐसा करने के बाद जब मैंने दुबारा ठीक तरह तैरना शुरू किया, तो मुझे पहली बार यह बात खटकी कि मैंने कई दिनों से पेट-भर खाना नहीं खाया और कि मुझमें अब वह शक्ति नहीं रही। [illegible] तक पहुँच चुकी थी, परन्तु इसके बाद मुझे यों महसूस हुआ जैसे अब मुझसे और न तैरा जा सकेगा। उस मकान से कूदने के कारण भी शायद कुछ चोटें लगी थीं जो ठण्डे पानी में उभर आयी थीं। पर फिर मुझे प्रेम का ध्यान आया, उनका ख्याल आया, और मैं सोचने लगी कि मुझे देखने की चाह किस तरह मेरी छातियों से चिमट जायगा और गटक-गटक करके दूध पीना शुरू कर देगा—और मुझे यों लगा जैसे मैं बाँहों के ज़ोर पर नहीं बल्कि अपनी छातियों के ज़ोर पर तैर रही हूँ।

* * *

मैं दूसरे किनारे पर पहुँची तो सवेरा होने आयी थी, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था। परन्तु फिर भी दूसरे किनारे पर पहुँचने की [illegible] [illegible], सारी परेशानी दूर हो गयी थी। मैं [illegible]

स्वतन्त्र हो गयी थी और अपने हिंदुस्तान की धरती पर पहुँच गयी थी। मेरी आत्मा उल्लास के मारे थरथरा उठी। उस समय मेरे मन की क्या हालत थी, मैं कह नहीं सकती। बस यों मालूम हो रहा था जैसे कोई उसके अन्दर बैठा खुशी के मारे नाच रहा हो, और मैं गीले कपड़ों के बोझ के बावजूद तेजी से अपने गाँव की ओर भाग रही थी। गीले कपड़े एक दूसरे से अटकते रहे। पैर ऊबड़-खाबड़ धरती पर टेढ़े-मेढ़े होकर पड़ते रहे, परन्तु मैंने एक भी ठोकर नहीं खायी, एक बार भी नहीं फिसली; और भागती चली गयी।

* * *

हमारे गाँव में कई दीप जल रहे थे, जैसे मेरे आने पर दीपमाला की गयी हो। और उन सबसे ऊपर हमारे दोमंजिले मकान का प्रकाश दिखायी दे रहा था। उस गाँव में केवल हमारा ही मकान दोमंजिला है। मेरे ससुराल वाले कई पीढ़ियों से यहाँ साहूकारे का काम करते चले आ रहे हैं, चुनांचे आस-पास के देहात में सब उन्हें जानते हैं।

मैं अपने घर के निकट पहुँच रही थी और सोच रही थी कि कल आस-पास के गाँवों से कई लोग उन्हें बधाई देने आएँगे। उनकी बहू जालिमों के पंजे से बचकर निकल आयी थी। लोग उसकी वीरता और साहस के चर्चे करेंगे। दूर-दूर से स्त्रियाँ मुझे देखने आएँगी—जो इस प्रकार अकेले उस लहू की नदी को चीरकर जीवित निकल आयी थी। और प्रेम—! वह भी तो केवल एक ही शब्द में कितने ही प्रश्न भर कर पूछेगा—"मुशल्मान- —?"—तो?

मैंने सोच लिया था कि मैं आज रात अपने पति से नहीं बोलूंगी। उन्होंने उस बालक को यह सब कुछ क्यों बताया। उन्होंने यह क्यों न कह दिया कि वह तुम्हारी नानी के यहाँ गयी है। परन्तु फिर यदि वह जवाब देंगे कि 'मैं यह कैसे कह देता, तुम्हारी माँ तो स्वयं तुम्हें ढूँढ़ने यहाँ आयी थी। वह प्रेम को गोदी में लेकर कितनी देर तक रोती रही।'

लकड़ी के एक टुकड़े की भाँति चुभने लगी। मैं उत्तर क्या देती? मैं उन्हें क्या बताती कि मैं क्या करने आयी हूँ...

इतने में मेरे ससुर की खड़ाऊँ की आवाज़ आयी। वह सदा की भाँति राम-नाम का पटका लपेटे आँगन में आये। मैंने आगे बढ़कर उनके चरण छुए, परन्तु उन्होंने आशीर्वाद भी नहीं दिया। अपने बेटे की ओर एक बार प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा, फिर मेरी ओर, और फिर उनके मुँह से निकला—"राम-राम।" मानो मेरे अपवित्र स्पर्श के पाप से बचने के लिये वह 'राम-नाम' की शरण ढूँढ रहे हों।

उसके बाद एक मृत्युप्राय नीरवता छा गयी। हम तीनों एक दूसरे की ओर देखने से कतरा रहे थे। मुझ में प्रतिक्षण न जाने कौन से पाप की छाया छाती चली जा रही थी, और किसी आतंरिक ग्लानि में मैं डूबती चली जा रही हूँ। यहाँ तक कि मुझे उस भयानक निस्पंद मौन, उस निराट नीरवता के बीच [illegible] होने लगा और जिसने [illegible] भी मुझे [illegible] मेरे शरीर के एक-एक भाग पर आग दी हो।

"हिश्त—धीरे-धीरे" मेरे ससुर ने धीमे स्वर में कहा—"आसपास के लोग जाग जायँगे। उन्हें तो यह पता है कि तुम मर चुकी हो।"

"झूट है। उन्हें पता है कि हमारे गाँव की लड़कियाँ वह उठाकर ले गये थे।" मेरी जबान चलनी शुरू हो गयी थी।

"ठीक है, मगर हर कोई यही कहता है कि उसकी बेटी या बहू ने नदी में डूब कर अपनी लाज बचा ली।"

"तो क्या अब उनमें से कोई भी अपनी लड़की को वापस नहीं लाएगा।"

"मुर्दों के भूत घर में कौन रखता है!"

"हे राम! कितना घोर अन्याय है!" और मैं रोने लग गयी।

"अन्याय नहीं, संसार का व्योहार ही ऐसा है। इज्जत-आबरू के बिना यहाँ कोई जीवित नहीं रह सकता।" मेरे ससुर मुझे बड़े आराम से समझा रहे थे, "तुम तो प्रतिदिन रामायण पढ़ा करती थीं, क्या स्वयं भगवान रामचन्द्र ने भी अपने कुल की लाज के लिये सीता को घर से नहीं निकाल दिया था—और फिर माता सीता तो सती थीं?"

"माता सीता तो सती थीं...!" यह कह कर जैसे असहनीय व्यंग्य का एक नया अंगारा मेरे शरीर पर रख दिया गया था, जिससे वह सारे कलंक के दाग फिर से दहकने लग गये। रामायण लिखनेवाले ऋषियों के लिये मेरे मन से एक शाप निकला। क्या उन्होंने इसीलिये रामायण लिखी थी, क्या इसीलिये हिंदू स्त्रियों को प्रतिदिन रामायण पढ़ने को कहा जाता है, क्या उन ऋषियों ने इसीलिये हर पति को भगवान बना दिया था कि उनके हर अत्याचार को मर्यादा की पुष्टि मिल जाए!—और वह मेरा मर्यादा पुरुषोत्तम पति चुपचाप खड़ा सुन रहा था।

मुझे उस पर रत्ती भर क्रोध नहीं आया। जो व्यक्ति अपनी आँखों के सामने अपनी पत्नी को दूसरों के घेरे में फंसता देखकर स्वयं कायरों

की भाँति भाग सकता था, वह अब उसे अपने कुल की लाज के हाथों बर्बाद होता देखकर और कर भी क्या सकता था।

घर से निकालते हुए मेरे ससुर ने मुझे शाबाशी दी कि तुमने यह बड़ी बुद्धिमत्ता दिखायी कि रात के अंधेरे में यहाँ आई हो, नहीं तो इतने बड़े घराने की लाज मिट्टी में मिल जाती।

आते हुए उसने मेरी ढाढ़स बँधाने के लिये यह भी कहा कि दुखी होने की कोई बात नहीं। हमने उनसे पूरा बदला ले लिया है, जितनी औरतें हमारा गाँव की वे उठा ले गये थे, उनसे कहीं अधिक संख्या में हम उनकी औरतें गाँव में ले आये हैं।

"और, उन्हें अपने अपने घरों में बसा लिया है?" मैंने चिढ़कर पूछा।

"हाँ उन्हें अपने घर में रखना तो गर्व की बात है," मेरे ससुर की छाती गर्व से फूल उठी थी, और उन्होंने अंदर मकान की ओर संकेत करते हुए कहा—अपने यहाँ भी दो हैं।"

मैं और अधिक कुछ नहीं सुन सकी। मुझे यूँ महसूस हुआ जैसे मैं अभी तक हत्यारों और बलात्कारियों के जाल में फँसी हुई हूँ।

मैं वहाँ से भागी—और भागती चली गई......

* * *

मैं भागती चली जा रही थी, और सोच रही थी कि आखिर मैं जा [illegible]

मैं सोच रही थी और भागती चली जा रही थी, परंतु मुझे कहीं शरण न मिल रही थी। हर जगह मुझे हिंदुस्तान की धरती दिखायी दे रही थी, और उस धरती पर जगह जगह मुझे उस औरत के लहू के धब्बे दिखाई दे रहे थे, जिसके सतीत्व को पाकिस्तान और हिंदुस्तान दोनों ने मिलकर लूटा था। इस पुण्य कर्म, इस विलासिता, इस ऐय्याशी के लिये वह दोनों एक दूसरे से मिल गये थे, और मैं उन दोनों की पहुँच से कहीं दूर चली जाना चाहती थी...

मेरे सामने रावी थी, मुझे वह भी अपनी ही तरह पाकिस्तान और हिंदुस्तान के बीच जकड़ा हुई दिखायी दी। उसको एक किनारे से हिंदुस्तान ने पकड़ रखा था और दूसरे से पाकिस्तान ने—परंतु फिर भी उसकी पवित्र लहरें अपना सतीत्व बचाने के लिये कहीं भागी चली जा रही थीं। मुझे अपनी साथिन मिल गई। मैंने सोचा कि वह मुझे भी अपने साथ बचा कर ले जायँगी। मैं बहुत थक गई थी, और मुझसे अब अकेले भागा नहीं जा रहा था। चुनांचे मैंने अपने आपको उनकी गोदी में डाल दिया, परंतु...वह भी मुझे छोड़ गई—शायद इसलिये कि मैं उसकी भाँति पवित्र नहीं थी, मेरा सतीत्व भ्रष्ट हो चुका था—

* * *

उसने कहानी समाप्त करके आनंद की ओर देखा, परंतु वह वहाँ न था। न जाने कब वह वहाँ से उठकर बाहर चला गया था, और कैम्प से परे एक वृक्ष के तने से लगा बेतहाशा रोये चला जा रहा था।

उस समय उसे ऐसा महसूस हो रहा था जैसे यह उसकी अपनी कहानी हो, ऊषा की कहानी हो, उसकी जेब में अब तक वह पत्र फड़-फड़ा रहा था जो उसने अपनी सफ़ाई में लिखा था, परंतु जिसे पहुँचाने तक का अवकाश ऊषा ने उसे न दिया था।

उस समय से अब तक अपनी कहानी वह बार बार किसी न किसी

तरह, किसी न किसी रूप में आकर उसको सुना जाती थी। पर उ
आनंद की सुननेवाला कोई न था।

अपनी तड़प को विष के एक ही घूँट से ठंडा करके वह जा
अब उसे बार बार तड़पा कर शायद अपना बदला ले रही थी। कई
उसने उस पत्र को किसी के आगे रखकर कहना चाहा था कि मुझे
करदो, तुम्हें गलतफ़हमी हुई थी। मैंने इसलिये तुम्हें नहीं छोड़ा था
परंतु हर बार ऊषा उसकी खिल्ली उड़ाती हुई उससे पहले ही कहीं गा
हो जाती। अपनी कहानी सुनाते समय वह अब मानो ऊषा ही
जबान से बोलती, परतु जब वह अपना पत्र निकालने लगता तो व
सुग़रा बन जाती और कोई अपना नाम निर्मला रख लेती ..और
उस पत्र पर अपनी पकड़ और भी मजबूत करके केवल आँखों में अ
भर कर रह जाता बिलकुल उसी तरह जिस तरह वह उस दिन वे
और चुप रह गया था जिस दिन वह उसको एक नजर तक देखे बिना
ट्रक में भरी हुई लाशों के बीच खो गई थी। परंतु आज वह चुप न
सका था, आज उसके आँसू अपने काबू में न रह सके, और वह एक
के तने से लगा हुबक-हुबक कर रो रहा था...

किसी ने कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"भय्या—!"

चौंक कर देखा तो किशनचन्द खड़ा था। शायद वह अपने भ
के बारे में कोई बुरी सूचना लेकर आया था—परन्तु वह अब क्या
सकता था? दूध के बिना बालक बच नहीं सकता था, और यह लड़
ऊषा नहीं थी, न वह उसका बेटा कि वह उसे बाध्य कर लेता...

"आपको बहुत ढूँढ़ा भय्या।"

और जब आनन्द ने केवल आँखों ही आँखों में उससे कारण पू
तो वह खुशी के जोश में कहने लगा—

"बस अब बालक बच जाएगा। अब उसे कुछ नहीं होगा...

लड़की उसे दूध पिला रही है, उसने उसे गोद में ले लिया है। तुमने उसे मनाकर मुझ पर बहुत एहसान किया है।"

और सचमुच जब उसने आकर देखा तो वह लड़की बड़े दुलार से उसे दूध पिला रही थी, और हाथों से उसके बाल सँवारती हुई उसे सुलाने की कोशिश कर रही थी—ठीक इसी तरह जिस तरह इस समय वह उसे सुलाती-सुलाती स्वयं सो गयी थी।

बालक ने अभी तक उसकी धोती के एक छोर को अपने नन्हे-नन्हे हाथों में भींच रखा था...और बिलकुल उसी का बालक प्रतीत हो रहा था...

आनन्द उन्हें देख रहा था और पिछले कई दिनों की घटनाएँ एक फिल्म की भाँति उसकी आँखों के आगे चलती, रुकती और भागती चली जा रही थीं। उसने अखबार का एक अक्षर भी न पढ़ा था। अलबत्ता इस एक-आध घण्टे में उसने कई महीनों का जीवन फिर से बिता दिया था; और वह इसमें कुछ इस भाँति खोया रहा कि उसे पता भी न चला कि सूर्य्य कब अस्त हो गया और चाँद कब आकाश की ऊँचाइयों पर चढ़ गया।

*

नवाँ परिच्छेद

हवा के एक सर्द झोंके ने उसके शरीर को थरथरा दिया। उसका कोई मीठा-सा स्वप्न पानी के बुलबुले की भाँति टूट गया। और वह घबरा-कर अपने चारों ओर देखता हुआ जैसे उसे फिर से ढूँढ़ने की कोशिश करने लगा।

चाँदनी उसके तंबू के अन्दर आ रही थी। वैसे वह तंबू ही क्या था—तीन चार लम्बी टहनियाँ धरती में गाड़कर उनके ऊपर छाया के लिए एक चादर तान दी गयी थी। इसी प्रकार की पन्द्रह बीस चादरें धोतियाँ और खेस आस पास की धरती पर भी तने हुए थे, और उन्हें लोग तंबू कह लेते थे। उनके अन्दर धूप भी आती थी और वर्षा की बौछार भी; परंतु फिर भी उन सबको उनके नीचे बैठने से एक पनाह मिल जाने की सी अनुभूति होती थी—न जाने मनुष्य अपने और आकाश के दरमियान एक पर्दा डाल लेने ही से अपने आपको सुरक्षित क्यों समझने लग जाता है—?

हवा भीगी हुई थी, और धरती भी बहुत सर्द हो गयी थी। उसे ठंड का अनुभव हुआ तो उसने उठकर एक अगड़ाई ली और अपने गिर्द लपेटने के लिये किसी चीज की तलाश में निगाह दौड़ायी। परंतु वहाँ क्या था—केवल एक फटा हुआ खेस, जिसे निर्मला ने आधा उस बालक के नीचे बिस्तर के स्थान पर बिछा कर आधा उसके ऊपर डाल रखा था। चाँदनी दोनों के चेहरों को आलोकित कर रही थी और दोनों बड़े मजे से सो रहे थे।

निर्मला प्रायः उस बालक के साथ अब उसी के तंबू में सो जाया करती थी। वैसे भी इस कैम्प में किसी के लिए भी कोई स्थान विशेष रूप में नियत न था। दुःख ने उन्हें सभ्य शिष्टाचार के नैतिक या व्यावहारिक तकल्लुफ़ से मुक्त कर दिया था। हर कोई इस हद तक स्वार्थी हो चुका था कि किसी को किसी भी प्रकार की छूट या रिआयत देने का प्रश्न ही उनके चिंतन में न आता था, चाहे वह किसी स्त्री के साथ ही क्यों न हो। और फिर स्त्री को स्त्री के रूप में वहाँ देखता ही कौन था—भूख ने उन्हें सेक्स से बिल्कुल आजाद कर दिया था। चुनांचे स्त्रियों के लिए किसी अलग प्रबन्ध का विचार तक किसी को न आया था। यों भी वहाँ केवल दो ही तो स्त्रियाँ थीं—एक निर्मला और दूसरी एक अधेड़ आयु की औरत, जो सीमाप्रान्त के किसी ज़िले की रहनेवाली थी, और जिसे उसके साथियों का काफिला इसलिये रास्ते में छोड़ गया था कि वह उनके साथ उतने वेग से नहीं चल सकती थी। उसे सब 'अनंती' कहते थे। युवावस्था में उसका पूरा नाम क्या रहा होगा जिसका संक्षिप्त रूप अब यह रह गया था, यह शायद उसे स्वयं भी याद नहीं रहा था।

बुढ़िया कहाँ सोती थी, इसका कोई ठिकाना न था। हाँ निर्मला यदि कहीं और भी सोई हुई हो तो बालक के रोते ही वह फौरन उठकर आनन्द के तम्बू में पहुँच जाती थी।

कई बार उसे और उस बालक को अपनी उस कपड़े की छतवाली खुली 'झोपड़ी' में सोया हुआ देखकर आनन्द सोचता कि—"यदि यह ऊषा और उसका बालक होते—!!" और फिर उसे याद आता कि किस तरह कई बार उन दोनों ने मिलकर सोचा था कि 'हम दोनों मिलकर सारे संसार का मुकाबला करेंगे,' और फिर हर ओर के विरोध से तंग आकर ऊषा ने कितनी ही बार उससे कहा था कि 'चलो आनन्द—इस दुनिया से कहीं दूर चले जाएँ ; यह चाँदी और सोने के बड़े बड़े भव्य

उसका हज़ारवां हिस्सा भी......"

परंतु इसी क्षण एक भयानक से अट्टहास ने मौलाना की बात काट दी, एक फटे कपड़ोंवाला दुबला सा सिख बेतहाशा कहकहे लगाता हुआ अचानक उनके सामने आ गया, और आते ही उसने आनंद से कहा—

"सुना है कि वह मुसल्ला अभी तक जीवित है—?"

"मैं यहाँ हूँ भाई।" मौलाना ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहा।

सिख ने यह सुनते ही उनकी ओर देखा। एक छोटे चम्मच भर लंबा टीन का एक टुकड़ा उसने अपने हाथ में इस अंदाज़ से पकड़ रखा था जैसे उसने कोई भाला थामा हुआ हो; और बिल्कुल भाले से आक्रमण करनेवाला पैंतरा धारण करके निकट था कि वह मौलाना पर आक्रमण कर देता कि आनंद ने झट पीछे से उसे पकड़ लिया।

"उजागर सिंह यह क्या कर रहे हो! यह वह मुसलमान नहीं है।"

और फिर किशन चंद की सहायता से बलपूर्वक पकड़ कर उसे परे ले जाया गया। वह फिर अट्टहास करने लग गया था और ऊँची आवाज में चिल्ला रहा था—"मैं बच गया—मैं बच गया।"

* * *

आनंद ने क्षमायाचना के लिये वास्तविकता उनके सामने रख दी कि—"पागल है।"

"वह तो साफ़ दीखता है।" मौलाना उसी ओर बड़े ध्यान से देखते हुए बोले, जिधर वह उसे ले गये थे और जिधर से अब भी उसके अट्टहास की आवाज आ रही थी।

आनंद ने उसका हाल बताते हुए कहा कि यह रावलपिंडी जिले का रहनेवाला है।—इनके गाँव पर भी मुसलमानों ने हमला किया था। यह मार्च महीने की बात है; जब हिंदू और सिख गाँवों का सफाया

करने के लिये मुसलमान पठान कई कई हज़ार के जत्थे बनाकर फिरा करते थे।

इसी प्रकार का एक जत्था इनके गाँव की ओर भी आया, दूर से उनके ढोल ढमाकों की आवाज जब उनकी ओर बढ़ने लगी तो यह लोग समझ गये कि अब हमारी बारी है, चुनांचे उनके गाँववालों ने मिलकर आपस में जल्दी जल्दी परामर्श किया ; और उसके बाद अपने सप्रदाय की परम्परा के अनुसार बड़ी वीरता से मरने की तैयारियाँ होने लगीं।

आसपास के गाँवों में ऐसे मौकों पर स्त्रियों और अल्पवय बालकों की रक्षा के विभिन्न तरीके आजमाये गये थे। किसी गाँव में सब स्त्रियों और बालकों को एक ही मकान में एकत्रित करके गुरुग्रंथ साहिब का पाठ करने को कहा गया था, और फिर बाहर से सब द्वार बद करके उस मकान को आग लगा दी गई थी। और इस कर्तव्य से निपट कर सब पुरुष अपनी अपनी किरपानें सौंत कर शत्रु पर इस तरह टूट पड़े थे जैसे कोई मरने के विचार से समुद्र में कूद पड़, उनमें से हर एक की कोशिश केवल यही रह जाती थी कि स्वय मरने से पहले आक्रांताओं की अधिक से अधिक सख्या का वध करके उनके रक्त से अपनी प्यास बुझा ले, कई स्थानो पर माताओं ने अपनी जवान बेटियों को अपने शरीर के साथ बांध कर कुंओं में छलाँगें लगा दी थीं...

इसी तरह जब इनकी बारी आई तो गाँववालों ने परस्पर परामर्श के बाद यही निश्चय किया कि अपनी स्त्रियों की लाज निश्चित रूप में बचाने के लिये अपने अपने घर की स्त्रियो और बालकों को स्वयं अपने हाथों से क़त्ल कर दिया जाये, ताकि उनमें से किसी के जीवित ही शत्रु के हाथ में आ जाने का एक प्रतिशत भी खटका न रह जाए।

समय बहुत कम था; तुरही और ढोल की आवाज बहुत समीप आती जा रही थी। चुनांचे सब लोग जल्दी जल्दी अपने घरों की ओर

चल दिये।

उजागर सिंह जब घर पहुँचा तो उसका आठ साल का लड़का अपने एक टीन के खिलौने को तोड़ कर उसे एक पत्थर पर घिस कर तेज कर रहा था ; और साथ ही अपने समीप ही बैठी रोती हुई माँ से कहता जा रहा था—

"माँ—तू चिंता क्यों कर रही है। आने तो दे किसी मुसलमान को। मैं यह बर्छा तैयार कर रहा हूँ। बस इसी से एक एक का खून कर दूँगा......"

उजागर सिंह नंगी किरपान सौंते दाखिल हुआ तो उसे देखते ही उसकी पत्नी उठकर खड़ी हो गई, आंचल से आँसू पोंछ कर उसने अपने चेहरे पर कुछ इस प्रकार की गंभीरता का प्रदर्शन करने की कोशिश की जो यह कह रही हो कि "नहीं—मैं मृत्यु से बिल्कुल नहीं डरती।"

उजागर सिंह उसके सामने आकर खड़ा हो गया, और मुँह से कुछ कह न सका। परन्तु पत्नी ने अपने स्वर में एक गूढ़ स्थिरता और धैर्य्य दर्शाते हुए स्वयं ही पूछ लिया—"कहाँ? गुरुद्वारे में?"

"नहीं—इसी जगह।" उजागर सिंह ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

पत्नी ने चलने के विचार से अपनी नन्हीं सी बेटी को पलंगड़ी पर से उठाकर गोदी में ले भी लिया था, परंतु पति की बात सुनकर उसने उसे फिर वहीं डाल दिया।

"क्या इसी जगह?" पत्नी ने फिर पूछा।

"नहीं अंदर।"

इन संक्षिप्त वाक्यों के विस्तार की कोई आवश्यकता न थी—दोनों एक दूसरे की बात का अर्थ पूरी तरह समझ रहे थे।

इतने में उनका लड़का उस खिलौने का बर्छा उठाए अपनी मां की टाँगों से लग कर खड़ा हो गया था, और उनकी बातचीत को सम-

झने की कोशिश कर रहा था।

मां ने जब बेटे पर हाथ रख कर उसे पिता की ओर धकेला तो उसके चेहरे की गंभीरता अपना कलेजा थामती नजर आई। उसने जैसे टुकड़ों टुकड़ों में बिखरते हुए स्वर को संभालने की कोशिश करते हुए पूछा—

"पहले यह कि मुन्नी—?"

उजागर सिंह ने उन तीनों की ओर न देखते हुए उत्तर दिया—तुमसे यह दोनों नहीं देखे जायेंगे, इसलिए पहले तुम—!! मगर समय बहुत कम है।"

अब तक ढोल की आवाज के साथ मनुष्यों का शोर भी सुनाई देने लग गया था। उस मां ने बस एक ही बार अपने दोनों बालकों की ओर से कुछ इस प्रकार निगाहें हटा लीं मानो पहली बार में उसकी निगाहों के दो टुकड़े हो गये हों—एक टुकड़ा उन दोनों बालकों से चिपटा रह गया हो और दूसरा उन आँखों के साथ चला गया हो जिन्होंने फिर घूमकर भी उधर नहीं देखा।

अंदर जाकर पत्नी ने चुपचाप एक लकड़ी के संदूक पर सिर रख दिया। आँखें बंद कीं और कहा—"वाहेगुरु...'

इस शब्द के साथ ही उसका सिर शरीर से अलग हो चुका था।

उजागर सिंह के पास भावना की रौ में बहने बल्कि सोचने तक का समय नहीं था। वह अब लड़के को लाने के लिये तेजी से बाहर की ओर मुड़ा, परंतु वह तो सामने खुले किवाड़ों के साथ लगा खड़ा बड़ी मासूम सी निगाहों से यह 'तमाशा' देख रहा था।

उजागर सिंह मुँह से कुछ बोले बिना उसे बाँह से पकड़ कर संदूक के पास ले गया। उसकी माँ का गाढ़ा गाढ़ा लहू संदूक के ऊपर इधर उधर फैल रहा था, और ढकने के ऊपर जमी हुई मिट्टी के साथ मिल कर कीचड़ हो रहा था।

लड़का चुपचाप पिता के हर इशारे को मानता गया। परंतु जब उसे उस संदूक पर लिटाया गया तो वह उठ बैठा—

"यह बहुत गीला है," उसने अपने कपड़ों और हाथों पर लगे हुए लहू की ओर किंचित् खिन्न भाव से देखते हुए कहा।

उजागर सिंह ने किसी जल्लाद की सी सख्ती से कहा—"लेट जाओ।"

और बालक अबके सहमकर लेट गया, उजागर ने किरपान उठाई, तो बालक ने त्रास और सहम के मारे हिले डुले बिना कहा—

"बापू—"

उजागर सिंह ने तुला हुआ हाथ वहीं रोक लिया।

बालक ने यह देखकर साहस किया और कहने लगा—

"माँ तो कहती थी कि हमें मुसलमान मार डालेंगे, फिर तुम क्यों मारते हो? क्या तुम मुसलमान हो गये हो?"

उजागर सिंह ने उत्तर नहीं दिया। उसके हाथ काँप गये, फिर उसने साहस जोड़ कर दोनों हाथों में किरपान का दस्ता मज़बूती से जकड़ लिया और बाँहों में शक्ति भरने लगा।

बालक उत्तर की प्रतीक्षा में उस संदूक पर पड़ा हुआ उसकी ओर बड़ी मासूम निगाहों से देख रहा था, परन्तु जब उसने पिता की बाँहों को अकड़ते देखा तो फिर सहमकर लेट गया। परन्तु बीच में ही सहसा फिर बोल उठा—

"मैंने भी यह बर्छा मुसलमानों को मारने के लिये बनाया था..."

और उसने वह खिलौना पिता की ओर बढ़ाया। उजागर सिंह ने बायाँ हाथ किरपान से हटा कर वह खिलौना उसके कोमल से हाथ से झपट लिया।

"तुम्हारे काम आएगा ना..." बालक ने चेहरे पर एक नक़ली मुस्कान लाते हुए कहा, जैसे वह उसके लिये प्रशंसा पाने को उत्सुक हो, यों मालूम होता था जैसे वह बालक मृत्यु से पहले अपने पिता को किसी

तरह प्रसन्न करना चाहता था— मरने के लिये तो वह माँ के कहने पर ही उद्यत हो चुका था, बल्कि वीरों की भाँति मरने के लिये उसने वह बर्छा भी तैयार कर लिया था, फिर भी पिता क्यों इस प्रकार क्रोध भरे चेहरे से उसे मार रहा था यह जैसे उसकी समझ में न आ रहा था। चुनांचे वह वीर गति प्राप्त करने की प्रशंसा पाने के लिये एक मासूम सी कोशिश कर रहा था।

यह देखकर उजागर सिंह की चीख़ निकल गई, परन्तु इससे पहले कि उस चीख़ की आवाज़ उसके गले से बाहर निकलती उसकी किरपान ने उस प्रशंसा चाहनेवाले बालक को सदा के लिये चुप करा दिया था।

* * *

आक्रांता गाँव के सिर पर ही आ पहुँचे थे।

उजागर सिंह अपनी नन्हीं बेटी को भी 'साफ' करके जल्दी से बाहर निकल गया।

सब साथियों ने अपनी रक्त-रंजित किरपानों को हवा में लहराना शुरू कर दिया। अभी आक्रांता दल कोई सौ गज़ की दूरी पर था, चुनांचे यह लोग एक गली के मुँह पर पंक्ति लगाकर खड़े हो गये, ताकि उनसे गली में मुक़ाबला किया जाये जहाँ शत्रु एकदम उनके गिर्द घेरा नहीं डाल सकता था।

गाँव का सबसे बड़ा सर्दार उन्हें जल्दी जल्दी युद्ध की चालें समझा रहा था। परन्तु उस समय चालों की किसे सुध थी। जिन किरपानों से वह अपने जिगर के टुकड़ों को काट कर आये थे, वे किरपानें उनका बदला लेने के लिये हाथों में मचल रही थीं। उस समय उनकी भुजाओं में घृणा और बदले की किसी ऊपरी शक्ति ने दुगनी शक्ति भर दी थी, और उनके दिलों में अब एक ही अरमान रह गया था कि वह उन आक्रांताओं की अधिक से अधिक संख्या को चीरते फाड़ते हुए स्वयं जल्दी से जल्दी शहीद हो जाएँ। उस समय एक एक पल उनसे न बिताया जा रहा था।

आक्रांता-दल गाँव के सामने आकर रुक गया। कुछ विचार-विनिमय हुआ और फिर दल का पिछला हिस्सा गाँव की दोनों दिशाओं में फैलने लगा।

जब गाँव वालों ने देखा कि उनसे लड़ने के स्थान पर आक्रांता गाँव को चारों ओर से घेर कर जला डालने की तरकीब कर रहे हैं तो उन्होंने उसी तरह खुले मैदान में कूद पड़ने का निश्चय कर लिया।

इतने में आक्रमणकारी दल ने एक छोटी सी तोप भी गाड़नी शुरू कर दी थी, उधर से कुछ बन्दूकें भी छूट चुकी थीं परन्तु एक व्यक्ति के मामूली से घायल होने के सिवा गाँव वालों की कोई हानि न हुई थी।

पहले तो सिखों ने भी उसके उत्तर में अपने गाँव की तीनों बंदूकें फायर करने का इरादा किया था, परन्तु फिर यह सोच कर रुक गये थे कि इस तरह शत्रु को उनके घात लगा कर छिपे होने का पता लग जाएगा; और फिर वे मरने से पहले अपने दिल की भड़ास भी न निकाल सकेंगे। परन्तु शत्रु उनसे अधिक चालाक निकला। चुनांचे अब उन्होंने मरने का डर छोड़कर खुले मैदान में ही आखिरी धावा बोलने की ठान ली।

एक ज़ोर का नारा हवा में गूँजा— "जो बोले सो निहाल— सत श्री अकाल......"

और उसके साथ ही यह देहाती सूरमे तीन बन्दूकें और अपनी अपनी किरपानें सौंते निधड़क सामने निकल आये और एक ही हल्ले में शत्रु की ओर बढ़े। परन्तु ठीक उसी समय "गरड़-गरड़" का भयानक-सा शब्द हुआ और उन्होंने आक्रांताओं के दल के दल को एकदम पीछे हटते देखा। और फिर बीस गज़ और आगे बढ़ने पर उन्होंने देखा कि पाँच छः फ़ौजी-टैंक एक भयानक शब्द करते हुए उनके और आक्रांताओं के बीच आ रहे हैं।

घिरे हुए लोगों को बचाने के लिये जो सेना सरकार ने भेजी थी

उसने क्या खूब समय पर पहुँच कर उन सबको बचा लिया......

सेना जब इन लागों को बचाकर रावलपिंडी के एक कैम्प में ले गई; और उनसे हथियार लेने लगा तो देखा गया कि चार पांच आदमियों की तो अँगुलियाँ किरपानों के दस्तों पर इस प्रकार जम कर रह गई थीं कि फिर वह खुल ही नहीं सकीं, और न उन हाथों से वह तलवारें अलग की जा सकीं।

बदला लेने के क्या क्या अरमान उनके हाथों में लहू के साथ ही जम गये थे, यहाँ तक कि एक दो की मुट्ठी ज़बर्दस्ती खोलने की कोशिश की गई तो उनके लक़वे से मारे हुए हाथों की अँगुलियाँ ही टूट गईं।

उजागर सिंह ने अपनी किरपान चुपचाप दे दी। उसकी केवल एक अँगुली तोड़नी पड़ी, परन्तु बच्चे का वह खिलौना उसने आज तक अपने हाथ से अलग नहीं किया। वह उसी बालक की भाँति उसे बर्छा बनाए लिये फिर रहा है, और शायद उसके साथ किसी मुसलमान को मारने की लालसा भी।

यों मालूम होता है कि यह उजागर सिंह नहीं बल्कि उस बालक की आत्मा है जो यह बर्छा सँभाले आज आठ महीनों से रावलपिंडी से लेकर रावी-तट तक यह तमन्ना लिये भटकती फिर रही है कि अपनी ही पिता की जगह कोई मुसलमान उसे मार डालने के लिये आये और वह अपने उस 'बर्छे' की सहायता से अपनी माँ की रक्षा करता हुआ बड़ी वीरता से शहीद हो जाए......

जहाँ तक स्वयं उजागर सिंह का सवाल है उसका तो दिमाग चल चुका है। उसे तो शायद एक ही बात की अनुभूति शेष है और यही अनुभूति हर समय व्यंग के कांटे की भाँति उसे चुभाती रहती है, जिससे तड़प कर प्रायः उसकी आत्मा ऊँची आवाज़ में खिलखिला उठती है—

"मैं बच गया— मैं बच गया!"

———

ग्यारहवाँ परिच्छेद

वह दोनों शाम तक बातें करते रहे। मौलाना ने आनन्द को पूर्वी पंजाब के हालात सुनाए कि वहाँ किस प्रकार मुसलमानों का कत्ले-आम हुआ, किस प्रकार राशन के दफ़्तरों से एक मुसलमानों के नाम की सूची बना कर बड़े क्रमानुसार एक एक को ढूँढ़ कर कत्ल करने की कोशिश की गई। उन्होंने बताया कि किस तरह पूर्वी पंजाब के बड़े बड़े शहरों की बड़ी बड़ी सड़कों पर स्थायी ढंग की चितायें तैयार की गई थीं, जिनमें हर राह चलते मुसलमान की आहुति दी जाती थी, और बड़े बड़े चौकों में जलती हुई उन चिताओं में जीवित मनुष्यों को झोंक कर हिंदू और सिक्ख किस प्रकार खुशी से नाचा करते थे।

"यूँ जान पड़ता था जैसे उन्हें इस बात का दुख हो रहा था कि इन्सानियत के चोले को तार तार करके फाड़ डालने में मुसलमान क्यों पहल कर गये थे, और अब वह जैसे अपने उस पीछे रह जाने की कमी को पूरा करने पर तुल गये थे; ताकि यदि वह पहल नहीं कर सके तो कम से कम संख्या में अधिक वध करने का श्रेय तो प्राप्त कर लें......"

अचानक उनकी बात काट कर आनन्द ने पूछा— "मौलाना हमारे लाहौर का क्या हाल है ?"

मौलाना खामोश हो गये, आँखें मूँद लीं और फिर एक लम्बी साँस लेकर कहने लगे— "इसके जवाब में मुझे मीर की वह कविता याद आ रही है जो उसने दिल्ली के लिये लिखी थी—

दिल्ली जो एक शहर था आलम में इन्तिख़ाब,
रहते थे मुन्तख़िब ही जहाँ रोज़गार के।

उसको फ़लक ने लूटकर वीरान कर दिया,
हम रहनेवाले हैं उसी उजड़े दयार के ॥

इसमें दिल्ली की जगह हम लाहौर का और फ़लक की जगह अपना नाम लिख दें तो लाहौर की हालत पर यह बिल्कुल पूरा उतर सकता है, वह लाहौर अब कहाँ है मेरे अज़ीज़—उसे भूल जाओ जिसे तुम लाहौर कहते थे। वह रङ्गीन और सुन्दर शहर, जिसके लिये लोग कहा करते थे कि 'शहरों की दुल्हन' का मुहावरा बनाही इसी के लिये था, उसे यूँ समझ लो कि एक हसीन सपना कभी देखा था जिसे दुबारा देखने की तमन्ना ज़िंदगी भर करोगे लेकिन देख नहीं पाओगे। मेरे एक दोस्त ने कहा था कि लाहौर अब उस दुलहिन की तरह दिखाई देता है जिसके गहने और कपड़े डाकुओं ने नाच लिये हों और जिसके सौंदर्य्य और शरीर को जगह जगह से ज़ख्मी कर दिया गया हो। अब लोग पूछते हैं कि क्या यही 'जंगल का न्याय' पाने के लिये वह 'पाकिस्तान-पाकिस्तान' के नारे लगाते रहे, अब न कहीं वह 'हमारा प्यारा हिंदुस्तान' दिखाई देता है जिसको बचाने की कोशिश में भाई लोगों ने अपने उसी एकता के आदर्श को भी क़ुर्बान कर दिया, और न वह पाकिस्तान ही कहीं मौजूद है जिसका वह हसीं तसव्वुर, वह सुन्दर कल्पना हम लोगों के सामने रखी गई थी, और जिसकी खातिर यार लोगों ने उस दोनों जहानों के मालिक की शिक्षा को भी ठुकरा दिया, मैं कसम खाकर कह सकता हूँ कि आज मुझे लाहौर में एक भी आदमी ऐसा दिखाई नहीं दिया जो एक मुहज़्ज़ब और सभ्य शहर का रहने वाला दिखाई दे सके। वहाँ हर एक ज़ख्मी है—किसी की बाँह कटी हुई है तो किसी की आँख नहीं; किसी की टाँग कुचली हुई है तो किसी की इस्मत या सतीत्व लहूलहान है; और बाक़ी जो मर नहीं गये उनकी रूहें, उनकी आत्माएँ ज़ख्मी हैं और अन्तःकरण कुचले हुए। हर एक के शरीर पर या दिल पर किसी न किसी चोट, किसी न किसी ज़ख्म या किसी न

कोई क्रम न था। अब वह अपनी बातों का विषय जल्दी जल्दी बदल रहे थे मानों किसी विशेष विचार से दूर भागने की असफल चेष्टा में इधर से उधर भटक रहे हों।

उन्होंने दिल्ली की घटनाएँ सुनाईं कि किस प्रकार वहाँ के मुसलमानों ने लाल किले में जाकर शरण ली, किस प्रकार प्रकृति भी उनके विरुद्ध हो गई, और फिर किस प्रकार भीषण वर्षा में वे लोग किसी बाड़े में बँधे हुए पशुओं की भाँति घुटनों घुटनों पानी में खड़े भीगते रहे, किस प्रकार उनके सामान और संदूक पानी पर तैरते हुए इधर से उधर फिर रहे थे और कोई उन्हें अपना कहनेवाला न था, किस प्रकार निमोनिया और बुखार से कई बालक मर गये और फिर उनकी लाशें भी इसी प्रकार लावारिस सामान के साथ इधर से उधर तैरती रहीं और उन्हें अपनी कहनेवाला भी कोई न था, किस प्रकार फिर पानी उतर जाने पर उस दलदली ग्राउंड में साँप निकल आए और बड़े मज़े से इनसानी लहू पीते रहे ; यहाँ तक कि शहर में किसी भी शरणार्थी को जब किले में चले जाने का परामर्श दिया जाता तो वह उस तरह चीख उठता जैसे कई सांप उसके गिर्द घेरा डाल कर बैठ गये हों.....

मौलाना इन दिनों में देहली तक कई शहरों का चक्कर लगा आए थे। उन्होंने कई अपनी निजी घटनाएँ भी सुनाईं—

उन्होंने पण्डित जवाहरलाल नेहरू को उस समय 'जामिया मिल्लिया' के पुस्तक भण्डार पर पहुँचते देखा था जब अन्दर उनकी किताबें जलाई जा रही थीं और बाहर शान्ति की रक्षा करनेवाले सैनिक पहरेदार एक चारपाई पर बैठे ताश खेल रहे थे। पण्डित जी अन्दर गये तो जलते हुए ढेर में से पहली किताब जो उन्होंने उठाई वह उनकी अपनी पुस्तक Discovery of India का उर्दू अनुवाद था।

उस अधजली पुस्तक को थोड़ी देर के लिए हाथ में लिये लिये वह जाने क्या सोचते रहे और फिर उसे उसी आग में फेंक दिया।

मौलाना को उस समय यूँ दिखाई दिया था जैसे पंडितजी ने उस घृणा और बँटवारे की ज्वाला में अपनी उस 'महान खोज' को नहीं बल्कि स्वयं अपने आपको बलि के रूप में झोंक दिया है कि शायद इसीसे उस नारकीय ज्वाला का पेट भर जाए और वह शान्त हो जाए।

पंडितजी और अन्दर गये तो उन्हें एक आदमी मिला जो बड़े मज़े से किताबें इकट्ठी करके उन्हें गठड़ी में बाँधकर ले जा रहा था, और उन्हें देखकर उसने बड़ी निश्चिन्तता से और प्रशंसा के भाव से हाथ जोड़कर कहा—"जै हिंद!" और फिर एक नारा लगाया—'पंडित जवाहरलाल नेहरू की जय!"

इस पर पंडितजी ने अपने कमज़ोर कोमल से हाथों से उसका गला दबाकर उसकी आवाज़ बंद करने की हास्यास्पद चेष्टा की थी, परन्तु उनसे वह भी न हो सका था।

मौलाना ने वीरता के प्रदर्शन भी देखे थे—

करौल बाग़ देहली में एक फ़ौजी ट्रक में घूमते हुए उन्होंने एक हिंदू युवती की लाश देखी थी जिसने अपने यहाँ शरण लेनेवाले एक मुसलमान कुटुम्ब के ग्यारह व्यक्तियों को भड़के हुए सिखों और हिंदुओं की एक भीड़ के हवाले करने से इन्कार करते हुए कहा था कि—

"इस द्वार के अन्दर जाने के लिए तुम्हें मेरी लाश पर से गुज़रना होगा।" इस पर भीड़ में से एक आवाज़ आई कि "ग्यारह मुसल्ले मिलते हैं तो एक हिंदू की कीमत देकर भी उन्हें मारना महँगा नहीं।"

और फिर वह वीर किस प्रकार अकेला अपनी गाड़ी से लड़ता [illegible] हुआ [illegible] हुआ था अपने [illegible] के [illegible] कि "[illegible] के लिए मर जाना [illegible]।" और [illegible]

देहली के साथ ही उर्दू कवियों और लेखकों का प्रसंग छिड़ गया तो मौलाना ने बताया कि उन्होंने उसी दिल्ली में उस देशभक्त लेखक ख्वाजा अहमद अब्बास को एक मित्र के मकान पर कितने धैर्य और ज़ब्त के बावजूद फूट पड़ते देखा था, क्योंकि उसी दिन सवेरे दिल्ली पहुँचते ही हवाई अड्डे पर पुलिस ने सब हिंदू मुसाफ़िरों को खुले बंदों जाने की आज्ञा देकर केवल उसीको रोका था और उससे उलट पुलट प्रश्न पूछे थे कि "तुम मुसलमान हो? तुम दिल्ली में क्यों आए हो, कहाँ ठहरोगे, किससे मिलोगे और कितने दिनों में चले जाओगे?" इत्यादि।

देश की लड़ाई का वह निडर सिपाही इस भावुक चोट को सहन न कर सका था कि उसी दिल्ली में जो उसकी अपनी दिल्ली थी, जो उसके बाप दादाओं की दिल्ली थी, जिसके स्थापत्य और सभ्यता के विकास में उसके पूर्वजों का हाथ था, जहाँ वह भाषा बोली जाती है जो उसके पूर्वजों ने लिखी, उसी दिल्ली में उससे अभियुक्तों की भाँति जिरह की गई कि तुम दिल्ली में क्यों आए हो और कब चले जाओगे—? और वह बड़े से बड़े मार्चे पर डट जानेवाला वीर इस अपमान और निरादर की चोट को सहन न करके रो उठा था।

शिमले में मौलाना ने उसी के एक और समकालीन लेखक राजेन्द्र सिंह वेदी को रात के अँधियारों में गहरे पहाड़ी खड्डों, कर्फ्यू आर्डरों और अपने 'योद्धा' भाइयों की किरपानों की तनिक भी चिंता न करते हुए कई मुसलमान कुटुम्बों को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाते देखा था। और फिर कुछ दिनों पश्चात उसी राजेन्द्र सिंह को अपने बीबी बच्चों सहित एक 'रिफ्यूजी ट्रेन' की छत पर लटकते देखा था, जहाँ उसने अपनी पगड़ी के साथ अपने बच्चों को डिब्बे की छत पर लगे हुए एक कील के साथ बांध रखा था; और जिन्हें हर नए पुल के नीचे से गुजरते हुए, लुढ़क जाने के भय को मन से निकाल कर गाड़ी की ढालू छत पर लेट

जाना पड़ता था, क्योंकि हर पुल के नीचे से गुजरते हुए दो चार व्यक्ति अवश्य ही टकरा कर चलती गाड़ी से गिर जाते थे, वहाँ से नीचे उतरने की कोई गुंजाइश न थी चुनांचे वह लोग छत पर पड़े पड़े ही हर स्टेशन पर 'पानी-पानी' के लिये चिल्लाते रहते।

शरणार्थियों को ले जाने वाली रेलगाड़ियों का प्रसंग छिड़ा तो मौलाना ने गीली आँखों के साथ उस रिफ्यूजी ट्रेन का वर्णन किया जिसमें सफर करते हुए आठ हज़ार हिंदुओं को लाहौर से आगे निकलते ही बिल्कुल 'साफ' कर दिया गया था। वह ट्रेन जब अमृतसर पहुँची तो लोगों ने उसे वहाँ ठहराने से इन्कार कर दिया। वह कहने लगे कि "इसे दिल्ली ले जाओ और हमारे अहिंसा के पुजारी नेताओं को दिखाओ।" यहाँ तक कि उसे सचमुच दिल्ली ले जाया गया।

उस गाड़ी में लहू और लाशों के सिवा कुछ न था। स्त्रियों के मृत-शरीर नंगे करके करके डिब्बों के बाहर लटका दिये गए थे, उनकी छातियों पर पाकिस्तान लिखा हुआ था और उनकी योनियों में लकड़ियां ठोंस दी गई थीं।

जब प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू को उसे देखने के लिये लाया गया तो वह यह दृश्य देखकर बच्चों की भांति रोने लगे लोगों ने महात्मा गांधी को भी मजबूर कर दिया और वह भी आए। परंतु बड़े सब्र और शांति के साथ इतना कह कर चले कि "यह देखो हिंसा का क्या परिणाम होता है।"

और फिर उस गाड़ी के प्रत्युत्तर में कई मुस्लिम गाड़ियों के साथ पूर्वी पंजाब में जो कुछ किया गया वह भी कम भयानक न था। उनमें से एक गाड़ी में तेरह हजार इनसानों में से केवल पंद्रह बचे थे और वह भी लाशों के नीचे दब जाने के कारण।

उन पन्द्रह ने बेहद भूख और प्यास के कारण फर्श पर जमे हुए अपने भाइयों, पत्नियों और बच्चों के लहू को चाटा था, अपने शरीर

में दाँत काटकर लहू से सूखे गले को सान्त्वना देने की चेष्टा की थी और हद तो यह है कि कई दिन तक प्यासे रहने के बाद आखिर उन्होंने एक दूसरे के मुँह में पेशाब किया था ताकि गले तो तर हो सकें।

उसी गाड़ी में 'साक़ी' देहली के सम्पादक शाहिद अहमद भी थे। और दिल्ली की पुरानी संस्कृति के उस चाहनेवाले नाज़ुक से साहित्य-कार को इतना आघात पहुँचा था कि "पाकिस्तान पहुँच कर भी वह आज तक किसी से बात ही नहीं करता, न उसने किसी मित्र को पत्र ही लिखा है। न जाने इस खामोशी के पीछे खड़ा वह क्या सोच रहा है। जाने उसे अब मानव और मानव के बीच किसी भी प्रकार की मित्रता पर विश्वास भी बाकी रह गया है या नहीं।"

इसी सिलसिले में मौलाना ने देहली रेडियो के एक समाचार का भी वर्णन किया कि पश्चिमी पञ्जाब से आती हुई एक हिंदू रिफ्यूजी ट्रेन को मिंटगुमरी और रायविंड से होकर लाहौर पहुँचने में पाँच दिन लग गये थे। उसमें दस हज़ार हिंदू सिख थे, उन पर कई बार हमले किये गए और रक्षक सेना ने बड़ी वीरता से उन्हें बचा लिया—परन्तु प्यास से उन्हें कोई न बचा सका। राह में पाकिस्तान के किसी भी स्टेशन पर तीन दिन तक उन्हें पानी का एक घूँट तक न दिया गया जिससे चार सौ नन्हें-नन्हें बालक बिलख बिलख कर मर गये......

* * *

मौलाना एक के बाद दूसरी घटना सुना रहे थे और आनन्द, निर्मला और किशनचन्द दाँतो तले उँगलियाँ दबाए सुन रहे थे। वह नई लड़की बिल्कुल उदासीन भाव से चुपचाप बैठी हुई थी, जैसे उसके लिये यह कोई असाधारण बातें न थीं।

कैम्प के बाकी लोगों को जैसे मौलाना में कोई दिलचस्पी न थी। अलबत्ता कुछ एक उन्हें शक की निगाहों से घूरते हुए अवश्य गुज़र जाते—"काश आनन्द वहाँ न होता और उनके वश में होता तो..."

मौलाना फिर वैयक्तिक घटनाओं पर आ गये थे। वह पाशविकता के उदाहरण दे रहे थे।

जालंधर के एक डाक्टर की लड़की का वर्णन था, जिसने अपनी छोटी बहिन और पिता के साथ बीस घण्टों तक हिन्दू-सिखों के एक बिफरे हुए दल का मुकाबिला किया। बीस घण्टे वह तीनों एक पिस्तौल और दो राइफ़लों से लड़ते रहे। परन्तु अन्त में उन्हें हथियार डाल देने पड़े।

डाक्टर को बाहर लाया गया तो एक गबरू सा जवान आगे बढ़कर कहने लगा—"इसे छोड़ दो यह मेरा शिकार है," और फिर हाथ में पकड़े हुए एक भारी खांडे का भरपूर हाथ ऐसा मारा कि खांडा डाक्टर की खोपड़ी को चीरता हुआ छाती के एक तरफ़ से होता हुआ एक कूल्हे के पास से निकल गया और फिर पास की दीवार में जाकर ऐसा लगा कि उसकी धार मुड़ गयी।

डाक्टर के दोनों टुकड़े धरती पर उसके पैरों में पड़े थे और वह अपने कुंठित खांडे को देखता हुआ कह रहा था कि यदि तुम इतने ही कोमल थे तो पहले कहते मैं अपना खांडा ही खराब न करता।

तत्पश्चात् उन दोनों लड़कियों को बाहर लाकर उनके बारे में कई प्रकार की स्कीमें बनाई गईं, परन्तु दोनों लड़कियाँ बड़े वीर भाव से मौन खड़ी रहीं। अन्त में उन्हें कहा गया कि वह "जै हिन्द" का नारा लगाएं परन्तु उन्होंने इन्कार कर दिया। उन्हें हर प्रकार की धमकी दी गई परन्तु उन्होंने बड़े निश्चल भाव से उत्तर दिया कि 'हम लड़ाई हारे हैं, आपका जो जी चाहे हमारे साथ कर सकते हैं पर स्वयं हमें कुछ करने पर मजबूर नहीं कर सकते।'

उन लड़कियों के साथ एक दस साल का उनका छोटा सा भाई भी था, जो विस्मित-सा देख रहा था कि मेरी बहनें जो कभी परदे के बिना

पराए मर्दों के सामने नहीं गई थीं आज किस ढिटाई से तबर तबर बातें कर रही हैं।

आखिर उन्हें नंगी औरतों के उस 'विजयी' जुलूस के आगे आगे चलने को कहा गया। परन्तु, उन्होंने हिलने से इन्कार कर दिया।

उन्होंने धरती पर घसीटा जाना स्वीकार कर लिया परन्तु अपनी इच्छा से एक पग भी नहीं उठाया। आखिर किसी ने गले में हाथ डाल कर उनके कपड़े बिल्कुल चीर दिये और वह दोनों बिल्कुल नंगी कर दी गईं। फिर भी जब उनकी शान में फर्क न आया तो एक युवक ने तैश में आकर अपनी तलवार की नोक उसकी योनि में इस प्रकार ठाँस दी कि वह चीरती हुई लड़की के पेट तक आ गई।

उसी समय छोटी बहिन को एक और ने सड़क पर लिटा लिया था और सबके सामने कई 'वीरों' ने वहीं भोग विलास के कई करतब दिखाए।

यह देखकर वह बालक चिल्लाया और उसने उन्हें रोकने की कोशिश की तो किसी ने लोहे की एक कुण्ठित सीख उसके पेट में इस ज़ोर से खुबो दी कि वह उसी पर टँग गया......

यों मालूम होता था कि किसी में इतनी हिम्मत हो न रही थी कि मौलाना से इतना ही कहता कि "बस करो", और मौलाना—जैसे आनन्द के सामने आकर उनके धैर्य्य के सारे बन्द टूट गये थे। यूँ जान पड़ता था कि एक इनसान के अपने कुटुम्ब के कई व्यक्ति एक साथ ही मर गये थे और वह पागल सा होकर कभी एक की लाश पर और फिर उसे छोड़कर दूसरे की लाश पर रोने और विलाप करने में लगा हुआ था और उसे इस बात की कुछ भी सुध न थी कि किसकी मृत्यु से उसे अधिक आघात पहुँचा है.....

* * *

मौलाना सुनाए जा रहे थे कि "अफसोस तो यह है कि वह लोग जो इनसानियत के दावे करते न थकते थे, जो संसार को एक नये युग एक नये दौर का संदेश दिया करते थे वही तुम्हारे कवि और साहित्य-कार, शायर और अदीब भाई—उन में से भी बहुत से इस विषैले रोग से न बच सके। लाहौर में मैंने अपनी आँखों से उर्दू के एक हिंदू कवि 'फिक्रे तौंसवी' को उसके एक अपने ही समकालीन मुसल्मान अदीब के हाथों एक मचली हुई मुस्लिम भीड़ के हवाले होते देखा है। यह उसकी खुशकिस्मती थी कि वह बच गया, मगर उसका वह दोस्त उसे क़त्ल करने के गुनाह से बरी नहीं हो सकता।

यह मैं जानता हूँ कि गुनाह की सज़ा से कोई नहीं बच सकता—कोई नहीं। और इसीलिए जब भी मैं अपने हमवतनों, अपने देशवासियों के भविष्य का ख्याल करता हूँ तो काँप उठता हूँ। जब एक निर्दोष के कत्ल पर उसे मारने वाले की कई पीढ़ियाँ उसकी सज़ा से बरी नहीं हो सकतीं तो यहाँ जहाँ हज़ारों नहीं लाखों मासूमों का खून बहाया गया है इसकी सज़ा कितनी भयानक होगी! वह खुदाई कहर क्या होगा? उस भयंकर दंड के बारे में सोचने से भी मैं काँप उठता हूँ। मुझे तो सारी की सारी मनुष्य जाति ही खत्म होती महसूस हो रही है। मैं डरता हूँ कि उसका कोप इन तीनों मज़हबों को सिरे से ही न मिटा डाले और फिर यह क़ौमें भी बाबल और नेनवा की सभ्यताओं की तरह किसी पुरातत्व-विभाग के काग़ज़ों पर ही रह जाएँ......और कुछ न कुछ ज़रूर होगा, कुछ न कुछ ज़रूर होगा।"

यूँ मालूम हो रहा था जैसे मौलाना को कुछ भयंकर दृश्य दिखाई दे रहे हैं जिसके कारण उनकी आँखें मारे आतंक के फटी पड़ रही थीं, और वह कहे जा रहे थे—

"कुछ ज़रूर होगा आनन्द—चाहे यहाँ की धरती फट जाए, या यहाँ के दरियाओं में फ़रऊन का संहार करनेवाले दरिया नील के ऐसे

तूफ़ान उठ पड़ें या प्राग्-ऐतिहासिक काल की भाँति पंजाब के इलाके में फिर से समुद्र बन जाए—मगर जो कुछ भी होगा बड़ा भयंकर होगा। हो सकता है कि इन क़ातिल क़ौमों के घर भविष्य में बच्चों की जगह लाशें ही पैदा हों। मरे हुए लड़के और ऐसी लड़कियाँ ही इस क़ौम की कोख से जन्म लें जिनका सतीत्व जन्म से पहले ही नष्ट किया जा चुका हो; और फिर सारी की सारी क़ौम अपने ही आतंक और घृणा के मारे दरियाओं में कूद कूदकर मर जाए—यहाँ तक कि एक भी इनसान बाक़ी न रहे......"

"नहीं मौलाना, इतने निराश होने की ज़रूरत नहीं", आनन्द ने निराशा और वेदना के उस बहाव को थामने की कोशिश की—"खुदा और कुदरत को इतना ज़ालिम न बनाओ, वह रहीम भी तो है, क्षमा कर देना भी तो उसी का गुण है। बड़े से बड़े पैगम्बरों और अवतारों ने हमें यह भी तो बताया है कि एक बार जो निष्कपट मन से उसके आगे झुक गया, जिसने सच्चे दिल से प्रायश्चित कर लिया उस पर उसकी रहमतों के दर्वाजे खुल जाते हैं, उसकी ममता के द्वार कभी बन्द नहीं होते, वह दयालु है, करुणा का सागर है बस आदमी एक बार तौबा कर ले तो....."

"लेकिन तौबा करने का मौक़ा ही गुज़र चुका है। जिन्हें इतना कुछ हो जाने पर भी होश नहीं आया वह अब क्या सँभलेंगे", मौलाना ने उसी निराशाजनक स्वर में कहा।

'नहीं मौलाना, समय गुज़रा नहीं बल्कि आनेवाला है", आनन्द ने ज़ोर देते हुए कहा—"मैं उस दिन को देख रहा हूँ जब इन बातों का परिणाम लोगों के सामने अपने भीषणतम रूप में प्रकट होगा—जब अनाज और इनसानियत दोनों का अकाल पड़ जायेगा, जब इनसान न केवल रोटी का भूखा होगा बल्कि एक दूसरे के साथ का, एक दूसरे के संग का भी भूखा होगा, जब उनकी घृणा उस शिखर तक पहुँच

चुकी होगी कि एक दूसरे से प्यार करनेवाला कोई नहीं होगा। उस समय यही लोग केवल एक दूसरे से बात करने तक का बहाना ढूँढ़ेंगे। यह जो इनसान और इनसान के दरमियान अप्राकृतिक सीमाओं की दीवारें डाल दी गई हैं उन्हें अपने पैरों की ठोकरों से मिटाकर लोग इधर से उधर अनाज के कुछ दाने माँगने जायेंगे और एक दूसरे को अपना दुखड़ा सुनाने पर मजबूर हो जायेंगे, उस समय—! वह मौक़ा होगा उसकी करुणा के हाथ बढ़ाने का—तुम इसे मेरी कवि-कल्पना समझते हो मगर यह सच है कि अभी तक मैं हताश नहीं हुआ। जब तक आदमियों की इस भीड़ में तुम जैसा एक भी इनसान मुझे दिखाई दे रहा है मैं निराश नहीं हो सकता। और यदि किसी दिन मैं निराश हो गया तो मौलाना याद रखो कि मेरे लिए अब अपने जीवन में कोई दिलचस्पी बाकी नहीं—उस दिन मैं आत्महत्या कर लूँगा।"

"उस दिन इनसान मर जाएगा—" मौलाना ने प्रशंसात्मक भाव से कहा—"मगर मुझे इस बात का डर है कि क्या आखिर तक तुम ऐसे ही रह सकोगे। मेरे अज़ीज़ यह देखो—" और मौलाना ने अपनी जेब से कुछ दिन पहले का एक अख़बार निकालते हुए कहा—"इसमें कलकत्ता में महात्मा गान्धी की प्रार्थना सभा के पिछले कुछ उपदेशों का खुलासा एक जगह जमा किया हुआ है। यह देखो ४ सितम्बर का उनका भाषण जिसमें उन्होंने वहाँ की औरतों को अपने पास हर समय आत्महत्या के लिए ज़हर रखने का परामर्श दिया है। यह १० सितम्बर का भाषण, जिसमें उन्होने अपने मरन व्रत की चर्चा की है। इसीमें उन्होंने कहा है कि इस तरह सिख धर्म या हिन्दू मत या इसलाम जिन्दा नहीं रहेगा बल्कि हम सब जानवर बन जायेंगे। और यह १७ सितम्बर के भाषण का खुलासा जिसमें उन्होंने मायूस होकर कहा है कि 'मैं चाहता हुआ भी इस समय आपको अहिंसा का उपदेश नहीं दे सकता'। यह आज का पैग़म्बर है लेकिन वह

भी आज मायूस होकर मरन-व्रत के द्वारा आत्महत्या करने पर तुल गया है।

उधर मैंने कल ही रेडियो पर सुना था कि जमुना और व्यास में बाढ़ जोरों पर है। हजारों की संख्या में हिंदू और मुस्लिम शरणार्थी इस बाढ़ में बह गये हैं। यह भी खबर थी कि इस रावी का पानी भी चढ़ रहा है। चुनांचे मुझे ऐसा मालूम होता है कि कुदरत हमें सज़ा देने की तय्यारी कर रही है। अब हमारे दिन पूरे हो चुके हैं। फिर भी मेरी दुआ यही है कि खुदा तुम्हें सलामत रखे। शायद कि इस तूफ़ान में तुम्हें ही हज़रत नूह का कर्तव्य पूरा करना पड़े।"......

बारहवाँ परिच्छेद

रात के समय आनंद और निर्मला दोनों उस आग के पास बैठे हुए थे जिसे कैम्प वाले कभी बुझने न देते थे; क्योंकि यदि वह एक बार बुझ जाती तो फिर उसे जलाने के लिये दियासलाई कहां से लाते। वह लोग उस पर हर समय सूखी टहनियाँ और खुश्क पत्ते डालते रहते। हालांकि पिछले चार दिन से उनके पास पकाने के लिये कुछ न था फिर भी आग जलती रहने से मानों भूखे पेटों को एक अचेतन सी सांत्वना अवश्य मिलती रहती।

आनंद किशन चंद की प्रतीक्षा कर रहा था, जिसे उसने मौलाना को सुरक्षित रूप में अपने कैम्प से दूर तक छोड़ आने के लिये भेजा था। उसने दिन भर अपने कैम्प वालों की आँखों में कई भयंकर इरादे छलकते देखे थे, चुनांचे उसने मौलाना को रातों रात ही वहाँ से निकाल देना बेहतर समझा।

उस लड़की को मौलाना आनंद के हवाले कर गये थे कि इससे बेहतर शरण उसे और कहीं न मिल सकती थी, और इस समय वह लड़की थकी हारी आनंद के तंबू में लड़के के साथ सो रही थी।

इधर निर्मला आनंद के पास बैठी उसे कुछ दहकते हुए कोयलों के धीमे से प्रकाश में अखबार पढ़ते देख रही थी। अंगारों की परछाईं से आनंद का गंदुमी चेहरा लाल दिखाई दे रहा था, जैसे कुठाली में पिघला हुआ सोना हो; और निर्मला ने दिल ही दिल में यह सोचा कि "यह सोना तप कर अब कुंदन बन गया है।" उसने दिन भर

मौलाना और आनंद की बातें सुनी थीं और उसकी महानता बल्कि विशालता से बहुत अधिक प्रभावित हो चुकी थी। वैसे तो वह पिछले कुछ दिनों ही से उसे एक साधारण व्यक्ति से कहीं ऊँचे दर्जे का इनसान समझने लग गई थी, परन्तु आज जब उसने आनन्द को अपना दिल खोलकर बातें करते हुए सुना तो उसे यह महसूस हुआ कि वह इनसान से भी कहीं ऊँचा है। इस पर जब मौलाना ने महात्मा गांधी से उसकी तुलना करते हुए यह बताया कि जहाँ आकर महात्मा गाँधी भी निराश हो गये थे उस स्थान पर भी उसने आशा का दीप बुझने नहीं दिया था; तो उसका जी चाहा था कि वह घुटने टेककर उसके चरणों में नतमस्तक हो जाए और चंदन धूप से उसकी आरती उतारे। उसने महात्मा जी के बारे में सुन रखा था कि यदि वह भगवान का अवतार नहीं हैं तो कोई बहुत बड़े देवता अवश्य हैं; और मौलाना ने तो आनन्द का स्थान महात्मा जी से भी ऊँचा बताया था।

श्रद्धा और भक्ति के यह स्रोत जो आज उसके हृदय से फूट निकले थे—उन्होंने जैसे उसे एक नई शांति, एक नई सांत्वना और एक नया जीवन प्रदान किया था, और जैसे इस नए जीवन के सब रास्ते आनंन्द के चरणों की ओर जा रहे थे,— यह कैसा नया रिश्ता था जो निराशाओं और अश्रुओं की नींव पर खड़ा हो गया था..... ...' वह सोचती रही और मौन दृष्टि से उसे देखती रही।

आनन्द अखबार पर एक भूखे शेर की भाँति टूट पड़ा था, अखबार कई दिनों का पुराना था, परन्तु उसके लिये नया था, मौलाना जो कुछ बता गये थे उससे भी अधिक भयंकर और सविस्तार व्याख्या सहित कई घटनाएँ उसमें छपी हुई थीं। यहाँ तक कि यूं अनुभव होता था कि सारे संसार में एक भी अच्छी खबर न रह गई थी।

पहले पृष्ठ के बीच में एक मोटे चौखटे के अन्दर मोटे मोटे शीर्षकों के साथ किसी संवाददाता की सूचना थी कि 'पार्लियामेंट में भारत की

स्वतंत्रता का कानून पास हो जाने के बाद इंग्लैण्ड के छठे जार्ज अब सम्राट् की उपाधि से वंचित हो गए हैं; और यह पिछले दो हज़ार वर्ष के इतिहास में पहला मौक़ा है कि रोम के सीज़रों के बाद आज संसार में कोई व्यक्ति 'सम्राट्' की उपाधि का अधिकारी नहीं है।"

इस पर उसे मौलाना का वह मजाक याद आ गया जो उन्होंने इस सूचना की ओर इंगित करते हुए किया था, "—और इनसान समझ रहा है कि वह तरक्की की ओर प्रगति कर रहा है, आज़ादी की तरफ़ बढ़ रहा है......" और फिर उनके वह वाक्य कि "आज़ादी कहाँ है, आज़ादी का सच्चा अधिकारी इनसान कहाँ है? इनसान को आज़ादी दो तो वह उसे दूसरों को अपना दास बनाने के लिये इस्तेमाल करता है, अहिंसा सिखाओ तो वह कायर और बुज़दिल हो जाता है, उसे बहादुरी सिखाओ तो वह ज़ालिम बन जाता है, और अगर उसे यीशू दो तो वह उसे क्रास पर टाँगने के बाद उसी अहिंसा के पैगम्बर के नाम पर क्रूसेड की खूनी लड़ाइयों में मसरूफ़ हो जाता है— इन लाखों करोड़ों अर्ध-मानवों को बर्बरता और भूख से आज़ादी दिलाने वाला इनसान कहाँ है—?"

आनन्द ने आवेश में आकर अखबार को आग में फेंक दिया, परन्तु दूसरे ही क्षण फिर उसे जल्दी से उठा लिया और फिर से नई खबरों की तलाश करने में लग गया।

निर्मला ने यह हरकत देख कर पूछा—"क्या बात है, कोई बुरी खबर थी क्या?"

"अच्छी खबर ही कहाँ है।"

"फिर भी मुझे तो कुछ सुनाओ, ज़रा ऊँची आवाज़ में पढ़ो।" निर्मला ने उसे सहारा देने की कोशिश की।

आनन्द उसे फ़साद की खबरें सुनाना नहीं चाहता था, चुनांचे उसने यू० एन० ओ० की एक खबर पढ़नी शुरू कर दी। दक्षिणी

अफ्रीका में भारतीयों के साथ बुरे वर्ताव के विरुद्ध श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के भाषण का वर्णन था।

निर्मला ने बीच में ही टोक दिया— "यह यूनो क्या है!"

आनन्द ने उसे बताया कि "यह युनाइटेड नेशन्ज़ आर्गनाइजेशन है जहाँ संसार भर के हर देश की फ़रियाद सुनी जाती है।"

"तो फिर जवाहरलाल की बहिन वहाँ मेरी बात क्यों नहीं करती? मेरी ही क्या हम सबके लिये फरियाद क्यों नहीं करती? सारे ससार के पंच कुछ तो हमारा न्याय करेंगे। शायद मेरा नन्हा प्रेम......"

आनन्द के कानों के इर्द गिर्द जैसे सन्नाटा-सा छा गया, और वह इससे आगे कुछ नहीं सुन सका। उस लड़की ने अनजाने ही में कितना बड़ा व्यंग्य, कितनी बड़ी चोट की थी उस पंचायत पर; और वह अपने आप को कुछ भी उत्तर दे सकने में सर्वथा अयोग्य अनुभव करने लगा।

......वह पञ्चायत कब बनेगी जो संसार के हर प्राणी के लिये होगी, जहाँ केवल बड़ी बड़ी सरकारों के प्रतिनिधियों ही की सुनवाई नहीं होगी बल्कि हर इनसान की पहुँच होगी, प्रत्येक व्यक्ति जहाँ खड़ा होकर फ़रियाद कर सकेगा और न्याय पा सकेगा! कब बनेगी वह पंचायत... .....वह केवल सोचता रहा परन्तु निर्मला को उत्तर न दे सका।

निर्मला ने महसूस किया कि शायद उसने फिर से अपना दुखड़ा रो कर ऐसी बात की है जिससे आनन्द के मन को दुख पहुँचा है, और उसे अपनी इस हरकत पर खेद होने लगा। वह उस देवता को जो पहले से ही सारी मनुष्य जाति के दुख से दुखी था, अपने दुख की कहानी याद दिला कर और दुखी नहीं करना चाहती थी। उसने तो भविष्य में उसके दुखों को बाँटने का निश्चय किया था, उसके अश्रु अपने आँचल से पोंछने की लालसा की थी, फिर यह उसने क्या

है, यह सोचने का समय है कि हम आखिर हिंदुस्तान को क्या बनाना चाहते हैं, हम कैसा हिंदुस्तान अपनी औलाद के लिये छोड़ जाना चाहते हैं........

दूसरी ओर जो कुछ हुआ वह सुनकर हमे भी जोश आता है, मुझे भी क्रोध आता है परन्तु फिर मैं सोचता हूँ कि जो मै करने लगा हूँ उसका परिणाम क्या होगा। क्या हम लुटेरो का देश बनना चाहते हैं? स्त्रियों और मासूम बालकों के लहू में लिथडे हुए हाथो में लूट मार का सामान लिये हुए फ़सादियो के दल जब मुझे देखकर 'जवाहरलाल की जय' और 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगाते हैं तो मैं विस्मित सा सोचने लगता हूँ कि क्या मैं लुटेरो और डाकुओं का सरदार हूँ?

मेरे भाइयो—याद रखो कि देश पागलपने से नहीं बनते और न पागल आदमी ही देशों को बनाते हैं। हम इस समय केवल लाखों करोड़ों इनसानों की जिंदगियों से हो नहीं खेल रहे बल्कि एक क़ौम एक जाति और एक देश के जीवन से खेल रहे हैं, अपने भविष्य से खेल रहे हैं! समझो और सँभलो—!!"

आनन्द ने बड़े संतोष से अखबार रख दिया। उसके चेहरे पर खुशी की मुद्रा झलकने लगी और उसने अलाव से बाहर निकली हुई एक लकड़ी पर सिर रख कर लेटते हुए कहा— "अभी इनसान मरा नहीं— अभी वह मृत्यु के साथ लड़ रहा है।"

निर्मला ने उसके चेहरे पर प्रसन्नता की मुद्रा पहली बार देखी थी। अब तक वह उसकी बातों का अर्थ भी समझने लग गई थी, चुनांचे उसने अंगारों के प्रकाश से दमकते हुए उसके चेहरे पर दृष्टि जमाए हुए ही कहा— "हाँ— अभी वह बिलकुल निराश नहीं हुआ और जबतक आशा की डोर नहीं टूटती वह जीवित रहेगा।"

"और यह डोर नहीं टूटेगी—" आनन्द ने जोश में उठते हुए कहा। मगर यह कहने के साथ ही साथ निर्मला की आँखें में देखते ही

न जाने क्यों उसे ऐसा लगा जैसे उसने उन प्रकट रूप में खुशी से चमकती हुई निगाहों के पीछे से प्रगाढ़ निराशा की परछाइयों को झांकते देखा हो; और इस अनुभूति के पैदा होते ही उसने बात का भाव बदल दिया— "मेरा मतलब है कि इस डोर को नहीं टूटना चाहिये। नहीं तो जिस दिन यह कच्चा धागा टूट गया, उस दिन इनसान आत्महत्या कर लेगा।"

"आत्महत्या— ?" निर्मला इस बात को समझ न सकी थी।

"हाँ— आत्महत्या! क्योंकि इनसान को कोई दूसरा जीव नहीं मार सकता। अगर मारेगा तो इनसान स्वयं ही इनसान को मारेगा। वही मानवता की आत्महत्या का दिन होगा— जब इनसान मर जाएगा और मारनेवाला— इनसान नहीं रहेगा!"

निर्मला ने उसकी बात समझते हुए मन ही मन उसके सामने नत-मस्तक होते हुए सोचा कि "जब तक तुम जैसा एक भी इनसान जीवित है इनसानियत नहीं मर सकती।"

"मैं बच गया—मैं बच गया..." पागलों की भाँति डरावना अट्टहास करता हुआ उजागर सिंह किसी भूत की तरह सहसा ही जाने कहाँ से प्रकट हो गया। निर्मला उसकी सूरत देखकर काँप गई और अनजाने ही आनंद के साथ लग गई। आनंद भी संभलकर बैठ गया।

उजागर सिंह के कपड़े बिल्कुल भीगे हुए थे और उनसे पानी चुचड़ चुचड़ कर धरती पर छोटी छोटी धारियाँ बना रहा था। उसकी यह हालत देखकर आनंद ने पूछा—"उजागर, क्या तुम इस समय नदी में उतरे थे?"

कहीं अँधेरे से आवाज़ आई—"नहीं भय्या, बल्कि नदी का पानी चढ़ आया है।"

यह कहता हुआ किशन चंद उजागर सिंह के पीछे से प्रगट हो गया। उसके कपड़ों की भी यही हालत थी।

"मौलाना को बड़ी मुश्किल से पीछेवाली ढलान के उस पार तक पहुँचाकर आया हूँ। आते हुए मुझे करीब करीब तैरना पड़ा ; बल्कि यदि इस आग का प्रकाश दूर तक दिखाई न देता तो मैं पानी में रास्ता भूल जाता। पानी प्रतिक्षण चढ़ता ही जा रहा है। हम सबको अभी यहाँ से निकलना पड़ेगा नहीं तो घिर जाने का खतरा है।" किशन चंद एक ही साँस में सब कुछ कह गया।

उजागर सिंह ने अपने हाथ में पकड़े हुए उस खिलौने के भाले को हवा में लहराते हुए फिर जोर से अट्टहास किया—"मैं बच गया—मैं बच गया—!" यूँ मालूम हो रहा था मानों वह उस बढ़ते हुए तूफान पर व्यंग्य कस रहा हो या उसे चुनौती दे रहा हो।

निर्मला इतने ही में वहाँ से भाग गई थी। वह तीर की तरह अपने तंबू तक गई और उसने उस सोते हुए बालक को इस प्रकार झपट कर उठा लिया कि उसने डर के मारे एक जोर की चीख मारी और बेतहाशा रोने लगा।

बालक की आवाज के साथ ही साथ करीब करीब सारे कैम्प में शोर मच गया। जो उठता था, वह कुछ अपना ही रोना रो रहा था ; परंतु किशन चंद और आनंद के सिवा कोई किसी को पुकारने की तकलीफ़ गवारा न कर रहा था। फिर भी इस शोर के मारे आधे से ज्यादा लोग स्वयं ही जाग गये थे।

*

तेरहवाँ परिच्छेद

सब लोग उस छोटे से अलाव के गिर्द एकत्र हो गये थे।

अब बढ़ते हुए पानी का शोर हरेक को सुनाई दे रहा था और प्रत्येक व्यक्ति वहाँ से दूर चले जाने के बारे में अपना अपना परामर्श पेश कर रहा था।

जो थोड़ा बहुत सामान वहाँ मौजूद था उसे उठाने का प्रश्न ही पैदा न होता था; क्योंकि पिछले दो चार दिन बिल्कुल भूखे रहने के कारण अब किसी में सामान उठाकर चलने की हिम्मत ही न रही थी। फिर भी लोगों ने अपनी अपनी चादरें और खेस कंधे पर डाल लिये थे।

सब से बड़ा प्रश्न तो अब यह था कि वह जायें किधर को क्योंकि जो पगडंडियाँ उन्हें पता थीं वह पानी में डूब चुकी थीं और अँधेरे के कारण उन्हें यह पता न लग रहा था कि पानी ने उन्हें चारों दिशाओं से घेर लिया है या अभी कोई दिशा खाली है।

उस घटाटोप अँधेरे में प्रकाश का एक मात्र पुंज वह अलाव की आग ही थी क्योंकि न किसी के पास अब तक कोई दियासलाई बाकी थी न बीड़ी। इसीलिये कुछ दिनों से वह हर समय सूखी टहनियाँ और पत्ते डाल-डालकर उस अलाव को बुझने न दे रहे थे।

किसी ने सलाह दी कि एक जलती हुई लकड़ी को मशाल के तौर पर इस्तेमाल करते हुए चारों ओर घूमकर कोई रास्ता ढूंढ़ा जाए। बस यह आवाज निकलनी थी कि लोग उस नन्हें से अलाव पर टूट पड़े। यहाँ तक कि उसकी चार पाँच जलती हुई टहनियाँ एक दूसरे के हाथ

से छीना-झपटी के कारण बिल्कुल बुझ गईं ; और वह टिमटिमाती हुई रोशनी भी गुल हो गई। इसके बाद सबने एक दूसरे को फटकारना शुरू कर दिया।

इतने में फिर किशनचन्द ने बिखरी हुई राख में से सुलगती हुई चिंगारियों को फूँकें मार मारकर एक नन्हीं सी ज्वाल-ज्योत बनाई और उस पर उन टहनियों को रखकर फिर से जला दिया।

अबके पाँचों टहनियाँ किशनचन्द के हाथ में दे दी गईं, और वह उन्हें फूँकें मार मारकर रोशन करता हुआ उस दल के आगे आगे इर्द गिर्द की झाड़ियों के साथ साथ इधर से उधर चक्कर लगाने लगा।

* * *

उनका कैम्प किंचित् ऊँचे स्थान पर तो था परन्तु था वह बिल्कुल रेत पर जिसमें जगह जगह छोटी छोटी खाइयाँ और घाटियाँ बनी हुई थीं। इस समय उन सबमें पानी आ गया था और धीरे धीरे इर्द गिर्द की रेत भी गिरती जा रही थी।

इस अँधेरे में यह निश्चय करना भी बहुत कठिन था कि किस स्थल पर पानी कितना गहरा था क्योंकि रेत का मामला था। जाने कहाँ से उसके बंद खुल गये हों और नदी का पानी नीचे ही नीचे से छेद बनाकर निकल आया हो।

सब उसी देखभाल में लगे हुए थे कि अचानक झाड़ में से किसी ने ज़ोर की चीख मारी और वह तत्क्षण ही धरती पर लोटने लगी।

किशनचन्द फौरन रोशनी लेकर उसके निकट गया। जो लड़की आज ही मौलाना के साथ आई थी, उसे साँप ने काट लिया था।

एकदम से सारे जनसमूह पर एक आतंक छा गया, और सब लोग पीछे की तरफ़ हटने लगे। किसी एक को भी उस समय उस असहाय मरती हुई लड़की का कुछ इलाज करने का विचार नहीं आया जिसे एक मुसलमान के चंगुल से बचाने के लिए आज सवेरे वह मौलाना

को मार डालने पर तुले हुए थे; अलबत्ता इस बात पर वह सब बहस करने लगे कि—"इसका अर्थ है कि आसपास की झाड़ियों की जड़ों में भी पानी भर गया है जिसके कारण साँपों को इस सरदी के समय में भी बाहर निकलना पड़ गया है।"

* * *

सब लोग वापस अलाववाली जगह पर आ गये थे। आनन्द उस लड़की को क़रीब क़रीब घसीट कर साथ ले आया था। किशनचन्द ने डंकवाली जगह पर दो दहकते हुए कोयले रख दिये थे, परन्तु उसे तो विष के अतिरिक्त निर्बलता और आतंक ने बेहोश कर दिया था।

एक दो बार उसने 'पानी-पानी' कहा, परन्तु इस चढ़ते हुए दरिया में से पानी का एक घूँट भी लाने का साहस किसी में न था, और उस पर जब यह भय भी उनके हृदय में बैठ चुका था कि झाड़ियों और बिलों से साँप बाहर निकल आए होंगे। क्या जाने कि कुछ जानवर ऊपर से भी बहते हुए आ गये हों......

निर्मला ने बच्चे को छाती से लगा रखा था। भय और त्रास उसकी निगाहों में भी भरा हुआ था।

आनन्द ने अलाव के समीप पड़े हुए ढेर में से एक सूखा पत्ता उठाया, उसे दोने की शक्ल में बनाया और पानी लाने के विचार से उस भीड़ में से बाहर निकला।

निर्मला ने आगे बढ़कर रास्ता रोक लिया—'कहाँ जा रहे हो ?'

'पानी लाने।'

'क्यों फ़जूल जान गँवाते हो, वह तो मर गई।'

निर्मला ने न जाने क्यों आनन्द को पानी की ओर जाने से रोकने के लिए अपनी ओर से झूठ ही कह दिया। परन्तु जब आनन्द ने दुबारा भीड़ के अन्दर आकर उसे देखा तो वह सचमुच ही मर चुकी थी।

* * *

सबके चेहरों पर अँधेरे की कालिमा थी, और सब अचानक खामोश हो गये थे। इस सन्नाटे में पानी का शब्द और भी भीषण हो गया था। कभी कभी रेतीले कगारों के टूटकर गिरने का 'झब' सा शब्द भी सुनाई दे जाता।

अचानक एक आदमी चिल्लाया—"वह देखो!"

सबने उसकी ओर देखा परन्तु किसी को अँधेरे में उसकी उँगली ही दिखाई न दी कि वह किसकी ओर इंगित कर रहा था। फिर सबने चारों ओर मुँह फेरकर देखना शुरू किया, तो सबकी निगाहें दरिया के दूसरे किनारे की ओर लग गईं जहाँ दूर क्षितिज पर प्रत्यूष की क्षीण सी सफेदी प्रकट हो रही थी......

* * *

प्रत्यूष के क्षीण आलोक से ऊषा की कालिमा तक पहुँचते पहुँचते उन्हें भय, निराशा और अँधेरे के कई युगों में से गुजरना पड़ा।

परन्तु अन्ततः प्रकाश छिटका, और आकाश में रोशनी के चमकते ही उनके इर्द गिर्द का सारा इलाका चमक उठा, क्योंकि चारों ओर पानी ही पानी था।

उनके कैम्प के किनारे वाले कुछ हिस्से भी शायद बह गये थे। उधर दरिया में हर नये रेले के साथ पानी बढ़ता हुआ महसूस हो रहा था। नदी का पाट बहुत विशाल हो गया था और यूँ पता चलता था कि दूसरे किनारे के ऊँचे ऊँचे वृक्ष मंझधार में उगे हुए हैं। उनके अतिरिक्त कई बड़े बड़े वृक्ष पानी के ज़ोर में तिनकों की भाँति बहे चले जा रहे थे। कई भैंसें और गायें भी इसी प्रकार चली जा रही थीं। इसके अतिरिक्त क्या कुछ न था, और फिर दूर बहती हुई कई काली काली वस्तुओं पर मानव-शरीरों का भी धोखा होता था—और कोई यह भी तो निश्चय से नहीं कह सकता था कि वह मानवशरीर नहीं हैं...

अब तक पानी उनके कैम्पवाले स्थान पर भी फिरने लग गया था, और यह सब लोग रेत के एक ऊँचे टीले की ओर बढ़ रहे थे।

किशन चंद ने बताया कि "रात को मौलाना कह गये थे कि यहां से पश्चिम की ओर तीन चार मील दूर जाओगे तो वह बड़ी सड़क मिलेगी जिस पर इन दिनों हिंदुओं के बड़े बड़े क़ाफ़िले जा रहे हैं; और सीधा जाने से राह में मुसलमानों का कोई गांव भी नहीं आएगा।"

इस सूचना में जहाँ तीन चार मील के शब्दों ने कुछ एक का साहस ठंडा कर दिया वहां सबके हृदयों में एक नई आशा का स्पंदन भी पैदा कर दिया।

......काश उन्हें पहले से इस बात का पता होता और वह मुसलमानों के गाँवों में से गुज़रने के विचार से डरते हुए इस प्रकार इतने दिन यहां न पड़े रहते; बल्कि जिस प्रकार आज वह भूख के मारे केवल तीन चार मील चलने के नाम से कांप गये हैं, उस सूरत में इसका सवाल ही पैदा न होता था—तब उनके पास खाने का सामान भी था और वह बड़े आराम से क़ाफ़िले के साथ साथ निकल जाते...

परंतु अब बीते हुए समय पर अफ़सोस करने का अवकाश ही कहाँ रह गया था। वह अब चलने के लिये तैयार होने लगे, और किशन चन्द चारों ओर फिर कर यह अनुमान करने लगा कि किधर पानी कम है।

* * *

आनंद चुपचाप खड़ा अपने पैरों में पड़ी हुई उस लड़की के शव को देख रहा था...वह जो आज ही पनाह ढूँढ़ती हुई वहां पहुँची थी, और जिसे आज ही चिर-स्थायी पनाह मिल गई थी। अब उसे कोई खटका नहीं था। किसी तूफ़ान का भय न रहा था उसे—कैसी अनन्त शांति प्राप्त कर ली थी उसने, कितना गूढ़ चैन........।

वह यहीं कुछ सोचता हुआ उसके नीले हो गये चेहरे की ओर देखता रहा ।

...ऊषा के चेहरे को भी विष ने इसी भांति नीला कर दिया था। परन्तु क्या उसे भी इसी तरह की शांति प्राप्त हो सकी थी ? उसके चेहरे पर क्यों मृत्यु के बाद भी बेचैनी और व्यथा के चिन्ह मौजूद थे ? तो क्या मृत्यु के आलिंगन में भी प्रेमालिंगन की भांति सदा शांति नहीं होती......? नहीं, मृत्यु में अवश्य शांति प्राप्त होती होगी; कम से कम उसकी गोद में एक पनाह, एक शरण तो पाता है प्राणी ; हर प्रकार के आतंक और प्रतिदिन के भय से मुक्ति तो पा जाता है मनुष्य—फिर उसे जान बचाने के लिये इधर से उधर भागना तो नहीं पड़ता........

वह सोचता रहा ।

"वह देखो—वह सुंबल का वृक्ष !" निर्मला उसका बाज़ू झझोड़ती हुई सहसा चिल्ला पड़ी ।

दूर परले किनारे के पास एक बहुत बड़े वृक्ष का ऊपरी भाग पानी के ऊपर तैरता दिखाई दिया । उदीयमान सूर्य की लाल किरणों से उसके बड़े बड़े फूलों की ललाई और भी उजागर हो गई थी ।

"यह हमारे गाँव का वृक्ष है। यह हमारे मकान के बिलकुल साथ था । यह वही है ! हमारा—हमारा गाँव बह गया है । उनका क्या हुआ ? और प्रेम......?" और फिर उसने आनन्द की आँखों में कुछ ऐसी निगाहें गाड़ दीं जिनमें हज़ारों लाखों प्राण तड़प रहे थे ।

आनन्द भयभीत हो गया । वह इस प्रकार की निगाहों से कांप जाता था । पहले ही से वह उन भालों की भांति चुभती हुई सवालों-भरी निगाहों का सताया हुआ था—उनसे बचने के लिये तो वह लाहौर से भी भाग आया था, परन्तु यहां भी........! वह कोई उत्तर न दे सका, उसने सिर झुका लिया ।

सामने परले किनारे के साथ साथ कई चारपाइयां लकड़ियां और घरों की छोटी छोटी चीजें बहती चली जा रही थीं, निर्मला उन्हें देख रही थी और बुड़बुड़ा रही थी—'वह पलंग हमारा होगा, इसी पर प्रेम सोया करता था, लेकिन......नहीं......! वह आज भी ज़रूर जान बचाकर भाग गये होंगे......वह प्रेम को अपने साथ ले गये होंगे......" और फिर जब एक साथ ही कई शरीर बेबस तिनकों की भांति बहते हुए दिखाई दिये तो वह धीमे पड़ते हुए स्वर में कहने लगी—"नहीं—यह तो सारा गांव बह गया है, अब वहां जाने से कोई लाभ नहीं। सब डूब गये हैं... .."

और सबकी निगाहें पानी पर तैर रही थीं......कि सहसा एक आदमी चिल्ला उठा—

'किश्ती......! किश्तियां......"

और सचमुच ही दो खाली किश्तियां किसी वृक्ष से झड़े हुए दो पत्तों की भांति तीव्रगति लहरों के साथ बहती, भँवरों में फंस कर चकराती और फिर किसी मुंहजोर लहर के कन्धों पर सवार होकर तीर की भांति आगे बढ़ती चली जा रही थीं।

किश्तियाँ कैम्पवाले किनारे के समीप थीं।

"यः इधर रहने वाले उन्हीं मुसलमानों की किश्तियां हैं। शायद इधर के गांव भी बहने लगे... .."

परन्तु निर्मला की बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। वहां तो किश्तियों को समीप आता देखकर सब शोर मचाने लग गए थे। किसी ने पुकारा—मुंह क्या देख रहे हो। कोई तैरने वाला उन्हें पकड़ लाए तो सब का बेड़ा पार है।"

परन्तु तैराक उनमें कोई होता तो अब तक इस स्थान से निकल न गया होता। फिर भी दो व्यक्तियों में जाने कहाँ से इतना साहस आ गया कि वह आगे बढ़े।

किसी ने पूछा—"तैरना आता है ?"

एक ने उत्तर दिया—"नहीं। परन्तु, यह किनारे किनारे ही तो आ रही है। यहां पानी कम होगा।"

और वे घुटनों घुटनों पानी में आगे बढ़ते गये, उन्हें देख कर और भी कई एक में साहस पैदा हो गया, और दूसरों को यह चिंता होने लगी कि कहीं हम पीछे न रह जायें। अतः इसी प्रकार इक्का-दुक्का करके लोग पानी में उतरते गए।

आगे जानेवाले वे दोनों कमर कमर तक गहरे पानी में पहुँच चुके थे, किश्तियाँ उनके समीप तक पहुँच चुकी थीं, दूसरे लोग जल्दी जल्दी उन तक पहुँचने की चेष्टा कर रहे थे......कि अचानक किश्तियाँ उनके बिल्कुल निकट पहुँच गईं। परतु पास आते ही दोनों तरनीयाँ एक ऐसी तेज लहर से टकराईं कि उस लहर की झपट में आते ही वह गोली की भाँति उनके पास से निकल गईं फिर भी उन्होंने उन्हें रोकने के लिये हाथ बढ़ाए, तो उस विद्युत् वेग से टकराते ही उन दोनो व्यक्तियों ने स्वयं भी ऐसा झटका खाया कि फिर वह दोनों पलक झपकते में कई गज़ आगे दरिया की लहरों में ही हाथ पांव मारते दिखाई दिये, और दूसरे ही क्षण वह भी नदी में बहनेवाली और कई 'वस्तुओं' में सम्मिलित हो गये।

* * *

इस घटना से पिछले लोग संभल गये और वापिस होने लगे; मगर उनमें से भी एक आदमी का पाँव अचानक एक ऐसे गढ़े में जा पड़ा कि फिर वह वहाँ से निकला ही नहीं।

सब वहीं वापस आ गये जहाँ आनंद उस लाश के पास चुपचाप खड़ा था।

किशनचंद ने धीरे से उसे कहा—"दो आदमी बह गये।"

"मुसीबत से तो छूटे !" आनंद ने ठंडे से स्वर में उत्तर दिया।

किशनचंद ने उसका मूड विचित्र सा देखकर और बातचीत मुनासिब न समझी, इधर निर्मला दूसरे किनारे की ओर निगाहें गाड़े बड़ी तन्मयता से कुछ देख रही थी, शायद वह बहनेवाली वस्तुओं और मृत शरीरों में किसी को पहचानने का प्रयत्न कर रही थी।

बाकी लोग अभी कुछ निश्चय न कर पाये थे कि उन्हें क्या करना चाहिये। उन तीन व्यक्तियों के बह जाने के बाद उन्हें किशन चद से यह पूछना भी याद न रहा था कि बाहर निकलने के रास्तों के बारे में उसकी छान-बीन का क्या परिणाम निकला है...कि इतने में फिर एक किश्ती बहती हुई दिखाई दी।

अबके किसी में आगे जाकर उसे रोकने का साहस न हुआ। सब लाचारी के भाव से केवल उसे देखते रहे। अलबत्ता यदि निगाहों में उसे किनारे की ओर खींचने की कोई शक्ति हो सकती है तो वह उसका पूरा प्रयोग कर रहे थे—मानो वह किश्ती उस समय दरिया में नहीं बल्कि उन सब की निगाहों में तैर रही थी!

किश्ती ने जाने किस चीज़ से ठोकर खाई कि अचानक उसकी सीध किनारे की दिशा में हो गई और अपने पिछले वेग के ज़ोर पर वह सचमुच इसी किनारे की ओर तीव्रगति से बढ़ी; और जिस जगह कल उनके तंबू तने हुए थे वहाँ पहुँच कर वह रेत में फंस गई।

फिर क्या था! सब लोग वेतहाशा उस ओर भागे और जाते ही उसे दबोच लिया; और फिर एक दूसरे के ऊपर ही सवार होने की कोशिश करने लगे।

यह देखकर किशन चद भागा हुआ वहाँ गया, और इस शोर से भी ऊँची आवाज़ में चिल्ला चिल्लाकर कहने लगा कि—"इस तरह सब डूब जाओगे। बारी बारी जाओ; पहले औरतों और बूढ़ों को बैठने दो, बाकी नौजवान इसके सहारे तैरते हुए जा-सकते हैं।" परंतु वहाँ उसकी सुनता कौन था।

इधर निर्मला ने चुपचाप खड़े हुए आनंद से कहा कि—"आप नहीं जायेंगे ?"

"मैं तो उधर ही से भागकर आया हूँ...तुम जाओ...किशन चंद औरतों के लिये जगह बना रहा है।"

निर्मला चुपचाप बालक को गोद में लिये खड़ी रही—न कुछ बोली न इधर उधर गई।

उनके पास ही उजागर सिंह भी खड़ा था। आनंद ने उससे कहा—"उजागर तुम नहीं जाओगे ?"

"बको मत," उजागर चमका, "मैं चला जाऊँगा तो मुसलमानों को कौन मारेगा ? मुझे मेरे वतन से निकालते हो...!" और उसकी आंखों में लाली झलकने लगी।

उधर किशन चंद के चिल्लाने के बावजूद कोई किसी की नहीं सुन रहा था। वह सब एक दूसरे के ऊपर लद रहे थे। दो चार नौजवानों ने धक्का देकर किश्ती को खुले पानी में धकेल दिया था; और ज्योंही किश्ती एक विफरती हुई लहर की झपट में आने लगी त्योंहीं वह भी उसके साथ ही चिमट गये......

* * *

इतने बोझ के नीचे किश्ती सूखे पत्ते की भाँति काँप रही थी, और प्रतिक्षण ऐसा लगता था कि यह अब गई, अब गई। मगर उसके सब सवार बड़ी जवांमर्दी से इस खतरे के मुकाबिले पर डटे हुए थे। किसी स्त्री ने भी ऊँची आवाज़ में चीख तक नहीं मारी......

मदमस्त लहरें उन्हें अपने काबू में देख उनके इर्द गिर्द मारे खुशी के नाचती रहीं, पानी के तेज़ तुंद रेले एक दूसरे के हाथों में हाथ दिये उन सब पर डरावने आवाजे कसते रहे—लहरों का व्यंग बहुत भीषण था; परंतु वह सब मौन रहे।

होकर लेट जाते—परन्तु कुछ ऐसे निःसंग भाव से, मानों वह जीवित इन्सानों के बीच नहीं बल्कि किसी घने जंगल की झाड़ियों के दरम्यान सो रहे हों।

आनन्द ने लाहौर में मृत-शरीरों को भी एक दूसरे से गले मिलते हुए देखा था। उनके महल्ले का वह ग्रेजुएट क्लर्क और उसे एक दिन ज़बर्दस्ती रोकने वाला वह इंद्र, दोनों की लाशों ने उस दिन जैसे एक दूसरी का दामन थाम रखा था। सेठ किशोर लाल के लड़के प्रद्युम्न और कमलिनी की लाशें कुएँ में भी एक दूसरी की छाती से चिमटी हुई थीं। परन्तु यहाँ 'जीवित इन्सान' एक दूसरे के साथ चलते हुए भी मानों एक दूसरे से हज़ारों मील दूर दूर थे, मानों उनका एक दूसरे से कोई रिश्ता न था, कोई सम्बन्ध न था, जन्म के, जाति के या देश के नाते मानों हर क़दम पर रास्ते की धूल की तरह उड़ते और मिटते चले जा रहे थे।

यूँ तो क़ाफ़िले का सारा शोर ही एक अटूट चीख़ मालूम होता था, लेकिन फिर भी बीच बीच में कभी कभी कोई अलग और अकेली चीख़ भी सुनाई दे जाती— किसी का पति मर गया था, किसी का बच्चा तड़प कर रह गया था। परन्तु ऐसे मौक़ों पर यह विश्वास न होता था कि कोई किसी अपने के लिये रो रहा है, बल्कि यूँ जान पड़ता था जैसे किसी को मरते देखकर इन्सान अपनी मृत्यु की कल्पना से भयभीत होकर चीख़ उठा है। इसीलिये कभी कभी कोई चीख़ भी हर्ष का उन्माद-स्वर सी महसूस होती।

यहाँ आकर जैसे मानवता नंगी हो गई थी, धर्म की पोल खुल गयी थी और इन्सान अपने असली रंग में प्रकट हो गया था। उसने आज हज़ारों लाखों बरसों की परम्पराओं के ज़ोर पर बने हुए तमाम नाते तोड़ दिये थे, और अब जैसे वह बिल्कुल स्वतंत्र हो गया था—!

कोई औरत दम भर के लिये भी ज़रा थक कर बैठी नहीं कि फिर

वह अपने पति, बेटे या भाई के नाममात्र साथ से भी हमेशा हमेशा के लिये वञ्चित हो गई। कोई किसी की खातिर घड़ी भर के लिये भी नहीं कर सकता था, चाहे स्वयं उसे भी चार ही क़दम आगे जाकर गिर जाना पड़े। और फिर उसके साथ भी वही कुछ होता— वह भी उसी तरह आगे चलते चले जानेवाले अपने साथियों को देखता रहता और चुपचाप पड़ा रहता। अधिक से अधिक किसी के साथ इतना किया जाता कि यदि वह रास्ते ही में गिर पड़ा होता तो पीछे आनेवाले जिस व्यक्ति का रास्ता रुकता वह उसे घसीट कर रास्ते के एक ओर कर जाता।

परन्तु कहीं कहीं भावना की कमजोरियाँ अभी तक मौजूद थीं, आनन्द ने इस 'स्वतंत्र-युग' के होते हुए भी कुछ व्यक्तियों को अभी तक रिश्तेदारी के भावुक बंधनों में फँसा हुआ देखा। ऐसे लोगों का कोई व्यक्ति यदि बीमार हो जाता या आगे चलने के योग्य न रह जाता तो वह उसे एक ओर किसी पेड़ की छाँह में कोई कपड़ा डालकर लिटा देते, और फिर बारी बारी सब उसको दण्डवत करते, थोड़ा बहुत रोटी का टुकड़ा उसके हाथ में देते और स्वयं फिर काफ़ले के साथ हो लेते। दो चार दिन वह उसी तरह पड़ा रहता। इतने में यदि उसमें उठने की शक्ति लौट आती तो वह काफ़ले में फिर से शामिल हो जाता, नहीं तो पाँच छः दिन बाद काफ़ले के आखिरी हिस्से को जाते हुए हसरत भरी निगाहों से देखता रह जाता, यहाँ तक कि लाशें खा खा कर मोटे हो गए गिध उसके चारों ओर इकट्ठे होकर उसे भूखी निगाहों से देखने लग जाते।

कुछ उनसे भी अधिक भावुक होते तो वह रोगी या थके हुए व्यक्ति के पास स्वयं भी बैठ जाते, यहाँ तक कि पाँच छः दिनों में काफ़ले का आखिरी हिस्सा वहाँ से गुजरता। आखिर उस वक्त वह भी उसी प्रकार उसे बारी बारी प्रणाम करके काफ़ले के आखिरी हिस्से में शामिल हो जाते; और अन्त में फ़ौजी जीप गाड़ियों में बैठे हुए क़ाफ़ले के संरक्षक

सैनिक अफसर उसके पास से सिगरेटों के धुँए उड़ाते गुज़र जाते और उनमें बैठा हुआ कोई मुन्शी अपनी तफ़सील में एक का अंक और बढ़ा देता।

* * *

काफ़िला बहुत लम्बा था। एक सैनिक के कथनानुसार उसकी लंबाई साठ मील से कुछ अधिक थी, जिसे एक स्थान से गुज़रने में कोई छः सात दिन लगते थे। उसमें कोई चार लाख के करीब हिंदू सिख शरणार्थी हिंदुस्तान की ओर जा रहे थे।

इन्हें देखते हुए आनन्द सोच रहा था कि आज यह सब लोग अपनी अपनी जान बचाने के लिये उस भूमि से भाग रहे हैं जिस पर विदेशियों को पैर तक रखने से रोकने की खातिर उनके पूर्वजों ने अपना लहू बहाया था। जिन पूर्वजों ने बड़े बड़े खतरनाक पहाड़ों की प्राकृतिक सीमाओं को भी न मान कर काबुल, कंधार बल्कि मध्य-एशिया तक एक ही देश बना दिया था, उन्हीं के रक्त से रंगी हुई भूमि पर आज दो भाइयों ने नकली सरहदें, कृत्रिम सीमाएँ खड़ी कर दी हैं। जो दूसरों की तलवारों से भी न दबे उनकी औलाद आज भाइयों की राजनीति का मुकाबला न कर सकी— और आज कुछ गिनती के लीडरों ने इतने लाख इनसानों को भेड़ों के रेवड़ की भाँति इधर से उधर हाँकना शुरू कर दिया है।

जब इन्सानों ने इन्सानों का वध किया तो वह इतना हताश न हुआ था। उनमें उसे इनसान और इनसान के बीच एक पारस्परिक सम्बन्ध तो दिखाई देता था—चाहे वह शत्रुता या घृणा का सम्बन्ध था परन्तु एक सम्बन्ध तो था। लेकिन यहाँ उस काफ़िले में पहुँच कर उसने इनसान और इनसान के बीच जो निःसंगता, जो विराग, जो बेगानगी देखी थी, वह उसे निराश कर रही थी। यहाँ कोई किसी को जानता भी न था—तो क्या अहिंसा इसी को कहते हैं—?

वह इसी प्रकार के विचारों में डूबा हुआ चलता चला जा रहा था। भूख और थकान के मारे उसके पैर बहुत आहिस्ता उठ रहे थे, और दूसरे लोग उससे आगे बढ़ते चले जा रहे थे। निर्मला और किशनचंद उसके साथ साथ चल रहे थे। लेकिन उनकी हालत भी वैसी ही थी। फिर भी किशन चंद बार बार हिम्मत बंधाने वाली बातें करता रहता था, जिससे आनंद के बढ़ते हुए मौन के बावजूद निर्मला का दिल लगा रहता।

बालक फिर मुर्झा गया था, उसे तीनों बारी बारी उठाते, इस प्रकार के बेपरवाही से गोदों में उलटते पलटते रहने से उसका भी अंग अंग थकावट में चूर हो गया था, और अब वह आटे की थैली की तरह हर हालत में चुपचाप पड़ा रहता, थकावट या भूख के मारे अब उसका रोना भी बंद हो गया था, फिर यदि वह रोता था तो उसकी आवाज़ ही सुनाई नहीं देती थी, कई दिनों से कुछ न खाने के कारण निर्मला की छातियों में दूध सूख रहा था। उधर प्रतिदिन कमज़ोर होते हुए बालक में इतनी शक्ति भी न रह गई थी कि वह उसके सूखे हुए स्तनों को इतने ज़ोर से चूसे कि उनमें से थोड़ा बहुत दूध निकल आए। चुनांचे बीच बीच में एक किनारे पर बैठ कर निर्मला उसका मुंह खोल कर अपने हाथों से स्तनों को ज़ोर ज़ोर से निचोड़कर कुछ क़तरे उसके मुंह में टपकाती और वह पोपले मुंह से चाट जाता। लज्जा का तो प्रश्न ही उठ चुका था क्योंकि उस काफ़ले में सूरत शक्ल से तो कोई आदमी ही नहीं दिखाई देता था।

*

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

इस क़ाफ़ले के साथ उन्हें चौथी या पांचवी रात थी। सारे शरीर के पुट्ठों में स्थायी प्रकार के खल पड़ गए थे, जिससे अब केवल पीड़ा का एहसास होता था, थकावट का नहीं। और फिर भूख के मारे नींद भी तो नहीं आ रही थी।

किशन चंद् ने खुशखबरी सुनाते हुए कहा—सुना है कि कल शाम को हम सुलेमानकी का पुल पार कर लेंगे।

"सच—?", निर्मला ने उठ कर बैठते हुए पूछा, "क्या तुमने किसी मिलिटरीवाले से पूछा?"

"हां—! कहते हैं कि हम से बस पांच मील दूर रह गया है। आज तक आधा क़ाफ़ला तो पुल के पार तक जा भी चुका होगा।"

"वह लोग तो हिंदुस्तान पहुँच कर बड़े आराम में हो गए होंगे", निर्मला ने हसरतभरी आवाज़ में कहा।

"कह नहीं सकता, लेकिन फिर भी इस मुसीबत से तो छुटकारा मिल गया होगा उन्हें—", कुछ देर रुक कर उसने फिर कहा।

"लेकिन सुना है कि इसी पांच मील के इलाके में पाकिस्तानी मिलिट्री ज्यादा होने के कारण बहुत से लोग काफ़लों पर लूट मार के लिए धावे भी करते हैं।"

"लेकिन हमारे साथ भी तो मिलिट्री है।"

"मगर काफ़ी नहीं, आज एक फ़ौजी कह रहा था कि इसी लिए कल शायद हिंदुस्तान की ओर मिलिट्री क़ाफ़ले की रक्षा के लिए पहुंचने वाली है—सुना है कि वह गाड़ियां भी लाएँगे।"

"कितनी रोटियां लाएँगे—? क्या सब को एक एक मिलेगी ?" निर्मला ने किसी प्रकार की खुशी प्रकट न करते हुए, पूछा ।

"पता नहीं कितनी लाएंगे ! यूं तो हवाई जहाज़ों से भी रोटियां गिराई जाती हैं । कहते हैं कि काफ़ले के अगले हिस्से पर तो कल भी हवाई जहाज से कितने मन रोटियां फैंकी गई थीं—स्वयं जवाहरलाल जी भी जहाज़ में थे। "

"झूठ है—?" आनंद जो अब तक चुपचाप पड़ा सुन रहा था, एक दम बोल उठा, "भला उन्हें क्या पड़ी है कि हमारे लिए रोटियां भेजें, आखिर जवाहर लाल के हम कौन होते हैं ? तुमने देखा नहीं कि यहां जो अपने नजदीकी रिश्तेदार हैं वह एक दूसरे को सड़क पर छोड़ कर चले जाते हैं । फिर जवाहरलाल हमारा कौन है—उसके अगर कोई रिश्तेदार हैं तो वह यू० पी० में होंगे ।"

"लेकिन भय्या, हम सब भी तो उसके अपने हैं ।"

"नहीं-कोई किसी का नहीं, यहां कोई किसी का नहीं," आनंद उठ कर बैठता हुआ कहने लगा, "हां, अलबत्ता एक बात हो सकती है कि उसे कोई ग़रज़ होगी ! शायद उसे इन सब लोगों से वोट लेने हों, या फिर उन्हें किसी लड़ाई की भट्ठी में झोंकना होगा—नहीं तो कौन किसी को रोटी देता है ? हूं !" और वह उपहास-भरी निगाहों से आकाश की ओर देखने लगा ।

किशन चंद भी उठ कर बैठ गया, "तुम्हें क्या हो गया है भय्या ! तुम बीमार हो गए हो, तुम यह सब उन्माद में कह रहे हो ।" और फिर उसने निर्मला की ओर देख कर कहा कि "हम एक दो दिन यहीं आराम करेंगे, ताकि यह ठीक हो जाएँ, नहीं तो हम संसार के महानतम व्यक्तियों में से एक को खो देंगे । मौलाना भी यही कह गए थे कि यह एक महान व्यक्ति हैं—निश्चय ही यह होश में ऐसी बातें नहीं कर सकते ।"

निर्मला भी उठ कर बैठ गई। उसने आनंद की बांह पर हाथ रखते हुए कहा—"तुम्हें क्या हो गया है—तुम लेट जाओ, जरा आराम करो।"

"मैं आराम नहीं कर सकता," आनंद ने उसी तरह रुखाई से उत्तर दिया।

"तुम क्या चाहते हो?" किशनचंद ने पास आकर पूछा।

"मैं जो चाहता था, वह पहले कब हो सका जो अब हो जाएगा," आनंद ने किसी प्रकार का जोश दिखाए बगैर कहा, "मैं कुछ नहीं चाहता—मुझे तो केवल अफसोस है!"

"अफसोस किस बात का—?" किशनचंद उसका दिल खोलना चाहता था।

"इस बात का कि उस किश्ती में मैं भी क्यों न जा बैठा। वह सब बहुत बुद्धिमान थे—सब समझदार थे—कितनी शांति से और फिर कितनी जल्दी उन्हें नदी की गोद में आश्रय मिल गया—कितनी शांति... कितना सकून..." वह सपने में बोलने वाले की भांति कहे जा रहा था।

किशनचन्द ने एक बीमार के साथ दलीलबाजी करना उचित न समझते हुए पैंतरा बदल कर उसी की दलील से उत्तर दिया—"लेकिन वह समय तो अब निकल गया। गये वक्त पर अफसोस करने से अब क्या हो सकता है?"

"अब भी हो सकता है—" आनन्द ने जोर देते हुए कहा, "अभी समय है। काश अब भी मुसलमानों की कोई टोली हम पर हमला करके हमें खतम कर दे, तो अब भी हो सकता है—वरना हिन्दुस्तान में क्या रखा है—वहाँ शांति कहाँ है—!"

० ० ०

...और मानो उसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई। दूसरी सुबह काफ़िले के [illegible] हमला हो गया।

भोर के उजाले में अभी रात के कुछ अंधियारे की मिलावट मौजूद

थी कि उनसे कुछ ही कदम आगे एक शोर उठा, और फिर औरतों और बच्चों के रोने की चीख पुकार के साथ साथ "बचाओ-बचाओ..." की आवाजें आने लगीं।

संरक्षक फौज का कोई सिपाही शायद पास नहीं था। चुनांचे लोग "फौज फौज" के लिये पुकारते हुए इधर उधर भागने लगे जिससे एक भगदड़ सी मच गई।

लोग उनके पास से भागते चले जा रहे थे, लेकिन वह चारों वहीं खड़े रहे; बल्कि किशनचन्द तो जल्दी से ऊँची आवाज़ में लोगों से यह कहता हुआ आगे बढ़ा—"अरे—कायर क्यों बनते हो—मुकाबला करो।"

लोग फिर भी भागते रहे और किशनचन्द आगे बढ़ता हुआ आनंद और निर्मला की निगाहों से गुम हो गया। केवल उसकी मद्धम सी आवाज़ दूर से भी सुनाई देती रही।

निर्मला ने चुपचाप खड़े हुए आनन्द से कहा—"आगे चलिये।"

"किसके लिये—?" आनंद ने अत्यंत रुखाई से पूछा।

इतने में उस ओर से गोली चलने की आवाज आई।

भागते हुए लोग रुक गए। किसी ने कहा—"फौज आ गई।" और लोग फिर आगे को मुड़ने लगे। निर्मला भी आनद के साथ साथ आगे बढ़ी।

जरा आगे गए तो देखा कि किशनचंद और एक मुसलमान से गुत्थम-गुत्था हो रहा है। मुसल्मान के हाथ में बंदूक थी, जिसे किशनचंद दोनों हाथों से पकड़कर इस तरह चिमट गया था कि मुसलमान को बंदूक छुड़ानी मुश्किल हो रही थी। किशनचंद के कपड़े खून में तर हो रहे थे। जिस गोली की आवाज आई थी, वह सम्भवतः इसी छीना-झपटी में चलाई गई थी, और किशन चंद ही के लगी थी।

दूसरे लोग ज़रा दूर खड़े तमाशा देख रहे थे। वह इस हद तक

कायर हो चुके थे कि किसी में आगे बढ़कर किशनचंद की मदद करने की हिम्मत पैदा न हुई।

किशन चंद बंदूक को न छोड़ता हुआ कह रहा था—"नहीं इस्माइल, नहीं—यह ज़ुल्म न करो। खुदा के लिये उन्हें भी आवाज़ दो, और उन लड़कियों को छोड़ जाओ।"

"देखो तुम मुझे छोड़ दो..नहीं तो अच्छा न होगा," मुसलमान ने उत्तर दिया; और किशन चंद के गोली से छिदे हुए सीने में एक लात मार कर उसे नीचे गिरा दिया।

किशन चद ने फिर भी बंदूक न छोड़ी। लेकिन उस लात से उसकी आवाज उखड़ गई थी। उसने उखड़ती हुई आवाज में कहा—"खुदा के लिये... रसूल के लिये..."

"खुदा और रसूल का नाम लेते अब तुम्हें शरम नहीं आती... काफ़िर...!" मुसलमान ने एक झटका देते हुए कहा।

किशन चंद ने वह झटका भी सह लिया, और फिर कहने लगा—'मैं मर रहा हूँ—इस्माइल यह मेरी आखिरी दरख्वास्त है.....मैं तुम्हारा सगा भाई हूँ।'

"नहीं—तुम मेरे भाई नहीं हो, मुजाहिदों के रास्ते में रोड़े अटकाने वाले तुम काफ़िर हो—काफ़िर!" और फिर उसने बन्दूक का दस्ता इस ज़ोर से उसकी तरफ़ धकेला कि वह किशनचन्द के पेट में घुस गया—"तुम्हारी यही सज़ा है बेईमान—याद रखो कि कयामत के दिन भी अब तुम्हारी सिफारिश करनेवाला कोई न होगा।"

किशनचन्द ने चोट खाकर भी धीमी आवाज़ में जवाब दिया—"ला इल्लाहिल्लिल्लाह......"

इतने में नहरों से आती हुई एक फौजी जीप की आवाज़ आई। और उसे देखते ही वह मुसलमान अपनी बन्दूक वहीं छोड़कर नहरों में एक तरफ़ को भाग गया।

सड़क से कुछ दूरी पर पाकिस्तानी फौज का एक दस्ता अपने मुल्क की हिफाज़त के लिए ड्यूटी पर खड़ा था, उस मुसलमान के कुछ साथी क़ाफले की दो चार लड़कियों को उठाकर पहले ही उस दस्ते के पीछे पहुँच चुके थे। वह भी तेज़ी से उनके साथ जा मिला। मुसलमान फौजियों ने फौरन उसे जाने के लिये रास्ता दिया, और फिर अपनी कतार ठीक करके सामने खड़े हो गये।

इधर किशनचन्द कलमा पूरा कर रहा था—"......रसूल अल्ला!" तमाशा देखनेवालों में से किसी ने कहा—"अरे—यह भी मुसलमान है!"

और इस आवाज़ के साथ ही काफले के सब 'वीर' खून में लतपत किशनचन्द पर इस प्रकार पिल पड़े जैसे किसी चबाई हुई हड्डी पर कुत्ते टूट पड़ें।

निर्मला से बर्दाश्त न हो सका। वह तेजी से आगे बढ़ी। उसके एक हाथ में बच्चा था, दूसरे हाथ से उसने लोगों को एक छटपटाती हुई स्त्री के अन्दाज़ में पीटना शुरू किया। लेकिन वहाँ उसकी कौन सुनता था। वह परेशान होकर आनन्द की तरफ पलटी।

आनन्द गुमसुम खड़ा यह सब कुछ देखता हुआ न जाने क्या सोच रहा था। निर्मला ने आते ही उसकी बाँह पकड़कर झंझोड़ना शुरू किया।

"उसे बचाओ—उसे बचाओ। यह लोग मार डालेंगे!"

"चुप रहो—" आनन्द ने एक वैराग्यपूर्ण कठोरता से कहा—"वेताल्लुकी का जमूद टूट रहा है, उसे टूटने दो, शत्रुता और नफरत का सही मगर इनसान और इनसान के दर्म्यान सम्बन्ध पैदा हो रहा है—" और वह मुसकराने लगा।

निर्मला उसकी बात को बिल्कुल न समझ सकी। फिर भी वह उसे

उसी प्रकार झंझोड़ती चली गई—"तुम क्या सोच रहे हो। उसे बचाते क्यों नहीं।"

"मैं बच गया—मैं बच गया—" कहता हुआ और कहकहे लगाता हुआ उजागर सिंह जाने कहाँ से आ गया। और फिर हाथ में वही नन्हा सा टीन का 'भाला' लिये वह उस भीड़ की ओर लपका।

"कहाँ है वह मुसल्ला—कहाँ है वह—??"

उसने इस प्रकार गरज कर पूछा कि रहमान के गिर्द खड़े हुए लोग सहमकर एक तरफ हट गए।

आनन्द को जाने क्या हुआ कि वह भी उजागर के पीछे ही उस ओर लपका।

इधर उजागरसिंह ने बड़े तकल्लुफ के साथ पैंतरा जमाकर एक नेज़ाबाज़ के अन्दाज में अपना 'भाला' सम्भाला, और किशनचन्द की छाती का निशाना ताक कर उस पर हमला कर दिया। मगर इससे पहले ही आनन्द ने तेजी से आगे बढ़कर उसे दबोच लिया, और उसे गोद में जकड़ कर कहने लगा—

"यह क्या कर रहे हो उजागर—यह वह मुसलमान नहीं है।"

निर्मला की रंगों में अब तक एक अजीब सा तनाव आ चुका था, वह अब पत्थर की मूर्ति सी जड़वत् हर घटना के लिए तय्यार हो चुकी थी। परन्तु आनन्द को यूं करते देख जैसे उसकी साँस दोबारा चलने लगी। अकस्मात् ही मिलने वाली इस आत्मिक सी सांत्वना के कारण उसके अंग अंग फिर ढीले पड़ गए, और उसने आगे बढ़कर अपने शिथिल शरीर को जैसे आनन्द के ऊपर गिरा दिया।

अब उसकी आँखों से आँसू भी छूट गए थे और गालों पर बहते हुए आंसुओं से आनंद की कमीज को भिगोते हुए उसके मुँह से केवल इतना निकला—"तुम देवता हो!"

आनंद तूफान के बाद आनेवाली शिथिलता की तरह गिरती हुई

आवाज में बोला—"हां—देवता ही तो हूँ—......इनसान बनना बहुत मुश्किल है।"

इतने में दो तीन फौजी गाड़ियां घटनास्थल पर पहुँच गई थीं। उन्होंने अभी अभी जबर्दस्ती उठाई गई लड़कियों के नाम इत्यादि उनके रिश्तेदारों से पूछने शुरू कर दिये ; और फिर वह अपनी रिपोर्ट लिखने में व्यस्त हो गए।

सामने सड़क से कुछ ही गज परे पाकिस्तानी फौज अपने देश की रक्षा के लिये कतार बांधे डटी खड़ी थी।

काफला फिर आहिस्ता आहिस्ता रेंगना शुरू हो गया था। गुजरते हुए लोग खून में लथपथ किशनचंद और उसके करीब बैठी हुई निर्मला को देखते हुए गुजरते तो उंगलियां उठा उठाकर अपने साथ वालों से कुछ कहते और आगे चलते जाते।

किशनचंद रुकती हुई सांसों के दरमियान अपनी कहानी संक्षेप में सुना रहा था—"मेरा नाम रहमान है, यह मेरा भाई इस्माइल था... हमें जालंधर में लूट लिया गया था......पाकिस्तान में आकर हमने भी उसी तरह लूट मार करना चाही...पाकिस्तान में आकर...हमारी बहिन को हिंदू ले गये...इसीलिये यहाँ की लड़कियों को हम......" वह फिर रुक गया। उसके लिये साँस लेनी मुश्किल हो रही थी।

निर्मला उसकी छाती के घाव पर अपना दुपट्टा रखे रोती हुई कह रही थी—"यह तुमने क्या किया किशन!"

"नहीं—मेरा नाम रहमान है......जब हमने पहली लड़की को उठाया तो...मुझे महसूस हुआ कि मेरी बहिन भी इसी तरह चीखती-चिल्लाती गई होगी......फिर मैं उसका यह बच्चा उठाकर किसी हिंदू काफले को ढूंढ़ता फिरा......शायद उसकी मां.. ......" वह फिर रुक गया।

आनंद पास ही खड़ा था और अब तक केवल एक दर्शक की भाँति

चुपचाप खड़ा था। परंतु अब वह आप ही आप कहने लगा—"मैं पहले ही जानता था कि तुम Sadist हो—वेदना-पूजक! तुमने इस बालक को भी उस समय चैन से मर जाने नहीं दिया। तुमने इसे इसी लिये ज़िंदा रखा ताकि वह भूख से तड़प तड़पकर मरे।"

और रहमान निर्मला से कहता गया—"भय्या की हिफाज़त करना......बहुत सारी चोटों ने उनका दिमाग हिला दिया है, वह बीमार हो गये हैं......इस इनसान को न मरने देना बहिन...... बस—अब...मैं जाऊं..."

निर्मला चीख उठी—"कहां जाते हो—कहां जाते हो रहमान भाई—?"

रहमान ने फिर आंखें खोल दीं—"जहां गुनाह नहीं है.....जहां नेकी ही नेकी है..."

आनंद हँसा—"ऐसी कोई जगह नहीं है।"

रहमान ने आँखें बंद किये हुए ही कहा—"है...खुदा ने जरूर बनाई हो...गी—"

कि अकस्मात् ही शिकारी बाज की तरह एक खुले बालोंवाली लड़की निर्मला पर इस तरह झपटी, जैसे बाज किसी कबूतरी पर।

"मेरा बेटा—मेरा बेटा—" चिल्लाती हुई वह निर्मला की गोद से बालक को यूं झपट कर ले गई जैसे डाली से फूल नोच लिया जाए।

निर्मला तड़पकर उसके पीछे दौड़ी, और उसके एक कदम आगे बढ़ने से पहले उसने बालक की टाँगें पकड़ लीं।

"कहाँ लिये जाती हो मेरे बेटे को—?"

आनंद को भी एक जोर का झटका सा लगा, और तेज़ी से आगे बढ़कर उसने झट उस वेहूदा लड़की के मुँह पर एक जोर का तमाचा मारा औरा झपट कर उससे बालक छीन लिया।

तमाचा इस जोर का पड़ा था कि उसके मैले चीकट मुँह पर भी

"अब तो चैन से मर गए हो ना।" उसने जैसे रहमान को ताना दिया।

परंतु रहमान के चेहरे पर जैसे उसका उत्तर लिखा हुआ था—"आखिर मिल गई न ऊषा तुम्हें—?"

यह कटार की सी तेजी से दिल में उतरता हुआ प्रश्न आनंद को उस स्थान पर ले गया जहाँ पहुँच कर उसे हँसी आने लगी, और उसका जी चाहा कि वह खूब जोर से हँसने लग जाए।

कुछ चकराते हुए से क्षणों के लिये तो उसे यह सब एक बहुत बड़ा मजाक, एक ठट्ठा दिखाई देने लगा—उसके पास से रेंगता हुआ यह काफला, हैरान परेशान खड़ी हुई निर्मला, अपने पुत्र को छाती से चिमटा कर बैठी हुई ऊषा, खून में लथपथ रहमान की लाश, और सड़क से कुछ ही गज के फासले पर अकड़ कर खड़े हुए पाकिस्तान के रक्षक और उनकी कतार के पीछे गुम हो जानेवाले वह रहमान के भाई-बंद जो अभी अभी काफले की कुछ लड़कियों को उठा कर ले गए थे, और फिर वह हिंदुस्तानी रक्षक-सेना जो अभी अभी इन उठाई जाने वाली लड़कियों का ब्योरा बना कर ले गई थी—यह सब कुछ उसे एक बहुत बड़ा मजाक दिखाई देने लगा—मानों किसी सस्ते किस्म के प्रहसन में बड़ी गम्भीर तत्परता के साथ वाहियात और बेहूदा मूर्खताओं की हद कर दी जाए, और मानों यह नाटक समाप्त होते ही यह सब पात्र और सूत्रधार एक दूसरे के हाथों में हाथ डाल कर इन बेहूदगियों को याद करके फिर से हँसने लगेंगे, कहकहे लगाएंगे—और उसका जी भी चाहने लगा कि वह एक जोर का कहकहा लगाए—

* * *

निर्मला इन एक के बाद एक होनेवाली घटनाओं में जैसे गुम हो गई थी। यह सब कुछ जो देखते ही देखते हो गया था, वह उसे समझने

और पचाने को कोशिश कर रही थी। उसके सामने जमीन पर बैठी हुई ऊषा बालक को छाती से चिमटाए उसे बार बार चूम रही थी।

बालक जो पहले ही भूख से निढाल था, इस छीना-झपटी में जैसे बिल्कुल चूर हो गया था। यहाँ तक कि उसकी बांहें भी अब नहीं हिल सकती थीं, और न वह आंखें ही खोल सकता था। अलबत्ता माँ की छाती के साथ लगा हुआ वह इस प्रकार मुँह हिला रहा था जैसे सपने में दूध पी रहा हो।

"इसे भूख लगी है" निर्मला ने उस लड़की से कुछ इस प्रकार कहा जैसे किसी रूठे हुए साजन से बात करने का बहाना ढूँढ़ा जाता है।

"भूख लगी है—मेरे बेटे को भूख लगी है—?" कहते कहते ऊषा ने झट अपनी कमीज उठा कर बालक का मुँह अपनी छाती पर रख लिया; और उसके साथ ही अपना मुँह उसके मुँह पर रखकर स्वय बिलख बिलख कर रोने लगी।

निर्मला ने उसकी ओर गौर से देखा तो डर के मारे उसकी चीख निकल गई। उसने जल्दी से अपनी उँगलियां दाँतों तले दे दीं और फिर इस जोर से दाँत बंद किये कि उंगलियों से खून बहने लगा।

बालक नंगी छाती की गर्मी पाकर माँ के स्तनों को ढूँढ़ने के लिये मुँह मार रहा था, मगर वहाँ स्तन कहाँ थे—वह तो किसी जालिम ने छुरी से काट दिये थे......

निर्मला यह देखकर बेहोश होनेवाली थी कि ऊषा ने बिजली की तेजी से उठकर बच्चा वापस उसकी गोद में पटक दिया।

"लो तुम दूध पिलाओ इसे—यह मेरा बच्चा नहीं है—यह मेरा बच्चा नहीं है......"

और यह कहते कहते वह तेजी से भागती हुई काफले की भीड़ में गुम हो गई। केवल उसकी आवाज दूर से भी आती रही!

"यह मेरा बच्चा नहीं है—यह मेरा बच्चा नहीं है—"

इससे पहले कि निर्मला इस नए सदमे से सँभलती आनंद ने झपट कर उसकी गोद से बालक छीन लिया और जिधर वह लड़की गई थी उस तरफ भागने ही लगा था कि निर्मला ने उससे शीघ्रतर दो कदम उठाकर उसका रास्ता रोक लिया—"क्या कर रहे हो? जाने दो उस बेचारी को—लाओ दे दो इसे मुझे!"

आनन्द ने आगे बढ़ने के लिए जोर करते हुए कहा—"नहीं—यह तुम्हारा बच्चा नहीं है—यह मेरा और ऊषा का भी नहीं है—यह सिर्फ उसका है...तुम नहीं जानतीं कि यह सब केवल मुझे सताने के लिये आते हैं, और फिर खुद भाग जाते हैं—कभी जहर खाकर और कभी गोली खाकर......"

"तुम्हें क्या हो रहा है—भगवान के लिए दया करो, अपने आप पर दया करो—" और यह कहते कहते उसे रोकने के लिए उसने अपनी बाँहें आनन्द और बालक के गिर्द डाल दीं—उसे अब आनन्द पर तरस आने लग गया था और उसी दया के कारण वह उससे निकटतर हो गई थी।

"इसे मुझे दे दो—इसे भूख लगी है।" उसने बड़े प्यार भरे अंदाज़ में उसे समझाना चाहा।

"लेकिन तुम्हारी भूखी छातियों में भी दूध कहाँ है?" आनन्द ने बे-तकल्लुफ़ होते हुए कहा।

.....और यूँ तो अब बालक को किसी दूध की आवश्यकता ही न थी—वह आनन्द की गोद ही में मर चुका था।

❀

सोलहवाँ परिच्छेद

आनन्द बच्चे की लाश को छाती से लगाए यूँ चल रहा था, जैसे कोई नींद में चल रहा हो, या जैसे वह किसी विराट् शून्य में कदम रखता हुआ किसी अनजानी दिशा में अकारण ही बढ़ता चला जा रहा हो—और उस अनजाने शून्य-पथ पर केवल वह बालक ही उसके साथ था। बाकी सब कुछ उसे अपने से बहुत दूर दिखाई दे रहा था। यहाँ तक कि उससे बातें करती हुई निर्मला की आवाज़ भी उसे इस महा-शून्य के उस पार से आती महसूस हो रही थी।

निर्मला उसे बार बार समझा रही थी कि अब इस मृत शरीर को फेंक ही देना चाहिए। परन्तु आनन्द जैसे उसकी बात सुन ही नहीं रहा था। वह अपने मुंह से भी तो कुछ नहीं कहता था कि वह क्या चाहता है—क्या सोच रहा है। वह तो केवल बच्चे को छाती से चिमटाये चुप-चाप चलता चला जा रहा था और बस—

* * *

आधा दिन उसी प्रकार बीत गया। निर्मला ने उसे हर प्रकार से समझाया, उसने आनन्द को सड़क के किनारे पड़े हुए वह जीवित बालक दिखाए, जिन्हें उनकी माताएँ अपने हाथों वहाँ रख गई थीं क्योंकि उन्हें उठाकर चलने की हिम्मत अब उनमें बाकी नहीं रही थी और क्योंकि कई कई दिन की भूख के कारण उनकी छातियों में दूध की तो कहाँ शायद लहू की बूँद भी नहीं रह गई थी।

अंत में बेचारी ने अपने दिल पर पत्थर रखकर यहां तक भी कहा

कि—"तुम से अधिक तो मुझे इस बालक का दुख होना चाहिए, क्योंकि मैं इसे अपना प्रेम समझ बैठी थी...लेकिन फिर भी......" और इसके आगे उसके आँसुओं ने उसका गला बंद कर दिया।

परंतु आनंद के तो आँसू भी नहीं आए। उसे तो जैसे अब कोई दुख ही नहीं रह गया था—बिल्कुल उस बालक की भांति जिसे अब भूख, प्यास, गर्मी या थकन कुछ भी न रुलाती थी। यहाँ तक कि बीच बीच में किसी वक्त आनंद भी उस बालक की तरह केवल एक मृतशरीर ही दिखाई देता। शायद मृत्यु स्वयं एक मृतशरीर को उठाए चल रही थी, या फिर एक मृतशरीर ही मृत्यु को अपने कंधे पर उठाए हुए था—और यह देखकर निर्मला कांप कांप उठती। फिर उसके कानों में रहमान का वह वाक्य गूँज उठता कि "इस इनसान को न मरने देना"—और वह नए सिरे से कोशिश शुरू कर देती......

*　　　　*　　　　*

......और अन्त में वह सफल हो गई।

शायद आनन्द को सच्चाई का एहसास हो गया था, चुनांचे बालक को साथ वाले बंजर खेत में डालने के लिये ले जाते समय उसकी आँखों में आँसू भी आ गए—वह फिर से महसूस करने लग गया था।

सड़क से परे हटकर वह और आगे बढ़ने लगा, तो निर्मला ने सड़क के किनारे से आवाज़ दी—"आगे कहाँ जा रहे हो?"

"तो क्या यहीं मिट्टी में फेंक दूँ?" आनन्द ने बड़े चिड़चिड़े स्वर में कहा—"कोई छांव वाली घास की जगह ढूँढ रहा हूँ।"

वह आगे बढ़ता गया।

कुछ ही कदम आगे गया था कि सामने से एक कर्कश ध्वनि आई—"किधर आ रहे हो?"

सड़क से कोई सौ गज़ दूर खड़े एक मुसलमान सैनिक ने हाथ में टामीगन लिये हुए उसे ललकारा।

"इस लड़के के लिए कोई जगह ढूँढ़ रहा हूँ।" आनन्द ने उत्तर दिया।

"वापस सड़क पर चले जाओ। यह पाकिस्तानी इलाक़ा है," सामने से उत्तर आया।

इतने में उस सिपाही की बन्दूक देखकर निर्मला भागी हुई आनन्द के पास आ गई थी। उसने उसे समझाते हुए कहा कि "वह देखो थोड़ी थोड़ी दूरी पर पाकिस्तान के फौजी आखिर तक खड़े हैं; वह आगे नहीं जाने देंगे। लाओ—यहीं सही!"

और यह कहकर उसने एक ऐसे स्थान पर, जहाँ सिर्फ चार पाँच दूबें उगी हुई थीं, धरती साफ करके अपना वह फटा हुआ दुपट्टा बिछा दिया, जिस पर रहमान का खून जमा हुआ था।

आनन्द ने हृदय में से उठती हुई एक हूक को सीने के अन्दर ही दबाकर बालक को इस तरह उस फटे हुए दुपट्टे पर डाल दिया जैसे किसी रोती हुई आँख ने अपना आखिरी आँसू किसी के खुश्क पल्लू पर गिरा दिया हो......

* * *

निर्मला उसकी बाँह पकड़कर उसे धीरे धीरे फिर सड़क की तरफ ले गई। दोनों चुप थे।

सड़क के पास पहुँचकर आनन्द ने एक बार फिर मुड़कर उस ओर देखा, जहाँ वह बालक पड़ा हुआ था। इतनी ही देर में दो गिद्ध उसके समीप आ गए थे। दूसरी ओर से एक कुत्ते ने उसे घेर लिया था, और तीनों का भाव कुछ ऐसा था, मानों एक दूसरे को कह रहे हों—"पहले आप—!"

आनन्द ने एक झटके से अपनी बाँह छुड़ा ली और तीर की तरह वापस उस स्थान पर पहुँच गया।

दोनों गिद्ध और वह कुत्ता वहाँ से हिले नहीं। बल्कि उन्होंने कुछ

ऐसी सहानुभूति के भाव से उसकी ओर देखा, मानों कह रहे हों—"हमें तो आजकल खाने को बहुत मिलता है, मगर आप भूखे दिखाई देते हैं—तो चलिये पहले आप ही सही—!"

आनन्द ने उस नन्हीं सी लाश को इस प्रकार झपटकर उठा लिया जैसे किसी से उसे छीन रहा हो; और फिर भागकर निर्मला के पास आ गया।

"वहाँ इसे वह गिद्ध खा जायेंगे!" उसने पागलों के से अंदाज़ में आकर निर्मला से कहा—"फिर मैं उसे क्या जवाब दूँगा।"

"किसे—?"

"ऊषा को—"

निर्मला को अब विश्वास हो गया कि बीमारी में उसके दिमाग़ पर भी असर हो गया है। रहमान ने ठीक ही कहा था कि वह बीमार है। उसका सारा शरीर भी इस समय भट्ठी की रेत की तरह तप रहा था। निर्मला के मनमें उसके लिये जो भाव पैदा हो चुके थे, इस स्थिति में वे और भी ताक़त पकड़ते दिखाई देने लगे। वह मन ही मनमें एक भावुक सा प्रोग्राम बनाने लगी—"कल जब वह हिन्दुस्तान की धरती पर पहुँच जायेंगे; जब यह हर वक्त का डर, हर समय की भागदौड़ समाप्त हो जाएगी, जब वह किसी रिफ्यूजी कैम्प ही में सही मगर शांति से कहीं बैठ सकेंगे तो वह उस देवता की किस प्रकार सेवा करेगी, किस तरह उसे अच्छा कर देगी, मौलाना जिसे संसार के सबसे बड़े इनसान की टक्कर का समझते हैं, रहमान जिसके लिये मरते समय भी सिफारिश कर गया है, जो एक मृतबालक को भी धूप और मिट्टी में नहीं डाल सकता, उसके दुखों को दूर करने का सौभाग्य उसे प्राप्त होगा, जिस पर वह जीवन भर गर्व कर सकेगी। उसे विश्वास था कि यह महान व्यक्ति एक दिन संसार भर के दुखी इनसानों का सहारा होगा—और आज वह उसका सहारा बन रही है......"

यही कुछ सोचती हुई वह आनंद की बांह पकड़े काफले के साथ धीरे धीरे चली जा रही थी। आनंद बिल्कुल चुप था और लाश उसकी गोद में थी।

काफले की गति बहुत धीमी पड़ गई थी। सुलेमानकी का पुल केवल चंद फर्लांग दूर रह गया था, सड़क के दोनों ओर पाकिस्तान के फौजियों की कतार बनी होती जा रही थी, जिससे सीमा की चौकी के निकट होने का पता चलता था......

अब भी कहीं कहीं से कोई चीख सुनाई दे जाती थी और इस प्रकार किसी और के मरने की सूचना मिल जाती।

* * *

अचानक काफले के अगले हिस्सों में कुछ हलचल पैदा हुई। और दूसरे ही क्षण हवाई जहाज़ की आवाज सुनाई दी......और फिर ज्यों-ज्यों हवाई जहाज आगे बढ़ता गया, मानों चीख पुकार और आर्त्तनाद की एक लहर आगे बढ़ती चली आई—

लोग रो रहे थे, लोग चिल्ला रहे थे, एक दूसरे को मार रहे थे, एक दूसरे से रोटी के छोटे छोटे टुकड़े छीन रहे थे, एक दूसरे को पैरों तले रौंद रहे थे...

एक विचित्र, दिल हिला देनेवाला दृश्य था। जिन्हें कुछ टुकड़े मिल गए थे वह खुशी के मारे रो रहे थे। और जिनसे हाथ में आकर भी रोटियां छिन गई थीं, उनमें से कुछ निराशा की सीमा पार करके हँसने लग जाते थे, आधी से ज्यादा रोटियाँ पैरों तले कुचली गई थीं, और एक दर्जन से अधिक आदमी और बच्चे भी उनके साथ इस प्रकार कुचले गए थे कि एक ओर उनकी चर्बी और दूसरी ओर खून में कुचली हुई रोटियों के आटे में भेद करना असंभव हो गया था।

इसी धक्कम-पेल की लहर ने आनंद और निर्मला को भी बुरी तरह

अपनी झपट में ले लिया। निर्मला ने अपनी पूरी ताकत लगाकर आनंद का बाजू थामे रक्खा, और आनंद ने उस बच्चे की लाश को।

परंतु इन तीनों का साथ बहुत देर तक कायम न रह सका। निर्मला ने उसकी बांह इस जोर से थाम रखी थी कि एक धक्के में आकर निर्मला के ज़रा दूर होने से आनंद की बाँह इस जोर से खींची गई कि बच्चे पर उसकी पकड़ ढीली पड़ गई। और बालक उसके हाथ से निकल गया। उसने पूरी शक्ति लगाकर उसी स्थान पर खड़े रहने की कोशिश तो की, मगर पलक झपकने से पहले वह जाने उस लहर में कितनी दूर पहुँच गया था।

इतनी देर में बालक न जाने किन लोगों के बीच में कहाँ से कहाँ पहुँच गया था। वह इनसानी शरीरों के बीच रगड़ता हुआ धरती तक पहुँचने से पहले ही कुचला गया या धरती पर पैरों तले मलीदा हो कर उसकी चर्बी भी रोटियों के आटे में मिल गई...?

*

सत्रहवाँ परिच्छेद

दोबारा जब क़ाफ़ला पुल की ओर रेंगने लगा तो आनंद शायद इस आशा से सिर झुकाए धरती की ओर देखता जा रहा था कि शायद उस नन्हें से शरीर का कहीं निशान मिल जाए।

निर्मला के पास होने का भी जैसे अब उसे एहसास न रहा था। वह क्या महसूस कर रहा था उसकी व्याख्या उसने केवल एक ही वाक्य में कर दी थी—

'जिस कोमल से शरीर को मैं गिद्धों और कुत्तों से बचा लाया, उसे मैं इन इनसानों से न बचा सका......'

यह वाक्य उसने कुछ ऐसे ढग से कहा मानों किसी के सामने वह अपनी सफ़ाई पेश कर रहा हो। वह किस अनदेखे व्यक्ति से इस प्रकार बातें करने लग जाता था, यह निर्मला को पता न चल सका मगर इसके बावजूद वह आनंद के दिल पर लगनेवाली हर चोट की गहराई अवश्य नाप सकती थी—अतः वह डर गई।

आनंद अब बिल्कुल खामोशी से चला जा रहा था। उसकी आंखें जैसे लज्जा के मारे धरती की ओर झुकी हुई थीं। निर्मला उसकी हालत देखकर सहम गई थी। परंतु सुलेमानकी के पुल को अब कुछ ही गज़ दूर रह गया देखकर उसमें नए सिरे-से हिम्मत भी पैदा हो रही थी।

फिर से उसके दिमाग में वह प्रोग्राम घूमने लगा था जो उसने हिन्दुस्तान पहुंच जाने के बाद आनंद के बारे में थोड़ी ही देर पहले सोचा था। उसके साथ ही साथ आनंद की कई पिछली बातें उसके दिमाग में

उजागर होती चली जा रही थीं—वह कभी निराश न हुआ था, और सम्भवतः इस खामोशी के पर्दे के पीछे वह आज भी निराशा और मायूसी से लड़ रहा था।

उसे याद आया कि एक दिन जब वह स्वयं बिल्कुल निराश हो चुकी थी, तो इसी आनंद ने उस से कहा था—"नहीं, अभी निराश होने का समय नहीं आया। अभी इनसान मरा नहीं—वह बिल्कुल खत्म नहीं हुआ, अभी वह एक इनसान ज़िंदा है जिसका नाम महात्मा गांधी है... और जब तक एक भी इनसान जीवित है, निराश होने की जरूरत नहीं।"

और फिर एक दिन मौलाना ने प्रार्थना सभा में गांधी जी के एक उपदेश की चर्चा करते हुए बताया था कि पैग़म्बर भी मायूस होकर आज न केवल औरतों को ज़हर खा लेने का मशवेरा दे रहा है, बल्कि खुद भी मरन-व्रत की सहायता से आत्म-हत्या करने पर तुल गया है—और जब आनंद ने उस समय भी आशा-दीप की लौ और तेज़ कर दी थी, और मौलाना ने उसका दर्जा महात्मा गांधी जैसे अवतार से ऊंचा बताया था, तो किस प्रकार उसने चाहा था कि उसके चरणों में शीश झुकाकर चंदन धूप से उसकी आरती उतारे। वह महान व्यक्ति, जिसके बारे में उसे विश्वास हो गया था कि वह एक दिन संसार भर के दुखियों का सहारा होगा, आज स्वयं बहुत दुखी दिखाई दे रहा था—परंतु वह उसे दुखी नहीं रहने देगी। अब कुछ ही गज़ की तो बात रह गई थी—फिर सुलेमानकी के पुल के उस पार हिंदुस्तान में पहुंचते ही वह उसे फिर से शांत कर सकेगी। वह जो देवताओं से भी ऊंचा दिखाई देने लग गया था। जिसके एक इंच भी नीचे गिर जाने से मानों यह सारा तारामंडल लड़खड़ाता हुआ एक दूसरे से टकरा टकरा कर चकनाचूर हो जाएगा। वह उस समय अंदर ही अंदर दुःख और निराशा के साथ लड़ता हुआ दिखाई दे रहा था।—"भगवान करे वह आराम से पुल के उस पार चला जाए......भगवान करे...

आनंद का हाथ चुपके से थाम लिया—भक्ति भाव ...
परन्तु उसमें भावना की गरमी अवश्य थी।
...नन्द ने उसके काँपते हुए हाथ का स्पर्श पाते ही दृष्टि भर कर ... ओर देखा तो—मगर इस तरह कि मानों कई सहस्र शून्यों के ...र से देख रहा हो। और वह......चलता गया।

* * *

सुलेमानकी का पुल कुछ ही कदम पर रह गया था। पाकिस्तानी सेना ... हथियार-बंद सिपाहियों की टोलियां काफलेवालों को यूँ देख रही थीं ...े किसी बाजार के एक कोने में बैठकर पत्ते खेलते हुए आवारा छोकरे ...ुजरती हुई लड़कियों को ताड़ते रहते हैं।

पुल के उस पार हिन्दुस्तानी फौज के दस्ते दिखाई दे रहे थे। और भी सहस्रों लोग बड़े बड़े झंडे उठाए उस ओर आनेवालों का जैसे स्वागत कर रहे थे, और "हिन्दुस्तान जिंदाबाद" के नारे लगा रहे थे। पाकिस्तानी सिपाही उन नारों से बेपर्वाह अपने खेल में इस प्रकार व्यस्त थे मानों उधर कहीं कुत्ते भौंक रहे हों।

अब पुल के नीचे जोर-शोर से बहता हुआ पानी भी दिखाई देने लग गया था।

इन आखिरी कुछ गजों में काफला और भी धीरे चलने लगा था—यहाँ तक कि उसमें कोई गति ही दिखाई न देती थी। पाकिस्तान के फौजी रक्षक भी हिले बिना ही बंदूकें संभाले खड़े थे। यदि कहीं कोई गति थी तो वह पुल के नीचे बहते हुए पानी में। लहरें एक दूसरी के हाथ में हाथ डाले नाचती गाती चली जा रही थीं, मानों यह उनका सदा का स्वभाव हो, जैसे वह अनादिकाल से इसी प्रकार एक दूसरी की गोद में बहती चली आई हैं, और अनंत काल तक इसी प्रकार बहती रहेंगी।

आनंद ने देखा कि इन लहरों को इन शरणार्थी काफलों से भी कोई विशेष दिलचस्पी नहीं—जैसे प्रकृति के कारखाने में यह कोई असाधा...

बात नहीं हुई, जैसे इतने लाख इनसानों को इस प्रकार अमानुषिक हद तक बर्बाद करके मानसिक तौर पर अपाहज कर देना प्रकृति का एक मामूली सा कारनामा हो—और जैसे इन लहरों ने इससे पहले भी इस प्रकार के कई कारनामे देखे हों। बाबल में, मिस्र में, रोम में और जेरूसलम में, बल्कि स्वयं पंजाब के इन्हीं मैदानों में—जब नादिर शाह आया था, जब तैमूर आया था, या जब यहाँ के द्रविड़ों को मारते काटते हुए स्वयं आर्य्य लोग आए थे—चुनांचे यह कोई नई बात न थी।

वह खास किसी को भी संबोधन किये बिना कहने लगा—"यह लहरें सदा इसी प्रकार हँसती-गाती रही हैं, और काफले गुजर जाते रहे हैं। इन्होंने महमूद ग़ज़नवी की फौजें भी देखी हैं और यूनानियों के लश्कर भी। यहाँ से अफगान, हिंदू, सिख और अंग्रेज सेनाओं के हथियारबंद काफले भी गुजरे हैं—कभी विजय के गर्व से झूमते हुए और कभी पराजय की लज्जा से सिर झुकाए—और यह लहरें इसी प्रकार जीतनेवालों पर भी हँसी हैं और हारनेवालों पर भी—! वह आए थे और गुजर गए थे—कोई स्थायी न था, कोई अमर न था, किसी की जीत या हार, फतह या शिकस्त, स्थायी न थी, अबदी न थी......"

वह कहे जा रहा था, और निर्मला को इसी प्रकार की एक बहस के बीच कहे हुए स्वयं आनंद के कुछ वाक्य याद आ रहे थे, और उसने उसका ध्यान अपने ही पुराने दृष्टिकोण की ओर ले जाने की कोशिश में उन वाक्यों को केवल दुहरा दिया :

"अनंत है केवल इन लहरों की यह हँसी और इनका शांतिदायक संगीत—या फिर इस हँसती-गाती अनंतता के किनारे विचरनेवाला वह एक इनसान, जो हर समय में हर जगह मौजूद रहा है—कभी ईसा के रूप में, कभी मुहम्मद की शकल में या बुद्ध, कृष्ण और गांधी के रूप में......"

और आनंद ही के यह वाक्य दुहराते हुए उसके अंदर से एक जोर-

दार प्रेरणा हो रही थी कि वह आनंद का नाम भी इन नामों के साथ ही जोड़ दे—परंतु उसने ऐसा किया नहीं, केवल आनंद का हाथ और जोर से पकड़ लिया।

और आनंद उसके वाक्यों पर ध्यान देकर सोच रहा था कि—"हाँ—अनंतता तो केवल इस शांतिदायक संगीत ही को हासिल है, या फिर लहरों की इस उपहास-पूर्ण हँसी को—या शांति अमर है या उपहास—यह दोनों सदा रहेंगे, परंतु कर्म, विजय और पराजय— इनको अमरता प्रदान नहीं की गई, यह कभी स्थायी नहीं हो सकते..." और यह सोचते हुए उसका जी चाहने लगा कि वह उस 'कर्म के काफले' से अलग होकर उन लहरों में कूद जाए, और इस प्रकार उनकी शांति और उनके उपहास का एक अमर साथी बन जाए...

इतने में निर्मला के हाथ की पकड़ और मजबूत हो जाने पर उसने निर्मला की ओर कुछ ऐसी निगाहों से देखा जो पूछ रही थीं कि "क्या तुम इस प्रकार एक गिरते हुए पहाड़ को संभाल सकोगी—?"

निर्मला—जो उसकी निगाहों की गहराइयों को अब नापने लग गई थी, उसे आनंद के इस बेबसी के अंदाज से एक चोट सी लगी। उस समय उसे यूँ महसूस हुआ जैसे एक बालक अपना सब से प्यारा खिलौना टूट जाने पर रोते रोते मां के पास चला आया हो—तब उसका जी चाहा कि वह आनंद को मां की तरह छाती से चिमटा ले और उसे कहे कि "नहीं—मेरे होते तुम्हें दुखी होने की जरूरत नहीं।" और जिस प्रकार रोते हुए बालक को देखकर मां उसके हर कसूर को क्षमा करके उल्टा उसी को पीड़ित और मजलूम समझने लग जाती है, उसी प्रकार आनंद को यूँ देखकर उसी के कुछ पुराने वाक्य दुहराने को निर्मला का जी चाहा कि—"इस फ़साद में न हिंदू का कुछ बिगड़ा न मुसलमान का, दोनों ने इधर का नुक़सान उधर पूरा कर लिया। अगर नुकसान हुआ तो केवल इनसान का और लुट गई तो केवल मानवता—!!"

कुछ भी हो वह उस पुल को बहुत जल्द पार कर जाना चाहती थी। उस पार उसे शांति की आशा थी, उस पार पहुँचने पर वह बीमार आनंद का इलाज कर सकेगी!

काफ़िले की सुस्तरफ़्तारी बल्कि बेरफ़्तारी के बावजूद उसे एक हल्का सा संतोष था कि आखिर पुल आ तो पहुँचा। आनंद अभी तक जूझ रहा था, उसने निराशा के आगे अभी तक हथियार नहीं डाले थे और......अब पुल आ पहुँचा था, और निराशा की सीमा में दाखिल होने से पहले वह हिन्दुस्तान की सीमा में प्रवेश कर लेंगे......

* * *

जब उसने पहला कदम पुल पर रखा तो उसे यूं महसूस हुआ जैसे वह आदमखोर राक्षसों की बस्ती से निकल कर देवताओं की धरती पर कदम रख रही हो, पुल के उखड़े हुए नुकीले पत्थर उसके पैरों को इतने कोमल महसूस होने लगे, मानों वह क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर कदम रख रही हो, जहाँ भगवान विष्णु लेटे हुए हैं! वह इस स्थान तक एक देवता का हाथ पकड़े हुए पहुँच गई थी—यह देवता भी तो भगवान विष्णु की भाँति इस संसार को मृत्यु से बचाने की कोशिश कर रहा था—! और उसने भक्ति में डूबी हुई निगाहें उठाकर आनंद के चेहरे की ओर देखा; वहाँ अब भी पूर्ण शांति न थी—वह अभी तक लड़ रहा था। दुख और निराशा ने अभी तक हथियार नहीं डाले थे, और निराशा और आशा की मिली-जुली सीमा पर खड़ा वह बहादुर अपनी शक्ति के अंतिम कणों को भी इकट्ठा करके मुकाबले में जूझता दिखाई दे रहा था......

* * *

वह पुल के कोने पर खड़े पाकिस्तान के आखिरी सिपाही से आगे बढ़ गए थे, कुछ ही कदमों की दूरी पर पुल के दूसरे किनारे से हिंदुस्तानी सिपाहियों की पंक्ति शुरू होती थी। बीच में केवल यह पुल था

और उसके नीचे से बहती चली जानेवाली लहरें—जो एक दूसरी के हाथ में हाथ डाले नाचती गाती चली जा रही थीं।

लहरों को इस प्रकार मस्त और खुश देखकर निर्मला के मन में भी उसी तरह खुशी से लहराने की आकांक्षा जग रही थी। वह आनन्द को लड़ते हुए ही निराशा और अँधेरे की बस्ती से निकाल लाई थी। वह थक गया अवश्य दिखाई देता था, लेकिन हार मान लेने के चिह्न अभी उसके चेहरे पर पैदा नहीं हुए थे, और वह उसे इसी प्रकार लड़ते लड़ते ही प्रकाश और आशा के सुन्दर देश में ले जा रही थी—दो चार कदम—केवल दो चार कदम......और......

"आनंद—! आनंद...?"

पीछे से कोई आवाजें दे रहा था—जैसे निराशा की बस्ती उसे वापस बुला रही हो!

निर्मला ने चाहा कि आनंद मुड़कर न देखे। वह जानती थी कि दुख के बोझ से वह इतना पिस चुका था कि अब एक और तिनका भी उसकी कमर तोड़कर रख देगा। चुनांचे उसने आनंद का हाथ और मज़बूती से पकड़ लिया, और एक तेज़ कदम आगे बढ़ाया।

"आनंद—!" आवाज़ में जैसे एक प्रार्थना थी। अबके आनंद ने भी सुन लिया, और मुड़कर देखा।

मौलाना पुल के पिछले किनारे पर खड़े उसे बुला रहे थे। पाकिस्तानी सिपाही ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक रखा था, और वह आवाजें दिये जा रहे थे।

मौलाना को देखकर निर्मला ने बड़े चैन की साँस ली। इन आवाज़ों ने जो डर उसके दिल में पैदा कर दिया था, वह उनकी सूरत देखते ही हवा हो गया। बल्कि उसे एक प्रकार की खुशी का एहसास होने लगा कि अब वह आ गया था जो इस थकते हुए इनसान को शक्ति देगा और एक नया जोश—!

यह कहते कहते आनद के हाथों की पकड़ मौलाना के गले प
पूत से मजबूततर होती गई। वह उनका गला घोंटता हुआ चि
था—"मैं उसे मार डालूंगा—मैं उसे मार डालूंगा—इनसान
हत्या कर रहा है—हा हा हा—इनसान आत्महत्या कर रहा
हा हा हा—" और आनंद के कहकहे लहरों के उपहास-भरे अट्टहा
टकराने लगे।

चारों ओर एक हंगामा हो गया था, वेहिसाव शोर—!

"मुसलमान को मार डाला।"

"नहीं, मुसलमान ने मार डाला!"

और किसी को कुछ पता नहीं चल रहा था कि किसने किसे
डाला। केवल एक अट्टहास सुनाई दे रहा था, और उस अट्टहास
शामिल उजागर सिंह अपने मृत-बालक के खिलौने से बना हुआ
भाला कभी मौलाना की छाती में घुसेड़ देता, और कभी उसे निक
लेता।

चारों ओर भिन्न भिन्न आवाजों का एकही शोर था।

"मार डाला—मार डाला—!"

और इन आवाज़ों के ऊपर एक और आवाज़ थी—

"मैं बच गया—मैं बच गया।" उजागर सिंह खुशी से पाग
होकर चिल्ला रहा था।

पाकिस्तान के सिपाही ने बंदूक दाग़ दी।

उसके उत्तर में हिंदुस्तान के सिपाही ने भी "धाँय-धाँय" शु
कर दी।

"धाँय-धाँय—" हा हा हा—हा हा हा—मार डाला—मार डाला—
मैं बच गया—मार डाला—मैं बच गया—हा हा हा...

और पुल के दोनों किनारों से नारे गूँज रहे थे :

"हिंदुस्तान जिंदाबाद"

ाकिस्तान जिंदाबाद"

"दुस्तान जिंदाबाद—पाकिस्तान जिंदाबाद"

इन आवाज़ों के निशाने पर आई हुई निर्मला चारों ओर से
भाँति आती हुई आवाज़ों की चोटें खाती हुई बेहोश हुई जा
इन घावों के तूफ़ान में डूबती हुई निर्मला ने आकाश के
पर अपनी निगाहें गाड़ दीं, जो अपनी मूक भाषा में उस
ंत शून्य से पूछ रही थीं—"क्या अब निराश होने का समय
गया है ?"

और मानों उसके उत्तर में आवाज़ें और ऊँची होती जा रही थीं—
"इनसान आत्महत्या कर रहा है—मैं उसे मार डालूँगा—मार
गा—मैं बच गया—हा हा हा—हिंदुस्तान ज़िंदाबाद—पाकिस्तान
दा........"

और फिर इन नारों के ऊपर ही ऊपर एक और नारा न जाने
ाँ से आकर उसके मस्तिष्क पर भरपूर चोटें लगाने लगा—कोई
सुरी अट्टहास पुकार पुकारकर कह रहा था—"इनसान मुर्दाबाद—
नसान मुर्दाबाद—"

फिर सब कुछ एक दूसरे में गडमड हो गया—
"हिंदुस्तान ज़िंदाबाद"
"पाकिस्तान ज़िंदाबाद"
"इनसान मुर्दाबाद—इनसान मुर्दाबाद...।"